श्रीपुष्टिसिद्धान्त-कुसुमावलि—पुष्प ३२ मुं

॥ श्रीकृष्णः ॥

श्रीमहाप्रभु-श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण प्रणीतं

मधुराष्टकम्

(व्याख्याषट्क समेतं व्रजभाषानुवादयुतम्)

सम्पादक :

गो० वा० श्रीमुलचन्द्र तु वेलीवाला,

अने

अनुवादक प्राचीन वैष्णववर्य

श्रीमद्वल्लभकुल कौस्तुभ

पूज्यपाद गो० श्री ६ श्री दीक्षितजी महाराज की आज्ञा सूँ

प्रकाशक :

श्री पुष्टिमार्गीय युवक परिषद—बम्बई

मूल्य रु० २—०

हरीहर इलैक्ट्रिक मशीन प्रेस, मथुरा.

प्रकाशक :
गिरधरलाल जगजीवनदास शाह
मानार्ह मन्त्री
श्री पुष्टिमार्गीय युवक परिषद
ठि० श्री बडी हवेली के पास, भूलेश्वर
बम्बई नं. २

संस्कृत पुनर्मुद्रित ब्रजभाषानुवाद] [प्रथमबार १०००
वि सं. २०१८] श्रीमद्वल्लभाब्द ४८४ [इ० स० १९६२
शाके १८८४

संस्कृत भाषा विभागक मुद्रक
जयंती दलाल
बसंत प्रिन्टिंग प्रेस
घीकांटा
अहमदाबाद (गुजरात)

ब्रजभाषाटीकादि का मुद्रक
हरीहर इलैक्ट्रिक मशीन प्रेस,
मथुरा.
(यु. पी.)

अखिलभूमण्डलाचार्यवर्य श्री १०८ श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणाः

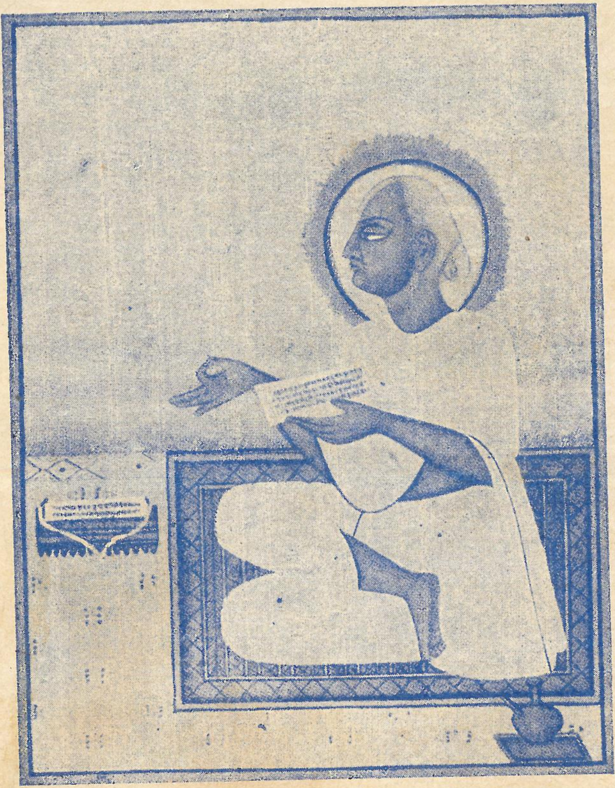

श्रीभागवतप्रतिपदमणिवरभावांशुभूषिता मूर्तिः ।

प्राकट्य :
चैत्र कृष्ण ११ संवत १५३५

लीलाप्रवेश :
आषाढ शुक्ल २ संवत् १५८७

શ્રીમદ્વલ્લભકુલકૌસ્તુભ
પૂજ્યપાદ ગો૦ શ્રી ૬ શ્રીદીક્ષિતજી મહારાજ
ધર્માધ્યક્ષ : શ્રીપુષ્ટિમાર્ગીય યુવક પરિષદ-મુંબઈ

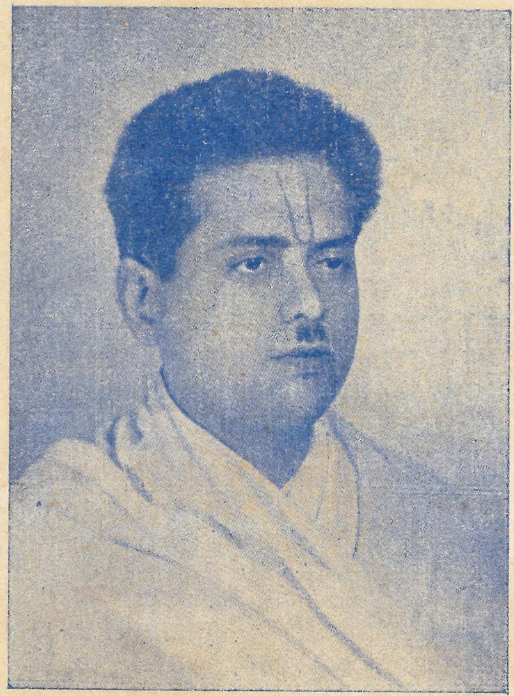

પ્રાકટ્ય વિ. સં. ૧૯૭૦ વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૨
ગુરૂવાર, તા. ૨૧-૫-૧૯૧૪

संप्रदायप्रचारैकदीक्षायां दीक्षिता इमे ।
श्रीदीक्षिता विराजन्ते सद्विद्याविकसत्त्विषः ।
गाम्भीर्यौदार्यमाधुर्यसारल्यादिगुणैर्युताः ।
वागीशवंशपाथोजभानवो भक्तवत्सलाः ॥

। श्रीकृष्णः ।

श्री पुष्टिमार्गीय युवक परिषद–मुंबई तरफ थी
श्रीपुष्टिसिद्धान्त कुसुमावलिनां विकसेलां सुवासित पुष्पो

क्रम	नाम	मूल्य रु. न. पै.
★ १	श्रीमदाचार्य प्राकटचोत्सव (पत्रिका) (ले० पू० पा० गो० श्रीव्रजनाथलालजी महाराज)	अमूल्य
★ २	शुद्ध पुष्टि भक्त (पुस्तिका) ले० पू० पा० गो० श्रीव्रजनाथलालजी महाराज	०·८
★ ३	श्रीकृष्ण जन्माष्टमीनुं धार्मिक दृष्टि ए महत्व (पत्रिका) ले० श्री पराग	अमूल्य
★ ४	श्री वेणधर (पुस्तिका) ले० श्री पराग	०·१२
★ ५	भारतना एक दिव्य ज्यातिर्धर (पुस्तिका) ले० पू० पा गो० श्री व्रजनाथलालजी महाराज	०· ३
★ ६	श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण (पत्रिका) ले० पू० पा० गो० श्री व्रजनाथलालजी महाराज	अमूल्य
★ ७	श्रीमद्वल्लभाचार्य अने तेमनां सिद्धान्तो (पुस्तिका) व्याख्याता० भ० शा नि प्रो० मगनलाल शास्त्रीजी M.A.	०·८
८	प्रस्थान चतुष्टमां सर्वात्म भावनुं स्थान (पुस्तिका) बक्ता० वे० शासं श्री धीरजराम शास्त्री	०·१६
★ ९	अहीर अर्भक (पत्रिका) ले० पू० पा० गो० श्री व्रजनाथलालजी महाराज	अमूल्य
★ १०	श्रीहरिराय महाप्रभु अने दुःसंग विज्ञान प्रकार (पुस्तिका) ले० वे० शासं श्री केशवरात्म का० शास्त्री	०·३
★ ११	आर्य कलाना उद्धारक (पुस्तिका) ले० वे० शासं श्री केशवराम का० शास्त्री	० ३.
★ १२	परम भक्तिमार्गाचार्य श्रीवल्लभाचार्य (पुस्तिका) ले० वे० शासं श्री केशवराम का० शास्त्री	०·३

	रु. न. पै.
★ १३ पुष्टिमार्गीय वैष्णवोने आवश्यक सूचना (पत्रिका) लेo श्री भक्तिप्रिय	अमूल्य
★ १४ श्रीहरिराय महाप्रभु अने शिक्षा पत्रो (पुस्तिका) लेo वेo शासं श्री केशवराम काo शास्त्री	०·३
★ १५ पुष्टिमार्गमां वर्णाश्रमनी आवश्यकता (पुस्तिका) व्याख्याता पूo पाo गोo श्री दीक्षितजी महोदय	०·१२
★ १६-१७ श्रीवल्लभाचार्यजी महाप्रभुजी अने श्रीवल्लभप्रभु प्रार्थना (पुस्तिका) लेo श्रीवल्लभजी भाणजी महेता अने वेo शासं श्री दुर्लभजी शास्त्री	·०२५
★ १८ रसदर्शन (पुस्तिका) लेo श्रीवल्लभजी भाणजी म्हेता	०·१२
★ १९ दिव्य पुष्टिमार्गना प्रणेता (पुस्तिका) लेo श्री भक्तिप्रिय	०·१२
२० ब्रह्मवाद प्रवेशिका (पुस्तिका) लेo वेo शासं श्रीकेशवराम काo शास्त्री	०·४०
२१ पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रकार (पुस्तिका) लेo वेo शासं श्री केशवराम काo शास्त्री	अमूल्य
२२ गीताका पृथक् शरणमार्ग (हिन्दी पुस्तिका) लेo वेo शासं पंo श्रीरमानाथ शास्त्री	०·३७
२३ बहिर्मुख मुखध्वंस (पुस्तिका) लेo पूo पाo गोo श्रीगोकुलनाथजी महाराज	०·२५
२४ अन्याश्रय असमर्पितत्याग (पुस्तक) लेo श्री सुन्दरदास-वीरभानुदास	०·६२
२५ श्रीपुष्टिमार्गीय नित्यस्मरण पोथी (पुस्तक)	०·६२

२६ भक्तिमार्ग प्रवेशिका (पुस्तक) लेo वेo शासं श्रीकेशवराम काo शास्त्री	०·३८
२७ विज्ञप्ति स्तोत्र संग्रह गुर्जरानुवाद सहित (पुस्तक) (श्रीगुसांइजी श्रीगोकुलनाथजी अने श्रीहरिरायजीनी विज्ञप्तिओ)	१·२५
★ २८ श्रीहरिरायजी (महाप्रभु) विरचित ४१ बृहत् शिक्षापत्र गुर्जरानुवाद सहित (पुस्तक)	५·०
२९ भक्तिहंस (व्याख्यात्रयानुगत गुर्जरानुवाद सहित) (पुस्तक)	१·२५
३० भक्तिहेतुनिर्णयः (मद्रघुनाथचरणविरचित विवृत्ति समतेः गुर्जरानुवाद सहित) (पुस्तक)	०·७५
३१ पत्रावलम्बनम् (व्याख्यात्रयानुगतं गुर्जरानुवाद सहितं) (पुस्तक)	१·२५
३२ मधुराष्टकम् (व्याख्या षट्क समेतं व्रजभाषानुवादयुतम्) (पुस्तक)	२·०

प्राप्ति स्थानः--

श्री पुष्टिमार्गीय युवक परिषद कार्यालय

C/o गिरधरलाल जगजीवनदास शाह
ठेo श्री मोटी हवेली पासे, भूलेश्वर मुंबई नंo २

आवश्यक सूचना प्रत्युत्तर चाहनारे जवाबी कार्ड मोकलवुं

★ आ निशानी वालुं साहित्य अप्राप्य छे,

। श्रीकृष्णः ।

❀ अनुक्रमणिका ❀

क्रम	नाम	पृष्ठ
१	—श्रीपुष्टिमार्गीय युवक परिषद मुंबई ना प्रकाशनो नी यादी	१
२	—अनुक्रमणिका	४
३	—सम्पादन	१
४	—प्रकाशक नुं निवेदन	३
५	—श्रीमधुराष्टकनी प्रस्तावना	६
६	—श्रीमधुराष्टकनुं माधुर्य	१४
७	—श्रीमधुराष्टकम्	२४
८	—श्रीमद्विट्ठलेश्वर विरचित विवृति	१
९	—श्रीघनश्यामजी विरचित मधुराष्टक विवृति टिप्पण	१
१०	—श्रीमद् बालकृष्ण विरचित विवरण	१०
११	—श्रीवल्लभकृत विवरण	३३
१२	—श्रीरघुनाथजी कृत विवरण	६७
१३	—श्रीहरिदास विरचित मधुराष्टक तात्पर्य	७२
१४	—श्रीमधुराष्टक की व्रजभाषा टीका	१

। श्रीकृष्णः ।

सम्पादन

छ संस्कृत टीकाओ साथे वर्षो पूर्वे प० भ गो० वा० श्रीमुलचन्द्र तेलीवाला ए भारे श्रमे साहिस प्राप्त करी आचार्य प्रवर श्रीमद्वल्लभाचार्य (महाप्रभु ' जी ना कोई धन्य पले स्फूरेला परममाधुर्य पूर्ण **'मधुराष्टक'** नुं सम्पादन कर्युं हतुं. केटलाक समय थी आ ग्रन्थ अलभ्य थई पड्यो हतो ते थी ए फरी सुलभ थाय एवी भावना विद्वद्धुरीण पू० पा० गोस्वामिवर्य श्री दीक्षितजी महोदयनी थतां एओश्रीनी आज्ञा थी श्रीपुष्टिमार्गीय युवक परिषदे मुद्रणनी व्यवस्था माटे मने आज्ञा करी. छापखानांओनी भारे हाडमारीनें कारणे भारे विलंबे मात्र संस्कृत टीकाओना विभागनुं मुद्रण अमदावादमां साधी शकायुं. व्रजभाषा विभागनुं झडपथी साधवानुं कार्य अशक्यवत् थई पडतां ए कार्य मथुरा मोकलवुं पड्युं. ते थी व्रजभाषा विभाग हुं जोई-मेलवी शक्यो नथी.

आ रीते त्रणेक वर्ष उपर आरंभायेलुं आ कार्य आजे सिद्ध थायछे ए पण श्रीमहाप्रभुजीनी परम कृपा विलंबमां पण प्रभुनो कोइ संकेतज हशे जेनी आपणे क्षुद्र मानवो शी कल्पना करी शकवाना !

'श्रीमधुराष्टक' नी हृदयंगमता मात्र सम्प्रदायमांज मर्यादित नथी. सम्प्रदायना कोई पण प्रकारना भेद भाव बिना समग्र भारतमां ए 'वैष्णवजन तो तेने कहिये' ए भक्त नरसिंह महेताना सुप्रसिद्ध पद थी पण क्यांम उच्च प्रकारनी सर्वप्रियता भोगवी रह्युं छे. नास्तिकोने पण आ अष्टकनुं गुंजना घडी भर स्थिर करी दे छे. 'आकाशवाणी' उपरथी आ मंगलमय भावस्तोत्रनुं श्रवण समग्र जगतना वातावरणने

दिव्यता आपी रह्यु छे. मुरब्बी श्री प्रो० जेठालाल गो० शाहे 'मधुराष्टक' नुं स्वारस्य समझाववानो अलग प्रयत्न कर्यो छे जे आ पछी आज ग्रन्थमां छपायो छे एटले वधु कहेवानुं नथी.

श्री पुष्टिमार्गीय युवक परिषदे मने आ सेवा सोंपी ए बदल आभारी छुं. साथे समग्र ग्रन्थ अमदावादमां हुं मुद्रित कराववा शक्तिमान नथी थयो अने ए रीते केटलेक अंशे परिषदने अगवडमां पण मुकावानी परिस्थिति ऊभी थई हशे ए माटे नम्रतापूर्वक क्षमा चाहुछुं.

मधुवन, एलिसब्रिज
अमदावाद ६

ता० १७-८-१९६२

लि० वैष्णव चरणरजोभिलाषी
केशवराम का० शास्त्रीनां

सदैन्य भगवत्स्मरण.

॥ श्रीमद्वल्लभाधीशो जयति ॥

प्रकाशक नुं निवेदन

श्रीवृन्दावनेन्दु परात्परपूर्णपुरुषोत्तम श्रीगोपीजनवल्लभ श्रीनन्दयशोदोत्संगलालित षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान श्रीबालकृष्ण प्रभु श्रीविभुवदन वैश्वानरावतार भक्तिमार्गाब्जमार्तण्ड अखंड भूमण्डलाचार्यवर्य जगदगुरु. श्रीमद्वल्लभाचार्यजी (श्रीमहाप्रभुजी) अने परम कृपालुं श्रीमद्विट्ठलेशप्रभुचरण (श्रीगुसांईजी) ना महान अनुग्रह थी श्रीपुष्टिसिद्धान्त कुसुमावलि नुं बत्रीसमुं पुष्प श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण विरचित श्रीमधुराष्टक ग्रन्थ (संस्कृत छः टीकाओ अने व्रज भाषानुवाद सहित) श्री पुष्टि-अनुग्रहमार्गानुयायी तेमज श्रीवल्लभसिद्धान्तानुरागी वैष्णवजनता समक्ष रजू करतां अमने अत्यन्त आनंद थाय छे.

श्रीपुष्टिमार्गीय युवक परिषद—मुंबई नी स्थापना वि० सं. १९८६ मां साम्प्रदायिक सिद्धान्त प्रचार अने साहित्य प्रकाशन माटे करवामां आवी छे.

ते उदेशानुसार श्रीपुष्टिसिद्धान्त कुसुमावलि नाम थी साहित्य प्रकाशन विभाग शरु कर्यो ते द्वारा अत्यारसुधीमां न्हाना म्होटा (सत्तावीस पुस्तको अने पांच पत्रिका) बत्रीस सुवासित पुष्पो विकस्या छे. तेनी मीठी सौरभे श्रीपुष्टिमार्गीय श्रीवल्लभसिद्धान्तानुरागी वैष्णवोना हृदयमां स्वम्पांशे पण आनंदानुभव थशे तो परिषदनी सेवा सार्थक लेखाशे.

श्रीपुष्टिमार्गीय युवक परिषद—मुंबई ना धर्माध्यक्ष श्रीमद्वल्लभकुल कौस्तुभ पूज्यपाद गो० श्री ६ श्रीदीक्षितजी महाराज श्री ना आदेशानुसार श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांइजी श्रीहरिरायजी, श्रीपुरुषोत्तमजी प्रभृति आचार्यवर्योनुं अप्रसिद्ध साहित्य छपाववुं

अने अप्राप्य साहित्य पुनर्मुद्रित कराववुं ए आदेशानुसार वि० सं० २०१६ मां श्रीमद्विट्ठलेश प्रभुचरण (श्रीगुसांईजी) विरचित (१) **भक्तिहंस ग्रन्थ** (त्रण संस्कृत टीकाओ अने गुर्जरानुवाद सहित) (२) **भक्तिहेतुनर्णय ग्रन्थ** (संस्कृत टीका अने गुर्जनुवाद सहित) प्रसिद्ध कर्या. वि० सं २०१७ मां श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजी प्रणीत **पत्रावलंबन ग्रन्थ** (संस्कृत त्रण टीकाओ अने गुर्जरानुवाद सहित) प्रसिद्ध करवामां आव्यावाद श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण. (श्रीमहाप्रभुजी) प्रणीत **श्रीमधुराष्टक** (संस्कृत छ टीकाओ सहित) गो० वा० प० भ० श्रीमुलचन्द्र तु० तेलीवाला ए चालीसैक वर्ष पूर्वे संपादन करी प्रकाशन करेलुं ते घणां वर्षथी अप्राप्य हतुं तेने अने तेनीसाथे भाववाही व्रजभाषानुवाद सहित वि० सं २०१८ मां प्रकट करी शकायुं छे.

आ ग्रन्थ ने प्रकट करवानी प्रेरणा करवा माटे श्री पुष्टिमार्गीय युवक परिषद—मुंबई ना धर्माध्यक्ष पू० पा० गो० श्री ६ **श्रीदीक्षित जी महाराज श्री** नो हृदयपूर्वक आभार मानवामां आवे छे. आ ग्रन्थनी प्रस्तावना लखी मोकलवा माटे सम्प्रदांयना सुप्रसिद्ध सेवाभावी विद्वान् पं० भ० प्रो० श्रीयुत जेठालाल गोवर्धनदास शाह M. A. नो संस्कृत विभागना मुद्रण अने प्रुफ संशोधननी निरपेक्ष भावनाथी व्यवस्था करी आपवा माटे सम्प्रदायना सेवाभावी सुप्रसिद्ध विद्वान प्राध्यापक श्रीयुत केशवराम काशीराम शास्त्रीनो, व्रजभाषाना मुद्रण अने प्रुफ संशोधननी व्यवस्था करी आपवा माटे मथुराना जाणीता सेवाभावी कार्यकर श्रीयुत पं० निरंजनदेव शर्मा नो अने श्रीमहाप्रभुजीनो तथा पूज्यपाद गो० श्रीदीक्षितजी महाराज श्री नो ब्लोक छापवा माटे आप्यो ते माटे श्रीभक्तिमार्गीय वाचनालय मुंबई ना व्यवस्थापक नो धन्यवाद सह आभार मानवामां आवे छे.

छेवटमां श्रीपुष्टिमार्गीय युवक परिषद—मुंबई पासे सम्प्रदायनु

अप्रसिद्ध तथा हालमां अप्राप्य पुनः मुद्रण करवा जेवुं केटलुक साहित्य प्रकाशनार्थे पड्युं छे तेने माटे धर्मानुरागी वैष्णव गृहस्थो तरफ थी आर्थिक साहाय्य मलशे तो मजकुर साहित्य छपावी प्रसिद्ध करवानी व्यवस्था. करवामां आवशे. सुज्ञेषु किम बहुनां।

श्रीपुष्टिमार्गीय युवक परिषद—मुंबई
तरफ थी

पवित्रा एकादशी
वि० सं २०१८

निवेदक :—
रविवार ता. १२-८-१९६२
गिरधरलाल जगजीवनदास शाह.
मानदमंत्री.

॥ श्रीमद्वल्लभशरणम् ॥

मधुराष्टकनी प्रस्तावना

(लेखक प्रो० श्रीयुत जेठालाल गोवर्धनदास शाह M. A.)

भगवानना वदनावतार श्रीवल्लभाचार्यजीना त्रण स्वरूपो मार्गीय ग्रन्थोमां वर्णववामां आव्या छे. आचार्य तरीके भक्तिमार्गनो उपदेश आपीने आधिभौतिक स्वरूपनुं कार्य पोते प्रकट कर्युं छे. अने अणुभाष्य, तत्त्वदीपनिबन्ध, भागवत उपरना श्रीसुबोधिनी तथा षोडश-ग्रन्थोनी रचना आध्यात्मिक स्वरूपे—वाणीद्वारा दैवीजीवोना उद्धारनुं कार्य कर्युं छे. आधिदैविक स्वरूपे स्वामिनी भावथी प्रभुना विप्रयोगनो अनुभव कर्यो छे.

श्रीमहाप्रभुजीना स्वरूप, तथा गुण तेम कार्यनुं निरूपण श्रीविठ्ठलेशजीए सर्वोत्तम स्तोत्र, श्रीवल्लभाष्टक तथा स्फुरत्कृष्ण प्रेमामृतमां करेल छे. सौन्दर्य पद्यमां तेमनुं आधिदैविक स्वरूप वर्णवेलुं छे. जे प्रभुनी स्वामिनी साथेनी लीलानुं साक्षीभूत छे. श्रीवल्लभाष्टकमां जणाव्या प्रमाणे श्रीमहाप्रभुजीना श्रीअंगमां श्रीवृन्दावनचन्द्र कृष्ण भगवाने जे गोपीजनोने निरवधि आनंदनुं दान रासादि लीला थी करेलुं—ते लीलारूपी अमृतना जलधि ओज उछली रहेला छे श्रीमहाप्रभुजीना प्रत्येक अंगमां प्रभुए करेली रासादिलीलानो आनंद भाव उछाली रहेलो छे एक पण श्रीअंग एवुं न थी के जेमां ते भाव निरन्तर आनन्द थी भरेलुं छे. पोताने विप्रयोगमां जे आनंद अने अनुभव थयो तेवो अनुभव अन्य भक्तोने थाय ते माटे तेमनुं प्राकट्य होवाथी ते भावने सुबोधिनी टीकामां पोते प्रकट कर्यो सुबोधिनीनी दशमस्कन्धनी निरोधलीलामां थी एकज तत्त्व साररूपे पोते प्रकट कर्युं अने ते स्त्री भाव. स्त्रीभावनुंज बीजुं नाम पुष्टिमार्ग. पुष्टिमार्गीय तेज के जेनामां प्रभु माटे स्त्रीनो प्रेम होय. पछी ते पुरुष देहधारी होय के स्त्री देहधारी. पण तेनुं हृदय स्त्री प्रेम थी भरेल होय. जेम सत्पत्नीने पोताना पति माटे प्रेम होय, तेवो

प्रेम प्रभुने अर्पण करवामां आवे ते प्रेम आत्मनिवेदन पूर्वक प्रभुनी सम्पूर्ण शरणागति वालो. देह इन्द्रिय, अन्तःकरण साथे आत्माना प्रभुना सम्पूर्ण विनियोग पूर्वकनो होय, एटलुंज नहि पण तेमां 'संत्यज्य सर्वविषयानु' नो संन्यास होय, अने सांसारिक पदार्थों तरफनी विमुखता अने प्रभु साथे सन्मुखतानी भावना प्रपंचविस्मृति पूर्वकनी प्रभुमांज आसक्ति आ प्रकारनो निरोध–ते स्त्री भाव. अने तेज पुष्टिमार्ग नो मर्म. श्रीमदाचार्यचरणनुं हृदय गूढ स्त्रीभावथी पूर्ण हतुं. ते थी श्रीप्रभुनी रसात्मक लीलानो अनुभव पोते करता अने ते लीलानो अनुभव दैवीजीवो पण करे ते माटे सुबोधिनी मां ते लीलाना भावो समजाव्या, के जेथी ते लीलानी भावना करवाथी रसात्मक स्वरूपनो अनुभव दैवीजीवो करे.

'मधुराष्टक' ग्रन्थ जोके नानकडो पद्यात्मक ग्रन्थ छे छतां तेमा प्रभुना स्वरूप अने लीलानो अनुभव श्रीमहाप्रभुजी ए पोताना भक्तो माटे जणाव्यो छे. पोते आचार्य छतां प्रिया गोपी भर्तुं गोपीजनना भर्ता श्रीकृष्णनां प्रियास्वामिनी स्वरूप हता. श्रीकृष्ण भगवानना निरन्तर स्फुरायमान प्रेमरूपी अमृतरसथी पूर्ण श्री अंगवाला पोते व्रजपतिना विहाररूपी रससमुद्रमां विहार करता हता. चोराशी तथा बसोबावन जेवा भाग्यवान वैष्णवोने आवा स्वरूपनां दर्शनथयेलां श्रीपद्मनाभदासजी एक पदमां जणावे छे—

वृन्दावन रम्यक् अवनी रस उर संपुट तें कोउ न पावे,
पद्मनाभ गिरिधर रसलीला वेणुनादकी बतियां भावे.

श्रीमहाप्रभुजीना हृदयरूपी संपुटमां वृन्दावननी भूमिना रस एटले श्रीठाकोरजी बिराजे छे. तेने कोई पण मेलवी तेम नथी श्रीठाकुरजीनी रसलीला तथा वेणुनादनी लीला आपने घणांज प्रिय छे.— अर्थात् ते लीलानी भावना तेमना हृदयमां खूब भरेली छे. प्रत्येक क्षणे तेनुं ध्यान करीने प्रभुना रसात्म स्वरूपनो अनुभव पोते करे छे. षोडशग्रन्थो मोटे भागे सिद्धान्तात्मक ग्रन्थो छे. तेमां कृष्णाश्रयमां

निःसाधन जीवोनो आश्रय भगवान श्रीकृष्णज छे. माटे अनन्य भावे तेनो आश्रय करवो एम तेमां जणावेल छे. पण 'मधुराष्टक' तो रसथीजतर बोल छे. प्रभुना श्री अंगना प्रत्येक अवयव तेनी कृतिनुं माधुर्य-सौन्दर्य आमां दर्शाव्युं छे.

उपनिषदोमां ब्रह्मने सत्य, ज्ञान अने आनंद रूपे—सच्चिदानन्द रूपे वर्णवेल छे. जगत् ए भगवाननुं सद्रूप छे. जीव ए सच्चित् रूप, अक्षर सच्चित् साथे गणितानंद रूप भगवान श्रीकृष्णना शुद्ध आनन्द रूपज छे. तेने रस पण कहेल छे. आ रसात्मक प्रभु तेज कृष्ण, अने तेज पुष्टिमार्गीयना सेव्य के प्राप्य प्रभु. व्रजसीमन्तिनी जेवां प्रेम लक्षणा भक्ति नी स्नेह आसक्ति अने व्यसनावस्थामां थी पसार थयेल 'तन्मयता' नी दशावालाज तेना अधिकारी छे—मुक्तिमार्ग वाला पण तेना अधिकारी न थी आ वस्तु समझनारज आ 'मधुराष्टक' नुं रहस्य समजी शके. उपर जणावेला उच्च भाववालानेज प्रभु पोतानी लीलाना अनुभवनुं दान करे छे.

आ लघुग्रन्थ 'षोडशथन्थ' ना पांठ ना पुस्तकमां मुद्रित थयेलो छे. पण तेनुं रहस्य प्रकट करनार प्राचीन टीकायुक्त ग्रन्थ हालमां अप्राप्य होवाथी मुंबईनी श्रीपुष्टिमार्गीय युवक परिषदे टीकाओ सहित पुनर्मुद्रण करीने सम्प्रदायिनी माटी सेवा करी छे. श्रीमहाप्रभुजीना ग्रन्थो उपर तेमना वंशजोए अणमोल टीकाओ लखीने सम्प्रदायना साहित्यनुं गौरव वधार्युं छे. श्रीमहाप्रभुजीना ग्रन्थो तथा तेना उपरनी टीकाओ ए सम्प्रदायनुं खरुं धन छे. तेनुं रक्षण निधि स्वरूपनी माफक काल जी थी करवुं जोइए, तेज श्रीमहाप्रभुजी प्रत्येनी शुद्ध भक्ति छे. नाम सेवा वगर आधुनिक समयमां रूपसेवाना भाव समाजवानुं तथा हृदयमां उतारवानुं अशक्य छे. सम्प्रदाये आ बाबत तरफ उपेक्षा करवी जोईए नहि. दरेक धर्मनुं साहित्य तेज तेना अस्तित्वने टकावी राखे छे. पुष्टिमार्गनुं साहित्य एज पुष्टिमार्गने चिरन्तन टकावी राखनारु अमोघ बल छे. ते बल जो आपणे गुमावशुं तो ते साथे पुष्टिमार्ग पण हंमेश माटे गुमावीशुं ए दृष्टि ए श्रीपुष्टिमार्गीय युवक परिषदनी ग्रन्थ प्रकाशन प्रवृत्ति आवकारदायक छे. अने तेने साधन सम्पन्न वैष्णव गृहस्थो ए पोषवी जोईए.

आ ग्रन्थ छ संस्कृत भाषानी टीकाओ अने एक व्रजभाषानी टीका साथे प्रकट थाय छे. व्रजभाषामां तेनुं रहस्य आपवामां आवेलुं होवाथी संस्कृत टीकाओनो गुजराती भावार्थ आपवामां आव्यो न थी संस्कृत भाषामां नीचेनी टीकाओ प्रसिद्ध थइछे.

(१) श्री विठ्ठलेशप्रभुचरण (श्रीगुसांईजी) नी विवृत्ति.
(२) तनो उपर श्रीघनश्यामजीनी टिप्पणी.
(३) श्रीबालकृष्णजीनुं विवरण:
(४) श्री वल्लभकृत विवरण.
(५) श्रीरघुनाथजी कृत विवरण.
(६) श्रीहरिरायजी विरचित मधुराष्टक तात्पर्यं. अने
श्रीव्रजभाषानी टीका.

श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरण प्रारंभमां श्रीआचार्यचरणने नमस्कार करीने विवृत्ति नो प्रारम्भ करे छे अने जणावे छे के दैवीजीवोना उद्धार माटे श्रीमहाप्रभुजी प्रकट थयेला होवाथी अने व्रजमां स्थिति करतां पोताना हृदयमां निगूढ पोतानुं सर्वस्व धन रूप अलौकिक अनुभावोना अनुभवने पोताना दैवीजीवोना उद्धार ने माटे आग्रन्थमां प्रकट करे छे. एम करीने मधुराष्टक ना प्रत्येक 'मधुर' स्वरूप अगर लीलानुं रहस्य जणावे छे. आ टीकामां श्रीविठ्ठलेशजीनुं काव्यत्व अनुपम रीते झलके छे. श्रीघनश्यामजीनी टिप्पणी ते श्रीविठ्ठलेशजी नी विवृत्तिने विशद करवामां उपयोगी थाय छे. जो के ते सम्पूर्ण मधुराष्टक ऊपर न थी मात्र चोथा श्लोक पर्यन्त छे. श्रीघनश्यामजी ए श्रीगुसांईजी ना पुत्र हता. श्रीगुसांईजीनी विवृत्तिनुं गद्य कादम्बरी जेवा गद्य जेवुं. शब्दलालित्य थी पूर्ण होवाथी विद्वानोना मनने पण हरे तेवुं छे. एमां शब्दलालित्य, भावलालित्य तथा शैलिनी चमत्कृति तथा मनोहारिता

खरेखर अवर्णनिय छे. श्रीमहाप्रभुजी ए जे भाव 'मधुर' एटला शब्दथी गूढ रीते जणाव्यो छे तेने श्रीगुसांईजी ए शष्दद्वारा व्यक्त कर्यो छे. एटलुंज नहि पण अलंकार थी सुशोभित करेल छे मधुराधिपते रखिलं मधुरम् । ए प्रत्येक श्लोक ना अन्ते मूकेला चरणनो भाव पण नावीन्यथी आप श्री रजू करे छे. 'मधुर रसना अधिपति' ए शब्दने मधुरान । अधिपति एटले श्रीमद्राधा तथा अधर सुधा—एवो रमणीय अर्थ ज्यारे तेओ श्री करे छे त्यारे खरेखर भक्तोनां हृदय पण शब्द अने तेना भावना माधुर्यमां नर्तन करवा लागे छे. छेल्ला श्लोकमां कहे छे के नंदना गृहना क्यारामां उगेला अने श्रीमद् गोपीजनोना प्रेमसिचान थी वृद्धि पामेल कल्पवृक्षनुं पर्ण–तेम कल वगेरे सर्व मधुर छे. त्यांज मधुरिमानी सीमा आवे छे. आमां भगवानने कल्पवृक्ष कह्या अने तेमना अंगो तथा लीलाओने ते वृक्षना जुदा जुदा भागोनी साथे सरखावे छे रसरूप–प्रेमस्वरूप भगवाननुं प्रत्येक अंग तेमज लीला निर्दोष छे.मधुर छे.

श्रीबालकृष्णजी श्रीविठ्ठलेशजीना आत्मनुं विवरण ए स्वतंत्र रीते योजायेलुं छे ते 'मधुराष्टक' ना भावोनुं विवरण करे छे. प्रारंभमां तेओ श्रीआचार्यचरणने नमस्कार करीने, पोतानी टीका करतां आ ग्रन्थनो प्रादुर्भाव केवी रीते थयो ते जणावे छे. श्रावण महिनाना शुक्ल पक्षनी एकादशी ने दिवसे प्रभुए प्रकट थईने श्रीआचार्यचरणने ब्रह्मसंबन्ध द्वारा दैवीजीवोना उद्धारनो आदेश आपेलो ते प्रसंगे तेमने जे दर्शननो अनुभव श्री अंग थी थयो तेनुं प्रत्येक अंग तथा तेना कार्यद्वारा मधुर शब्दथी जणावेछे. ते समय भगवाननुं उद्दीपन, आलंबन तथा विभावादि रसान्तः पाति तमाय सामग्री वाला तथा लीला तथा गुण थी विशिष्ट उद्‌बुद्ध रसात्मक स्वरूपनो जे प्रमाणे अनुभव थयो तेनुं वर्णन अहिं आ करवामां आवे छे. भगवानना रूपनुं शुं वर्णन करवुं तेमनुं सर्व मधुर छे. पोते शृंगार रूप होवा छतां, वीररस, भयानक वगेरे रसोनी पण लीला करी छे. पण ते बधी शृंगाररसनी पोषक तेमां अन्तर्भूत थती होवाथी ते पण मधुर छे.

जेम राजाने परिधान करवाना अलंकारो सुवर्णना होय छे. तेम प्रभुनी लीलाना सर्व उपकरणो पण मधुर छे. छेवटे लखे छे के शृंगार रस भगवाननी संयोग तेमज विप्रयोग उभय अवस्थानी लीला मधुर छे. एक पण लीला एवी न थी के जे मधुर ना होय. अद्भुतरसनी तेम बिभत्स रसनी पण मधुर छे. आ टीका पण सरल भावने विशद करनारी हृदयंगम छे.

श्रीवल्लभजीनी टीका पण स्वतंत्र छे अने ते विस्तृत पण छे. दरेक भावने एक रीते समजावता तेओ श्री ने संतोष नहि थतां अथवा करीने बीजी रीते पण समजावे छे. अने आ टीकामां दशमस्कन्धनी भगवाननी रसलीलाना भावो सुंदर रीते प्रकट कर्या छे. आनुं रसपान जेम जेम करवामां आवे, तेम तेम हृदयनी तृषा वधती जाय छे. भगवानना दर्शननी आर्तिवालां हैया ने ते सुधा समान शीतलता आपे छे. आ ग्रन्थनुं प्रयोजन समजावतां आप श्री कहे छे व्रजसीमन्तिनी साथे भगवाने लघु रास कर्यो अने संयोग सुख आप्युं पण तेमने मान भाव थतां भगवान तिरोभूत थया. त्यारे तेओ श्री ए भगवाननी लीलानुं अनुकरण कर्युं तथा गुणगान कर्या त्यारे प्रभु प्रकट थया अने रासनुं सुख आप्युं ए उभय प्रकारनी लीलानो अनुभव श्रीमहाप्रभुजीने थयो अने तेनुं वर्णन 'मधुर' शब्दथी करे छे.

प्रभुथी विप्रयोगनी अवस्थामां प्रभुना स्वरूप तथा गुणगानज स्वास्थ्यनो हेतु छे. विप्रयोग दशामां एक क्षण पण करोडो युगो जेवी ताप क्लेश थी असह्य बने छे. मात्र प्रभुनी लीलानुं स्मरण–ध्यान गुणगानज स्वास्थ्य आपे छे. ते विप्रयोगनी दशामां श्रीमहाप्रभुजी ए 'मधुराष्टक' नी रचना करी छे.

त्यारपछी श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरणना पांचमा आत्मज श्रीरघुनाथजी कृत विवरण अने छेल्ले श्रीहरिरायजी कृत मधुराष्टक तात्पर्य चितना निरोध माटे श्रीवल्लभाचार्यजी ए सेवानी प्रणालिका योजी छे सेवा द्वारा प्रभुना संयोग सुखने मेलववानुं छे. पण सेवा पछीना

समयमां चिन्तना निरोधने माटे मानसी सेवा कही छे. सेवा ए देह अने वितथी करवानी छे. मानसी सेवामां भाव मुख्य छे. ए भावना स्थैर्य, पोषण अने वृद्धि माटे श्रीहरिरायजी ए स्वरूप भावना, लीला भावना तथा भावभावनानो प्रकार जणाव्यो छे. स्वरूप भावना 'योग' नी माफक प्रभुनुं चिन्तन करवुं जोईए. पण आ चिन्तनमां प्रभुना दर्शन न थवाथी जे आर्ति थाय ते आर्ति तेमां मुख्य होय छे. त्यारपछी प्रभुनी लीलानुं चिन्तन करवुं आ लीला भावना थी हृदयमां स्वस्थता आवे छे. आ भावनामां लीला रूप भक्त बनी जाय छे पछीनी अवस्था ते भावभावना आनाथी प्रभुनां स्वरूप अने लीलामां आसक्ति थाय छे. अने लीला सम्बन्धी सुखनो अनुभव थाय छे जेम क्षुधामां अन्नरसनो अनुभव थाय तेम भावभावनाथी लीला अने स्वरूपना सुखनो अनुभव थाय छे. श्रीमहाप्रभुजीनुं भावभावन आ 'मधुराष्टक' ग्रन्थमां जणावेल छे. प्रभुथी विप्रयोग दशामां प्रभुना स्वरूप तथा तेमना प्रत्येक अंगथी करायेली लीलानी भावना ए आ ग्रन्थनुं तात्पर्य छे. विरत दरम्यान ताप भाववाला भक्तोथी रही शकातुं न थी त्यारे स्व समान भाववाला समक्ष पूर्वे अनुभवेला स्वरूपनुं निरूपण करे छे. गोपीजनो ए जे जें रसात्मक स्वरूपनो अनुभव करेलो तेनुं विरहमां फरी थी अनुभव करे छे. जुदा जुदा गोपांगनाओ श्री अंगना जुदा जुदा अवयवोना सौन्दर्यनो अनुभव करे छे. अने पोत पोताना अनुभव जुदो जुदो वर्णवे छे. एक अधरनुं वर्णन करे छे, तो बीजा मुखनुं, तो त्रीजा नेत्रनुं. श्रीमहाप्रभुजी पण गोपीजनना ते ते भावनुं स्मरण करीने प्रभुना स्वरूप तथा लीलानुं मधुर भावे वर्णन करे छे. आमां निरूपेली भावना करवाथी प्रभुना ते ते भावना सिद्ध थाय छे अने रस स्वरूपनी प्राप्ति थाय छे.

व्रजभाषानी टीका स्पष्ट होवाथी अहिं आ तेनो खास उल्लेख कर्यो न थी.

श्रीप्रभुजीए करेला प्रभुना मधुरस्वरूप अने लीलाना अनुभवनुं दान निजजनो ने थाव.

भावात्मक पुष्टिमार्गमां प्रभु भावात्मक छे. अने तेमनुं स्वरूप तथा लीला ए पण भावात्मक छे. तेमनुं अहर्निश चिन्तन ध्यान थवुं जरूरी छे.—तेज पुष्टिमार्गीय योग छे. ए ध्यान साधनथी लभ्य नथी पण प्रभु कृपा होय तोज. आ कृपाना पात्र त्यारेज बनायके ज्यारे ब्रह्म-सम्बन्ध प्राप्त करीने प्रभु सेवा परायण बनाय वोज.

आ ग्रन्थनुं मुद्रण करीने श्रीपुष्टिमार्गीय युवक परिषदे सम्प्रदायनी उत्तम सेवा करी छे ते माटे धन्यवाद घटे छे. आवां बीजां पण ग्रन्थो ते संस्था प्रकट करो ए वो मनोरथ व्यक्त करु छुं. परिषदना उत्साही मानद मंत्री श्रीगिरधरलाल जगजीवनदास शाहे आ प्रस्तावना लखवानुं मने सूचन करीने मने जे तक आपी छे ते माटे तेमनो आभार मानुं छुं वली आ ग्रन्थनो संस्कृत विभाग शुद्ध रीते परिश्रम पूर्वक छपाववाना कार्यमां शास्त्रीजी केशवराम भाई ए जे सेवा आपी छे तेमनो पण आभार मानवो आवश्यक छे.

लि० जेठालाल गोवर्धनदास शाह ना
सविनय भगवदस्मरण.

श्रीकृष्णः ।

“श्रीमधुराष्टकनुं माधुर्य”

[लेखक० नि० ली० पू० पा० गो० श्री ६ श्रीव्रजनाथलालजी महाराज]

श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रणीत मधुराष्टक स्वमार्गीय साहित्यज्ञोथी अपरिचित नथी. श्रीमन्महाप्रभुने विप्रयोगदशामां विविध लीला रसात्मक रासेश्वरनी जे कई अलौकिक लीलाओनां निगूढ अनुभवो उपलब्ध थया हता ते सर्वने निजजनो पर अनुग्रहनी वर्षा करवा श्रीमहाप्रभुजी ए ‘मधुराष्टक’ मां व्यक्त कर्या छे. खाचितज तेनी मोहक गंभीरता चिंतनीय छे. इ० सं० १९२६ मां श्रीना चरण पामेलां वैष्णव मुलचन्द्र-तुलसीदास तेलीवाला ए श्रीमधुराष्टक उपरनी छ टीकाओने शोधी मुद्रित करी हती. तेथी तेनी सहायता थी—श्रीमधुराष्टकनुं माधुर्य विद्वद मधुपो सरस चारवी शके छे. वस्तुतः श्रीमधुराष्टकनुं माधुर्य नाम थीज स्पष्ट छे. श्रीमदप्रभुचरणनी ललित विवृत्तिथी तो एं माधुर्य विशेष मार्दव भयुं थई गयुं छे. आपनी विवृत्तिनी शैली महाकवि बाणनी कादम्बरीना जेवीज मननीय अने रमणीय छे. हुं एज विवृत्तिनो आशय गो० श्रीघनश्यामजीना टिप्पण ने आधारे लखवा पेरायो छुं.

ए निर्विवाद छे के आपणा सम्प्रदायनुं आवुं सर्वांग सुन्दर अने सर्वोत्कृष्ट साहित्य मूर्ख, विषयाक्रान्त लोको (!) माटे न थी आवा साहित्यना अवलोकनमां अधिकार परम लक्ष्य छे. अतः श्रीमत्प्रभुचरण स्पष्ट अधिकारनुं निरूपण करे छे के—

पार्थये रसिकाःस्वरैं पश्यन्तिन्वद महर्निशम् ।
एतद्रसानभिज्ञास्तु माद्राक्षीदपि वैष्णवाः ॥

अर्थात्—हे रसिको ! साम्प्रदायिक साहित्यमां त्हमे स्वच्छन्द थी विहरो किन्तु एक प्रार्थना छे.—जे भगवानना अनुग्रह रसथी सिचाया न होय लौकिक विषयोमांथी जे निवृत थया न होय तेवा माला-

तिलक धारी अहंमन्य वैष्णवो ए तो उक्त प्रकारनुं दिव्य साहित्य जोवुं न जोईए.

हु एज आज्ञानुसार प्रिय वांचकवृन्दने विनवुं छुं के श्रीमत्प्रभुचरणनी उक्त अनुज्ञानुं ध्येय हृदयारूढ करीनेज आ दिशाए संचरशो.

भक्तेच्छा पूरक स्वामी, निगूढ हृदयवली.
श्रीमदाचार्यने वन्दु, गुप्तलीलाति मोहन.

श्रीमहाप्रभुजीने व्रज अत्यन्त प्रिय हतुं. आप दैवोद्धार प्रयत्नात्मा हता. आपना हृदयमां निगूढ रहेला अनुभवो वस्तुतः श्रीमहाप्रभुनां जीवन हता. ए बधां अलौकिक अनुभवोने पोताना जीवोने कृतार्थ करवा श्रीमहाप्रभु श्रीमधुराष्टकमां निरूपे छे. के.

मधुरा एटले श्रीमद्राधा अने अधरःसुधा ए उभयना अधिपति तेज मधुराधिपति. श्रीकृष्णनुं प्राकटच श्रीमद्राधानी अघर-सुधाना पान करवाज थयुं हतुं लालसाथी सुधा-ग्रहणमां तदेकपरता थाय छे. जेम सुधा देव भावनी उद्बोधिका छे. तेम आ अधर–सुधा ए अधर रसभावनी उदबोधिका छे. श्रीमद्राधा सिद्धि रूपा होई तेमां प्रवेशेल सुधा ए सर्व सिद्धिनी संपादिका स्वतः सिद्धज छे. आवुं माधुर्य अन्यत्र कम्हां ए न थी. आवालीला सह वर्तमान श्रीकृष्णज श्रीमहाप्रभुजीना सर्वस्व छे.

मधुव्रतिथी गुंजायमान, सुवर्ण, युथिका विगेरे कुसुमोथी रचायेल केलि–शयनवाला, प्रिय सखी ओ ए विविध तांबुल, अंगराग, यावक, अंजन-पात्र, सिंदूर, कंचुकी आदि मणि मुक्ताहारो जेना मध्य भागमां लावी मूक्या छे एवा, अने ज्यां मधुर सुन्दर वेणुनाद थी पाछल नेपुरना ए मंद स्वरो थई रह्या छे. एवा कोई एक लता कुंजमां (लतान्तर थी सखीओथी निरवाना) श्रीमद्राधा कृष्णना रसावेशज नित मर्यादा रहित लावण्य विभवोने श्रीविरह वन्हि वारंवार स्मरी स्मरी वर्णवे छे.

अहीं ततश्चकृष्णो पवने जल स्थले आ प्रतीकमां निरूपित

मर्यादा राहित्य समजवुं. केवा वनमां १ श्रीमत्प्रभुचरणे ते माटे वन वर्णव्युं छे. लीलोद्बोधक मधुपोनां निरन्तर गुंजन थी लीला-कुंजनुं ज्ञान थई शके. अन्यथा नहि. अतः अनेक सुगन्धी मालाओ तथा रति-श्रम-जलाद्रि पुष्प शैया थी सुरभि-प्रमत्त बनेला मोद लपंट भ्रमरो लीलानुं स्मरण करावता त्यां गुंजी रह्या छे. लीलोपवनमां उद्बोधक पदार्थोना आ नयन ना बे कारणो छे. प्रथम स्नान्तमां पुनः शृंगार माटे अने द्वितीय विपरित रतिमां प्रभुने शणगारवा ने माटे प्रभु कुंज-मध्यमां मुरलीनो मीठो रव करे छे. ते थी पधारेल स्वामीनीओना चरण मंजीरोनो ध्वनि तेमां लीन थई जतो तोइ भक्तोना आगमननुं ज्ञान कोइ नेये नथी थतुं. आवा महारसनी सन्निधिमां कोईनी पण स्थिति असंभवित छे. माटेज अन्य सखीओ रति समयमां पोतानी स्वामिनी ना विजयने पेरवी संतोष प्राप्त करवा बीजी लताओमांथी संताइने दर्शन करे छे.

रसलीलाना समये श्रीमद्राधाकृष्णनां वदनो केवां शोभेछे ?

अतएव श्रीमत्प्रभुचरण प्रथम श्रीमद्राधा वदन माधुर्यने विवेचे छे.

अर्ध लज्जाथी नमेल नेत्र कटाक्षथी निरिक्षण करातुं दंत क्षत दाननी सुषमाथी रमणीय दीसतुं, गाढ चुंबननां अवसरे तांबूलादि थी चित्र-विचित्र थयेले गंड द्वय युक्त विशाल मुक्ताफलनी आवलि थी शोभित कर्णालंकार थी संगत लीला मणि मुक्ता अने अरुणमणिथी शृङ्खलित अलकावलि थी दीपी रहेलुं अगरु सार, कस्तुरी तथा कुंकुंममणिनां बिन्दुओ थी अलंकृत भाल-प्रदेशान्वित, मानो कुपिता एज ज्यां भ्रूभंगनी रचना करी छे. तेवुं. विविध-बंध-लीला थी व्यस्त थइ गयेल श्री अंग रचना युत, अन्योन्य गंड द्वयनां संगनमां रति-श्रम. शीकरो थी आर्द्र श्रीकृष्णनी गंडस्थ तिलक रचनानी प्रति कृति थी कमनीय एवुं मुक्तालंकार-भूषित सुनासापुट संयुक्त श्रीमती वृषभाननंदिनीनुं वदन माधुर्यमय छे.

विजित बिम्बाधरयुक्त, कनकसुत्रथी सूचित, विशाल, सुभग निर्मल मुक्ताफल थी सुन्दर दिसतुं श्वास थी उंचानीचा थवा नासापुटयुत, त्रिभुवनविजय व्यग्न नयनोथी मधुरु कुटिल भ्रू थी मन माहनारुं कईक हास्य थी विगलित थता विमल सौरभथी द्विरफोने मुग्ध करतुं. मल्लिकादि कुसुमोथी खसित केश पासथी युक्त उज्ज्वल उच्च चिबुक थी युत, हिरकादि मणिमय अलकावलि थी मधुर दिसतुं प्रतिक्षण वृद्धिगत थता प्रेम–सित्कारोवालुं मकर–कुंडल–मणि गंड मंडल थी प्रोद्भाषित् क्यारेक चकित नयनोथी सुशोभित श्रीरासेश्वर नन्दनन्दननुं वदन मधुरप भयुँ छे.

गुंजा मणिहारोथी शोभतुं, श्याम-कंचुकीथी आच्छादित, मृगमद पत्रथी अंकित, कुंमकुंम रचनाथी रंगायेलुं, लावण्यना सरोवर समोवडुं उत्तुंग उरोजो थी संश्लिष्ट, रति-श्रमनां बिन्दुओनां प्रोछनथी आर्द्र, बिचित्र वसननां अंचलथी ढंकायेलुं कनक यूथिका. कुसुम मालाओ ी दर्शनीय दीसतुं, अति गौर विविध महामणिओथी जड़ायेली कनक मुद्रिकालंकृत श्रीकृष्णनी अंगुलीथी संदर्शित क्रीडनमां दूर थयेल कंचुकी–अवकाशवालुं श्रीमद्रा धानुं हृदय माधुर्यनां मार्दवथी भरेलुं छे.

कंठा भरणथी भूषित, तैनी पाछल मुक्तामालानी परंपराथी सुशोभतुं, पिनोन्नत, श्रीमद्राधानां आलिंगनथी विमर्दित मालावालुं, सुवर्ण मणिथी जटित वेणुथी दीपता दक्षिण करवालुं क्षणे क्षणे वृषभानुने आलिंगतु शिथिल उत्तरीयवालुं कोटि कंदर्प लावण्य श्रीमद्राधाकान्तनुं हृदय माधुर्यमय छे.

अवसर विशेषमां अंतरंग सखीओथी बिज्ञापित्त, सुरम्य, विविध रुचिर फूलोनी मीठी सुगंध–लोलुप भ्रमरोथी गुंजित, कोकिलाओनां कुजनोथी कुजित रचित शैयावाला अन्यलतागृहमां रमणेच्छु श्रीमद्राधाकृष्ण मार्ग वच्चे आपता पुष्प-पक्षि अने सख्यादि ओमां अपांगोनुं मोचन करतां विविध चुम्बन–आश्लेशादि लीलाओ आचरता पुष्प-

गुच्छोने आकोशे उडावता गजेन्द्र लीलानुं ए अनुसरण करता ए सासक्त बाहुओ करी लीला, कमल वडे क्रीडन करता, ताम्बूलोनुं चर्वण करता, कल-गीतोनुं गान करता; मृदुलता ओने प्रेमथी निवारित करता गमन करता. हता. श्रीमद्राघाकृष्णना आवा अवर्णनीय मधुर गमन मां श्री-महाप्रभुजीने जे माधुर्यनो अनुभव थयो तेनुं मधुराष्टकमां आप श्री ए मधुरुं स्मरणगान कर्युं छे. आगल श्रीमद्राधाकृष्णनी निरवधि रसाकर लीलाओमां श्रीमहाप्रभु तन्मय बनी जतां होइ वर्णन अशक्ति ने लीधे मधुराष्टकना प्रत्येक पद्यनी अन्ते ‘मधुरेश्वरनुं सघणुं मधुर” एवी रहस्य भरी मधुरी आज्ञा करे छे.

आज प्रकारनां समय विशेषमां उद्‌भवेला स्वप्राणभूत अनुभवो मधुराष्टक ना बीजा पद्यमां श्रीमहाप्रभु ए निरुप्या छे.

श्रीकृष्णचन्द्रनां प्राणप्रिय, व्यर्थ कोपायलां, स्वकूत्रनथी कोकिल कूजनथी कोकिल कूजनने जितनार कुटिल भ्रूवल्लीवाला, सुशोषाणतर अधरवाला, अनंग भारथी गर्विष्ट अने स्नेहार्द्र अपांग निरिक्षणोथी श्रीकृष्णना मुख-सरोजने जोतां श्रीकृष्णनी रससंवलित लीलाओथी खसी गयेल वस्त्र-नियन्त्रण वाला श्रीकृष्णथी परिपिडित पिनोन्नत स्तनोवालां छलथी करायेल अने हस्त थी ढंकायेल सर्वांग चुम्बनना आमोदथी प्रत्यंग पुलकिता कपोलांचल थी व्यवहित थइ वचन रचना-वाला, स्मित-सुमन वेरता समीप रहेलां श्रीकृष्णनां मुख-कमलादिनां अंगुष्ठा भरणमां पडतां प्रतिबिंबथी रसना आवेश थी “प्रथम म्हारेज चुंबन करवुंज जोइए” एम विचारी अंगुष्ठा भरणनुं चुम्बन करता विपरित रतिना वचनादिमां रसथी भ्रमण करता. केलि-शयनमां मुग्ध भावथी चंचल थई जतां श्रीमद्राधानां मधुराधिपति संबंधी वचन, चरित, वसन, वलित, चलति, भ्रमति ए सर्व मधुर छे. तेज प्रकारे श्रीकृष्णनां ए श्रीमधुरेश्वरी संबन्धीनां ए सहु माधुर्य-झरतां छे.

मित्रोने देखाडवाज प्रभु गायो ने निरखा गिरि ए चढया, हता. किन्तु उदेश एमनो ए न्होतो. दूर थी स्वप्रियाओना सौन्दर्य गति विलासने

आर्तिभर थी विचित्र वस्त्राभरणने तेमज चकित अवलोकनादिने जोवाज प्रभु गिरि-शृंगे पधार्या हता. परन्तु गोप-समाजने आनुं ज्ञान जरा ए न्होतुं एतो एमज मानतो के अनेक कुसुमोथी कुसुमित सुस्वादु फलोथी फलित लता द्रुम निकुंजोथी समृद्ध थयेल श्रीगोवर्धन पर्वत प्रभु गोचारणमां प्रवृत्त थया हते. श्रीकृष्णने माटे श्रीमद् गोपीजनो गोरस विक्रयना व्याजथी विविध वस्तुओने लइ सहचरोथी अज्ञात पोताना आगमनने सूचित करता. कालिन्दी तटस्थित रस-निकुंजनुं ज्ञापन करता वेणु-रवने सांभली त्यां गया. श्रीकृष्णना आलिंगनने पामेल रति. श्रमजलथी आर्द्र कुकुंमांकित स्वकीय उत्तरीयथी अलकोमां रहेली गोरेणुना प्रोंछननो अभिलाष सवेता, प्रोंछन समये ‘रेणु’ मां अने ‘वेणु’ मां श्रीकृष्णना हस्त स्पर्शथी पुलकित अवयवो वाला पूर्व रचित विविध सुमनोथी विनिर्मित शयनमां बिराजेल श्रीकृष्णनां चरण संवाहन परायण मत्ते भक्तिवाला, श्रीकृष्णना चरण कमलमां आसक्त श्रीमदगोपीजनोने दूरथी जोई प्रतीक्षा करता श्रीकृष्ण शिखर उपर थी उतरी रसात्मक नृत्य करी पोताना अनुरागने प्रगट करवा लाग्या.

प्रभु ए वेणु-रवमां त्रण स्वरो करेला. निकट निकुंज सूचक संकेत रूप मंद स्वर, कईक दूर सूचक मध्यम स्वर अने सुदूर निकुंज सूचक तार स्वर आवा स्वर भेद थी श्रीकृष्णेवेणुद्वारा भक्तोने अन्तरंग भक्तोने-आह्वान अर्प्युं हतुं यदि प्रभु स्वर भेदवालो वेणु-ध्वनि न करेतो मित्रोने संकेतनो बोध थई जाय. अतः अहीं नाद भेद थी रसात्मकता सुचवाइ छे. जेम मयूर मयूरीने पेरवी रसाविष्ट बनी सर्वांगगत रसने एकत्रित करवा तथा मयूरी ओनां इपसित दानने काजे मयूरी सह नृत्य करे छे. तेम मयूर-मुकुन्द. मयूरी-भानुजा साथे नर्ते छे.

तेवाज रस-निकुंजमां कदाचित श्रीमद्राधा गीत करे छे. रसावेशथी परस्पर अधर-रस सुधानुं पान करे छे. पोताना अभिलाषोने प्रकट करती श्रुत-दुग्ध-मोदकादि सामग्रीओने श्रीमदगोपीजनो लावेला एनुं भोजन करेछे. तदनन्तर कुसुम शयनमां श्रीमद् गोपीजनोनां

सर्व अभिलाषोने प्रभु शयन द्वारा संपूरे छे.

प्रभुनुं ए शयन पूर्व संचित विविध-बंध मनोरथोथी उद्भवेल रसविशेषनुं दान करनाइं हतुं. त्यारपछी रसावेश थी प्रकटेल मर्यादा राहित्यनां क्रीडनथी प्रभुए स्वामिन्यादिओए करेलां रूपनो अंगीकर कर्यो. आ प्रकारे अभिलाष पूर्या बाद व्यस्त शृंगारमां श्रमार्द्रताथी उभययांकित तिलक-रचनानुं माधुर्य वदनारविन्दोमां श्रीमहाप्रभुए अनुभूत कर्युं तेज श्रीमहाप्रभुए अत्र निरुप्युं छे.

मनमां निश्चित करेल दिवसे सदा विहारनी इच्छाथी निकलेलां वेणु-ग्रथित बकुल-मालती-कुरबक आदि कुसुमोनां परिमलो मन्द भ्रमर गणथी—आकुल केशपास वाला स्मितविकास युक्त विभ्रमथी द्रवीभूत लावण्य मुख वाला हिरकादि मणी गणथी रचित मृगमदादिनी तिर्यंक रेखाओथी शोभित भाल-बिन्दुवाला नासापुटमां लोल मुक्ताओथी शोभता. समाधिष्ट उरोजो पर तरलित थता हारवाला विचित्र वसनान्तरथी दीपी रहेल अखिल वेश रचनावाला अलक तक रागाक्त पदांगुली विराजीत विविध नेपुरवाला, स्थिर ग्रीवाथी दधि कलशिकाओने मस्तके लई जता श्रीमदगोपीजनोने व्रजाधिपसुत श्रीकृष्णे मित्रोनी साथे रोक्या. समीप आवेला चकित नयन गोपांगनाओथी चित्तने खोई बेठेला वदनेन्दु सुषमाथी अनेक गोप वधूओने मुग्ध करता. दूर रहेली गायोना निरीक्षणना व्याजथी मित्रोने स्थानान्तर करतां वक्रोक्ति अने कपोल उरोजादिनां स्पर्शथी कन्दर्पने आविर्भूत करता. उत्तमांग रहेल दधि-भाजननुं गृहण करता विविध मणीमय कांची-पट्ट-प्रसूनोने एकज करथी ग्रही लेता, विविध रचित प्रसून-प्रेदभूत निर्मल परिमलोन्मद मधुव्रतोनां गुंजन थी गुंजित लत्ता-गृहमां घोष-नन्दिनीओने लावी श्रीकृष्णे जे अनेक अलौकिक लीलाओ करी—प्रेमाब्धिनुं 'तरण' संपादित कर्युं, मर्यादा रहित 'रमण' कर्युं हास्य मालादिओनुं जे 'वभित' कर्युं. क्षुद्रघंटिकाओनुं शमन कर्युं ए समग्रनुं स्मरण करीने श्रीमहाप्रभुजी मधुराष्टकमां तेनुं वर्णन करेछे.

आ प्रमाणे क्यारेक बकुल-आम्र-कदंबादि द्रुमोथी घेरायेल मंदबायु थी—सुवासित केलि योग्य तरणि तनया नां कूलमां स्नानादिना व्याजथी पधारेल श्रीमद्राधा साथ मकर कुंडल मंडित गंड मंडल थी अखिल भुवनने प्रकाशित करती, कमलदल लोचन, मुरलीधर, गुंजामणि हारो थी वक्षःस्थल ने शोभावती श्रीमद्राधा वदन ने अवलोकता निखिल मनोरथ स्वरूपे प्रादुर्भूत थयेला प्रभुए आश्लेशादि लीलाओ करी हती. श्रीयमुनामां जलक्रीडा तेम कमलक्रीडन ए करेलुं तदनन्तर कुंजमांथी नीकलता पुष्पावलि-रचित केलि शयन थी उद्भवेल श्रमजलथी भीजाये मुख-पद्मवाला प्रिय थी अर्पायेल कमल थी क्रीडा करता, राधिका साथे जवाना अनेक मार्गो स्फूटी भूत होवाथी ज्यांसुधी मार्ग-विभेदन थाय त्यांसुधी प्रियाने अर्पेल मालाथी उर-स्थलने दीपावता साथे रहेल मंद गति वाला, क्षणे क्षणे आश्लेशादि लीलाओ करता, धूर्णायमान नयन सुषमावलोकनमांज परायण क्यारेक आगल क्यारेक पाछल अने क्यारेक बाहुबंधथी गहन लतच्छादित कुंजमार्गमां यथा सांकर्यथी जया लाग्या. मार्ग-संधि आवता परस्पर द्रष्टिथीज जइश एवी अनुज्ञा मेलवी अनोन्य गुंजामणि हारोनो विनिमय करी पधारता. श्रीमद्राधा कृष्णमां श्रीमहाप्रभुए जे माधुर्य अनुभव्युं तेनुं 'गुंजा मधुरा' थी 'शिष्टं मधुरम्' पर्यन्त श्रीमधुराष्टकमां वर्णन कर्युं छे.

एवी अनेक लीलाओ कर्या पछी श्रीकृष्ण गोप समाजमां प्रवेशे छे. गेह गमनांतर गोप वधूओ सायंकाले प्रियना आगमननी प्रतिक्षा करती गोष्ठमां रही हती. गोपसमाज स्थित गोप-गीत-कीर्ति, वेणुवादन परायण गोरजच्छुरित कुन्तल प्रभुए व्रजस्थोनां तथा गायोनां दिन तापनो नाश करवा उद्युत थयेला प्रभु विचित्र 'यष्टि' गृहणथी तथा गायोने वर्णादि भेदे करेला आह्वान थी स्वसमीपे दर्शनार्थ आवेला विचित्र वसनाभूषिता श्रीगोपीओने सर्वगोचर कटाक्षस्पर्शादिना संकेत थी प्रमुदित करता हता. आवा निखिल माधुर्य-रस-पूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीमहाप्रभुए दर्शया. अने तेवी माधुर्य भरी सृष्टि मां मधुरप भर्या जे कई

अनुभवो पाप्त थया तेनु वर्णन 'गोपा मधुरा' थी 'सृष्टिर्मधुरा' पर्यन्त श्रीमहाप्रभु ए कर्यु छे. मधुराष्टकमां मुख्यत्वे श्रीकृष्णनां सर्वांगनुं वर्णन होइ श्रीमत्प्रभुचरणे विवरणमां श्रीमद्राधाना वर्णननो ध्वनि मुख्यत्वे विरच्यो छे. एमनो श्रीमद्राधा अने श्रीकृष्ण ए उभयनी लीलाओ ललित-मधुरप भरी अने अकथनीय छे.

श्रीमहाप्रभु वर्णन करता करता माधुर्य-रस महाब्धिमां निमग्न थई जतां श्रीमधुराष्टकनां अन्ते 'दलितं मधुरम्-फलितं मधुरम्— प्रतिपादन करे छे. श्रीनन्दगृहना क्यारामां उगेला श्रीमदगोपीजनोना राग-सिंचन थी संवृद्ध थयेलां शृंगार कल्पद्रुमना बधा दलित फलतादि माधुर्यनी पराकाष्ठा छे.

श्रीरघुनाथजी, श्रीबालकृष्णजी अने श्रीगोकुलनाथजी ए पण श्रीमधुराष्टक पर स्वतंत्र विवृत्ति—विवरणो लख्यां छे. श्रीबालकृष्णजी अने श्रीगोकुलनाथजीनी विवृत्तिओ भावमां गंभीर छे उपक्रम तथा व्याख्यामां प्रत्येक विवृत्तिओमां विलक्षणता दीखाई छे. श्रीमत्प्रभुचरणनी विवृत्ति तो भावप्रचुर छे. श्रीघनश्यामजीनुं टिप्पण पण ते उपर सारो प्रकाश पाडे छे. मधुराष्टकना अन्य संस्करणमां श्रीमत्प्रभुचरणनी विवृत्तिना पाठ भेदो प्राचीन ग्रन्थोथी प्राप्त करी उमेरी देवामां आवे तो अभ्यासकोने घणी सरलता पडे. महानुभावी श्रीमदहरिराय चरण कृत 'मधुराष्टक तात्पर्य' मां तो वस्तुतः माधुर्य निर्भरे छे. में श्रीमत्प्रभुचरणनीःविवृतिनो आशय यथामति उपर उल्लेख्यो छे. परंतु निगूढ ग्रन्थनी निगूढ विवृत्तिनी निगूढता थी संभव छे के कोई स्थले स्खलन थई गयुं होय तो तेनी विद्वद् वृन्द अवश्य उपेक्षा करशे. एवो अभिलाष सेवी विरमुं छुं ।

राधाधर सुधापातुः किमन्यन्मधुरायितम् ।
यन्निवेद्यं तदप्येतन्, नाम संबंध तो भवेन् ॥

(कार्तिक कृष्ण ६ वि० सं० १९८८ गुरुवार ता० ३.१२.१९३१)

आवश्यक नोंध श्रीपुष्टिमार्गीय युवक परिषद—मुंबईना प्रणेता. पोषक, उत्तेजक अने मार्ग दर्शक. प्रातःस्मरणीय. श्रीमद्वल्लभकुल कौस्तुभ नि० ली पूज्यपाद गो० श्री ६ श्रीव्रजनाथलालजी महाराज श्री ए त्रीस वर्ष पूर्वे लखेल "श्रीमधुराष्टकनुं माधुर्य" लेख श्रीमधुराष्टकनी संस्कृत छ टीकाओ तथा व्रजभाषानुवाद सहित ना प्रकाशनमां प्रकट करी आनंदानुभव करीए छीए अने पूज्यपाद महाराज श्री ए परिषदनी प्रगति मां प्रेरणाना पीयूष पाइ जे सुन्दर फालो आप्यो हतो तेनुं स्मरण करी कृतज्ञता व्यक्त करीए छीए.

निवेदक : प्रकाशक

। श्रीकृष्णायनमः ।
।। श्रीगोपीजनवल्लभायनमः ।।
।। श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।।

अथ श्रीमधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।१।।
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ।।२।।
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ।।३।।
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।४।।
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।५।।
गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मघुरम् ।।६।।
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।७।।
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।८।।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण प्रकटितं श्रीमधुराष्टकं संपूर्णम् ।

श्रीकृष्णाय नमः ।
श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।

मधुराष्टकम् ।

श्रीमद्विट्ठलेश्वरविरचितविवृतिसमेतम् ।

नमामि श्रीमदाचार्यान् निगूढहृदयान् प्रभून् ।
भक्तेच्छापूरकान् सर्वाज्ञातलीलातिमोहनान्[1] ॥ १ ॥

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ १ ॥

श्रीमत्प्रभुचरणाः प्रियव्रजस्थितित्वेन दैवोद्धारप्रयत्नात्मत्वेन च स्वान्तर्निगूढान् अलौकिकानुभावान् स्वसर्वस्वान् स्वीयानामनुग्रहार्थं[2] प्रकटीकृतवन्तः **अधर**मित्यादिना। **मधुराधिपते**रिति। मधुरा श्रीमद्राधा अधरसुधा च तस्या अधिपतेरिति भावः, एतदर्थमेव प्राकट्यात् ।

श्रीघनश्यामविरचितमधुराष्टकविवृतिटिप्पणी ।

मधुराधिपतेरित्यस्य विवृतौ **श्रीमद्राधाधरसुधे**ति। 'राधाधरसुधापातुः किमन्यन्मधुरायितम् । यन्निवेद्यं तदप्येतन्नामसम्बन्धतो भवे'-दित्यत्र निरूपितं सुधामाधुर्यमित्यर्थः । **एतदर्थं**मिति । एतदर्थमित्यर्थः, सुधाग्रहणार्थमेव प्राकट्यात् । तत्रापि लोभगतत्वेन तद्ग्रहणेन तदेकपरता भवति । तत्रापि सुधा यथा देवभावोद्बोधिका तथा इयं एतद्रसभावोद्बोधिका । तत्रापि राधा सिद्धिरूपा, तद्गतत्वेन ग्रहणे सर्वसिद्धिसम्पादिकेत्यर्थः ।

---

१ मोहितानिति पाठः । २ स्वीयानामर्थं इति पाठः ।

एतादृशमाधुर्यं नान्यत्र, लीलासहितस्यैव सर्वस्वत्वात् । रसावेशजनितमर्यादारहितयोः क्वचिल्लताकुञ्जे गुञ्जन्मधुव्रते सुवर्णयूथिकादिकुसुमरचितकेलिशयने प्रियसख्यानीतविविधताम्बूलाङ्गरागपुष्पहारयावकाञ्जनपात्रसिन्दूरकञ्चुक्यादिसहितमणिमुक्ताहारादिसम्पन्नान्तरे मधुरकलमुरलिकानादानुगमञ्जीरस्वने लतान्तरे(ण) सखीनिरीक्षिते परस्परलावण्यवि[1]भवयोः स्मारं स्मारं माधुर्यमनुवर्णयन्ति । तत्रापि[2] प्रियायाः त्रपार्धनतेक्षणकटाक्षनिरीक्षिते रदनच्छददानसुषमामधुरे गण्डद्वये गाढचुम्बनादिना

एतादृशत्वं नान्यत्र । **लीले**ति । अनायासेन हर्षात् क्रियमाणा चेष्टा लीलोच्यते । लीलासहितो भगवान्, श्रीमदाचार्याणां सर्वस्वत्वादिति निरूपितम् । **रसावेशे**ति । 'ततश्च कृष्णोपवने जलस्थले'त्यत्र निरूपितं मर्यादाराहित्यमित्यर्थः । कीदृशे वने ? गुञ्जन्मधुव्रते । निरन्तरं लीलास्थानत्वात् । तत्र भगवत्सम्बन्धिविविधसुगन्धमालापुष्पतल्पश्रमाम्भःसङ्क्रान्तत्वेन मोदलम्पटा मधुपा लीलोद्बोधकास्ते झङ्कारं कुर्वन्ति । तेन शब्देन कुञ्जज्ञानं सम्भवति । अत्र कुञ्जेऽस्तीति प्रियसखीवत् कुञ्जप्रदेशज्ञापका इत्यर्थः । **विविधे**ति । एतादृशानां पदार्थानामानयनं रतान्ते पुनः शृङ्गारार्थम् । अथवा विपरीते भगवति योजनार्थं पूर्वमानीतमिति लक्ष्यते । **मधुरकले**ति । भगवान् मध्यमुरलीनादं करोति येन स्वामिन्यागमने चरणमञ्जीरस्वनो मुरलीनादोपि अनुगतो भवति, तेन कस्यापि ज्ञानं न सम्भवति । एतदर्थमुक्तं **लतान्तरे**ति । महारसे सन्निधौ स्थातुमशक्तत्वात् । रतिसमये स्वस्वामिन्या जयमवलोकनार्थं स्वस्य सन्तोषार्थं लतान्तरे स्थित्वा अवलोकयन्तीत्यर्थः । **त्रपे**ति । पूर्णत्रपया नाऽनङ्गोत्पत्तिः । त्रपागमस्तु पूर्णे रसे भवति । अत्र निरीक्षणे [3]**त्रपार्द्र**त्वेन प्रेमाप्तसंरम्भनिरीक्षणेन अनङ्गोत्पत्तिं करोतीत्यर्थः । नितरामीक्षणकथनेन रदनच्छददानसुषमां प्रियस्य दर्शयती-

---

१ विभावयोरिति पाठः । २ तत्रेति पाठः । ३ त्रपार्द्रेति पाठो मूले क्वचित्स्यात् ।

ताम्बूला[1]दिविचित्रिते प्रियानासापुटगतमुक्ताफलपीडनेन अरुणतराङ्किते अनतिसूक्ष्ममुक्ताफलावलीशोभितकर्णालङ्कारसङ्गतहरिन्मणिमुक्तारुणमणिशृङ्खलितालकावलीराजिते अगरुसारकस्तूरिकाकाश्मीरमणिरचितबिन्दुभाले कुपितयेव रचितभ्रूभङ्गे विमर्दव्यस्तरचने अन्योन्यगण्डद्वयसङ्गे रतिश्रमशीकरार्द्रप्रियगण्डस्थतिलकरचनाप्रकृतिशोभिते मुक्तालङ्कारभूषितसुनासापुटे **वदने** । किञ्च, प्रियस्य विजितबिम्बाधरे कनकसूत्रसूत्रितबृहत्सुभगामलमुक्ताफलसंशोभितश्वा[2]सादरोन्नतिनतिमन्नासापुटे त्रिभुवनविजयव्यग्रनयनपुटे कुटिलभ्रुवि दरहासप्रियस्थ[3]विगलितामलसौरभलुब्धमधुलिहि मल्लिकादियुतमेचककेशपाशे किञ्चि[4]दुच्चचिबुके हीरकादिमणियुतालकावलीविराजिते प्रतिक्षणप्रवृद्धप्रेमप्रोद्यत्सीत्कारे मकरकुण्डलमण्डितगण्डमण्डले कदाचित् चकितनयने वदने । पुनः प्रियाया हृदये गुञ्जामणिहारवति श्यामकञ्चुकीपिहिते मृगमदपत्राङ्कितकुङ्कुमरचने लावण्य-

त्यभिप्रायेणोक्तं **विमर्दे**ति । विविधबन्धलीलया व्यस्ता श्रीअङ्गरचना यस्याः । एतेन महासौरतं द्योतितम् । अत एवाग्रे अन्योन्यगण्डद्वयसङ्ग इत्यत्र सुरतान्तावस्था निरूपिता । **मुक्तालङ्कारे**ति । मुक्तानामलं पूर्णत्वं जातं, [5]**मुक्ता**फलत्वेन महारसमयत्वादित्यर्थः । **प्रियस्ये**ति । बिम्बफलस्य विशेषेण जितत्वेन अधरगतरागसाम्येन जितबिम्बत्वम् । परमत्र सुधाधिक्येन विजितमित्यर्थः । **कदाचि**दिति । कदाचिदनागमनदशायां सिद्धिरूपत्वात् [6]**स्थाने** कृते पत्रादीनां चकितनयने भवतः, यथा 'पतति पतत्रे विचलितपत्रे शङ्कितभवदुपयान'मिति तदर्थम् । **गुञ्जामणी**ति । महारसे प्रसन्नेन प्राणप्रियेण स्वहृदिस्था गुञ्जामाला दत्ता तां परिधाय

---

१ ताम्बूलादिनेति पाठः । २ श्वासदरेति पाठः । ३ प्रियस्थेति नास्ति । ४ उज्ज्वलेति पाठः । ५ गुञ्जेति च पाठः । ६ ध्याने इति वा पाठः ।

सरसि संश्लिष्टोच्चकुचे रतिश्रमशीकरप्रोञ्छनार्द्रविचित्रवसनाञ्चलगोपिते कनकयूथिकाकुसुममाल्यशोभिते अतिगौरे विविधमहामणिजटितकनकमुद्रिकालङ्कृतप्रियाङ्गुलिसन्दर्शितविपाटितकञ्चुक्यवकाशे। किञ्च, कण्ठाभरणभूषिते तदनुमुक्ताफल[1]यष्टिपरम्पराविराजिते पीनोन्नते प्रियालिङ्गनविमर्दितस्रजि हाटकमणिजटितमुरलिकाशोभितदक्षिणकरे क्षणे क्षणे समाश्लिष्टप्राणप्रिये शिथिलोत्तरीये प्रियहृदये । किञ्च, अवसरविशेषे तादृशसखीविज्ञापिते लतागेहान्तरे विकचविविधरुचिरप्रसूनप्रोद्भूतगन्धलोलुपमधुपे धीरपवने पिकादिसमाकुले रचिततल्पे रन्तुकामयोः पूर्वोक्तविधयोः मार्गस्थविचित्रपुष्पपक्षिसख्यादिषु निहिता[2]पाङ्गयोः मध्येमार्गं कृतविविधचुम्बनाश्लेषादिरसयोः रचितपुष्पगुच्छोत्क्षेपणयोः गजेन्द्रलीलयोः अंसासक्तबाह्वोः उपात्तलीलाकमलयोः चर्वितताम्बूलयोः कृतकलगीतयोः वेत्रनिवारितमृदुलतयोः वागगोचरसुषमामधुरयोः गमने या माधुर्यानुभवो जातः तमेव ध्यायं ध्यायमनुवर्णयन्ति **गमनं मधुर**मित्यनेन[3] । निरवधित्वेनैवंविधैकैकस्य रसाकरत्वेन तन्निमग्नत्वेन च वर्णनाशक्तिं प्रतिपादयन्ति **अखिल**मित्यनेन । किञ्च । **अखिलं मधुर**मित्यनेन कदाचित् विपरीतशृङ्गारेपि पूर्णरसानुभवस्तादृश एवेति सूचितम् ॥ १ ॥

तादृशानेव समयविशेषोत्पन्नान् स्वप्राणरूपानाहुर्द्वितीयेन **वचन**मित्यादिना ।

स्थितामित्यर्थः । **अवसरे**ति । लीलानन्तरमुभयत्र पुनः शृङ्गारादिकं विधाय हस्ते मुरलिकां दत्वा आदर्शादिषु परस्परप्रतिबिम्बदर्शनेन अत्यार्तिभरं दृष्ट्वा तादृशात्यन्तरङ्गसखीभिर्विज्ञापितम् । अन्यत् कुञ्जेषु

[1] फलेति नास्ति । [2] नतेति पाठः । [3] इत्यन्तेनेति पाठः ।

वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥

श्रीमत्प्रभुप्राणप्रियाया मिथ्याकुपिताया जितपिकध्वनिकूजितायाः कुटिलभ्रूवल्ल्याः सुशोणतराधरायाः अनङ्गातिभरदत्तस्नेहार्द्रापाङ्गनिरीक्षितप्रियानना[1]याः प्रियकृतरभसवलितस्रंसद्दुकूलनियन्त्रणायाः प्रियाचरितोरोजालभनायाः छलकृतपाणिपिहितसर्वाङ्गचुम्बनामोदपुलकितप्रतीकायाः कपोलाञ्चलव्यवहितवचनरचनायाः सस्मितायाः अङ्गुष्ठाभरणप्रतिबिम्बितश्रीमत्प्राणप्रियमुखकमलादिसन्निधिभ्रमेण रसावेशे पूर्वं मयैव चुम्बनं कर्तव्यमिति कृताभरणचुम्बनायाः विपरीते वचनादौ रसभ्रमितायाः केलिशयने मुग्धभावाच्चञ्चलितायाः वचनादिकं मधुराधिपतिसम्बन्धि सर्वं मधुरमिति भावः । अखिलेत्यस्यार्थः पूर्ववद् भावनीयः ॥ २ ॥

वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ३ ॥

अतःपरं कदाचित् प्रभुर्विविधकुसुमितफलितलताद्रुमनिकुञ्जपुञ्जसमृद्धगोवर्धनाद्रिशिखरस्थितो गोचारणपरायणोऽस्ति । गोरसविक्रयादिव्याजेन प्रियार्थं विविधवस्तूनि गृहीत्वा प्रियसखिकथितं 'वेणुरवं शृणु किमाकुला गच्छसी'त्याकर्ण्य सहचराज्ञातस्वागमनसूचकं कालिन्दीतटप्रदेशं स्थितरसनिकुञ्जसूचकं रसात्मकं **वेणुरवं** श्रुत्वा तत्र गताभिः

गन्तव्यम् । तत्र च लीला कर्तव्येति विज्ञापितमित्यर्थः । **गोचारण**-इति । वयस्यानां बुद्धिस्तु गवामवलोकनार्थं प्रभुः गिरिशिखरे स्थितः । प्रभुस्तु स्वप्राणप्रियाणां दूरात् सौन्दर्यगतिविलासार्तिभरविचित्रव-

[1] प्रियाननश्रियाः इति पाठः ।

प्रियाश्लिष्टाभिः श्रमजलार्द्रकुचकुङ्कुमाङ्कितस्वोत्तरीयविहितालकस्थगोरेणुप्रोञ्छनाभिलाषाभिः वेणौ रेणौ च प्रियपाणिस्पर्शपुलकितप्रतीकाभिः पूर्वचिते[1]विविधकुसुमविनिर्मितशयनोपविष्टस्य चरणसंवाहनपरायणाभिः मत्तेभगतिभिस्तदेकमानसाभिर्निर्गतं तदा दूराद् दृष्ट्वा प्रतीक्षन् शिखरादवरुह्य रसात्मकं **नृत्यं** कुर्वन् स्वानुरागभरं दर्शयन् समागतस्य आनन्दाब्धिनिमग्नाभिर्वेण्वादिषु समनुसरसं ध्यायं ध्यायं अनुवर्णितं **वेणु**रित्यादिना । **मधुराधिपते**रित्यादि पूर्ववत् ॥ ३ ॥

गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ४ ॥

तादृशरसनिकुञ्जस्थल एव कदाचित् प्रियेण समं रसपरवशाभि**र्गीतम्** । किञ्च, परस्परं रसावेशेन यदधरसुधारसं **पीतं**, प्रियानीतविविधश्रृतदुग्धमोदकादि स्वाभिलाषसूचकं **भुक्तं** तादृशस्वाभिलाषसूचकश्रृतदुग्धमोदकाद्यङ्गीकृत्यानन्तरं कुसुमशयने तत्तदभिलाषं **शयनं** विधाय पूरितवान् । रसावेशजनितमर्यादाराहित्येन क्रीडने स्वामिन्यादिकृत**रूप**मङ्गीकृतवान् । तद्रीत्याऽभिलाषपूरणानन्तरं व्यस्तश्रृङ्गारे **तिलका**दिरचनां श्रमार्द्रतया उभयत्राङ्कितां वदनारविन्दयोरनुभूतां प्रदर्शितवान् । तमानन्दविशेषं स्मारं स्मारमनुवर्णयन्ति **गीत**मित्यादिना । **मधुराधिपते**रित्यादि पूर्ववत् ॥ ४ ॥

करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥

अतःपरं सदा मनसि भाविते‌ऽह्नि विहारेच्छया निर्गतानां समुद्ग्रथितमालतीकुरबकादिकुसुमपरिमलोन्मदभ्रमरयूथाकुलकेशपाशानां स्मितविकाशविभ्रमगल्लो[1]वण्याननानां हीरकादिमणिगणरचितमृगमदादितिर्यग्रे[2]वशोभितभालबिन्दूनां नासापुटाग्रगतोदारलोलमुक्तानां समाश्लिष्टोरोजेषु [3]तरलितहाराणां विचित्रवसनान्तरशोभिताखिलाकल्पानां अलक्तका-

---

स्वाभरणचकितावलोकनाद्यवलोकनार्थं गिरिशिखरे स्थित इत्यर्थः । **तदेक**इति । भगवत्येव मनो यासाम् । कुत्र मिलिष्यति ? कथं मिलिष्यति ? कुञ्जे वा गोपसमाजे वा गोधने वा गोवर्धने वा कुत्र मिलिष्यतीति । **तदेकमानसाभिः । किमाकुले**ति । देहानुसन्धानरहिता मार्गानुसन्धानरहितेत्यर्थः । **प्रदेशमि**ति । वेणुनादेन सूचितकालिन्दीतटप्रदेशमित्यर्थः । **वेणुरव**मिति । वेणुषु त्रिविधं स्वरं करोति । सङ्केतरूपं निकटनिकुञ्जसूचकं मन्दस्वरम् । किञ्चिद्दूरनिकुञ्जसूचकं मध्यस्वरम् । दूरनिकुञ्जसूचकं तारस्वरम् । अन्यथा वेणुनादे गानं कृत्वा सङ्केतं यदि सूचयति तदा वयस्यादीनां ज्ञानं भवति । तस्मान्नादभेदेन रसात्मकं सूचयति यथा कोऽपि न जानातीत्यर्थः । **रसात्मक**मिति । यथा मयूरो मयूरीं दृष्ट्वा रसाविष्टो भूत्वा सर्वाङ्गगतरस एकत्रकरणार्थं तासां यथेप्सितरसदानार्थं नृत्यति, तथा नृत्यं प्रभुः करोतीत्यर्थः । **स्वाभिलाषे**ति । स्वस्य योऽभिलाष उरोजादिस्पर्शानन्दरूपः तत्स्पर्शेन तत्तत्स्पर्श इव मन्यमानः सन् भुक्तवानित्यर्थः । **तत्तदभिलाष**मिति । पूर्वसञ्चितमनोरथविविधबन्धविशेषजनितरसविशेषदानपूर्वकं शयनमित्यर्थः । **तत्तदभिलाष**मिति । **स्वामिन्यादी**ति । मर्यादाराहित्यरमणे तिलकवस्त्रभूषणादीनां व्यत्यासो भवति । स पुनः कृत इत्यर्थः । अथवा मर्यादाराहित्यं तु विपरीतसुरते भवति । तदा स्वामिन्या कृतरूपमङ्गीकृतवानित्यर्थः ।

इति श्रीगोस्वामिसुतश्रीघनश्यामविरचिता मधुराष्टकटिप्पणी सम्पूर्णा ॥

---

१ रचितेति पाठः ।

१ लावण्यानामिति पाठः । २ ग्रीवेति पाठः । ३ तरलतरेति पाठः ।

ऽङ्कितागुलिविराजितविविधनूपुराणां मूर्ध्न्यलोलग्रीवं दधिकलशिकां वहन्तीनां व्रजाधिपसुतो वयस्यै रोधं सम्पाद्य समीपागतश्चकितनयनः प्रियाहृतचेताः [१]वदनेन्दुसुषमामोहिताशेषगोपवधूजनो वक्रोक्तिकपोलोरोजादिस्पर्शाविर्भावितमनोभवः दूरगगवाद्यवेक्षणापदेशापसारिताशेषवयस्यवृन्दः उपात्तोत्तमाङ्गस्थितदधिभाजनः करैकगृहीतविविधमणिमयकाञ्चीपट्टप्रसूनः विविधरुचिरप्रसूनप्रोद्भूतामलपरिमलोन्मत्तमधुपलतागेहानीतप्रियाजनो यद् यत् कृतवान् नीतवान् प्रेमाब्धि**तरणं** सम्पादितवान् **रमणं** च मर्यादारहितं, **वमितं** [२]हारादीनां, **शमितं** क्षुद्रघण्टिकादीनां, तत्सामयिकं ध्यायं ध्यायं अनुवर्णयन्ति **करण**मित्यादिना । **मधुराधिप**तेरित्यादि पूर्ववत् ॥ ५ ॥

गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ७ ॥

एवं कदाचित् तरणितनयाकूले बकुलाम्रकदम्बादिद्रुमाकुले धीरगन्धवाहे, केलिहिते रहसि, स्नानादिव्याजेन समागतया श्रीमत्प्रभुप्राणप्रियया मकरकुण्डलमण्डितगण्डमण्डलप्रभोद्योतिताखिलभुवनः कमलदललोचनः अधरार्पितवेणुः गुञ्जामणिमुक्ताहारादिराजितोरःस्थलः अवलोकितप्रियः निखिलमनोरथरूपागतः आश्लेषादिलीलां कृतवान्। यमुनायां सलिलकमलादीनां च क्रीडां कृतवान् । ततो निर्गमने सति निकुञ्जे पुष्पावलीरचितशयनकेलिजनितश्रमाम्भःसंक्रान्ताननकमलया प्रियदत्तकमलकृतलीलया प्रियया, [३]वनार्थं मार्गाः बहवः स्फुटिता इति प्रियेण

---

[१] रदने इति पाठः । [२] हासादीनामिति पाठः । [३] गमनार्थमिति पाठः ।

सह यावत्पर्यन्तं मार्गविभेदो भवति तावत्पर्यन्तं गेहार्थं प्रचलितया प्रियार्पितस्वोरःस्थहारया सङ्गतस्य मन्थरगतेः क्षणं क्षणं कृताश्लेषस्य घूर्णायमाननयनस्य सुषमावलोकनैकपरायणस्य कदाचिद् पश्चात् बाहुबन्धेन कदाचिदग्रतो गहने लतापिहितोदरे यथामार्गसौकर्यं भवति । एवं मार्गसन्धिस्थितयोः परस्परदृष्टे यामीत्याज्ञां गृहीत्वा गतयोः कृतान्योन्यगुञ्जामालेत्यादिहारविनिमययोः कृतो यो माधुर्यानुभवो जातः तमेव स्मारं स्मारमनुवर्णयन्ति **गुञ्जे**त्यादिना **शिष्टं मधुर**मित्यन्तेन । **मधुरापते**रित्यादि पूर्ववत् ॥ ६-७ ॥

गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

तदनन्तरं भगवान् गोपसमाजं सम्प्राप्तः, एतासां गेहागमनानन्तरं सायं प्रियागमनं प्रतीक्षन्त्यो गोष्ठादिषु स्थिताः । भगवानपि गोपसमाजस्थः तैर्गीतकीर्तिर्वेणुवादनपरायणो गोरजश्छुरितकुन्तलो व्रजस्थानां गवां च दिनतापं मोचयन् गोष्ठप्रवेशं करोति । ततो गोदोहने सर्वरसग्रहणार्थं उद्यतस्तदा दर्शनार्थं गतानां विचित्रवसनवतीनां विचित्रसूक्ष्मयष्टिग्रहणेन वर्णादिभेदेन गवाह्वानेन स्वसमीपागमनज्ञापकेन समागतानां सर्वागोचरकटाक्षस्पर्शादिसङ्केतादिकृतामोदो निखिलरसपूर्णो दृष्टः, तस्मिन् सृष्टौ योऽनुभवो जातस्तमेवानुवर्णयन्ति **गोपे**त्यादि **सृष्टि**रित्यन्तेन । अतःपरं वक्तुमशक्यत्वं तन्निमग्नत्वेन प्रतिपादयन्ति **दलित**मिति । नन्दगेहालवालोदितस्य श्रीमद्गोपीजनरागसेकसंवृद्धकल्पवृक्षस्य दलितफलितादिकं सर्वं मधुरिमासीमा इति ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीविट्ठलेश्वरविरचिता मधुराष्टकविवृतिः सम्पूर्णा ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।
श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।

मधुराष्टकम्

श्रीमद्बालकृष्णविरचितविवरणसमेतम् ।

प्रतिक्षणनवोल्लसत्स्मरशतातिलावण्यरुग्-
[1]व्रजेशफलमाधुरीरससुधाब्धिलीलोर्मिभिः ॥
सदा मधुरमूर्तयो विविधभावमुग्धेक्षणाः
स्फुरन्तु हृदि मे श्रिया ललित[2]वल्लवस्वामिनः ॥१॥

शरणागतकरुणाभरकरणानिशतत्परान् निजाचार्यान् ।
व्रजवल्लवजनवल्लभ**वल्लभ**नाम्नः प्रभून् नौमि ॥२॥

अथ 'श्रावणस्यामले पक्ष' इति श्लोके श्रीभगवद्दर्शनस्योक्तत्वात् तस्मिन् समये साक्षाद् भगवान् कोटिकन्दर्पाधिकलावण्यगुणलीलाविशिष्टोद्बुद्धरसात्मकस्वरूपेण प्रकटीभूय श्रीमदाचार्याणां देहप्राणेन्द्रियान्तःकरणधर्मादि सर्वं साक्षादलौकिकरसात्मकवचनामृतपोषणेन स्वविषयीकृत्य बहिःसाक्षात्स्वरूपानुभवं कारितवान्, पश्चात् संपूर्णरसदानार्थं तिरोभूय अन्तर्देहप्राणेन्द्रियादिरूपः सन्नन्तरेव च निखिललीलारसानुभवं कारितवान्, अत एव 'स्फूर्जद्रासादिलीलामृतजलधिभराक्रान्तसर्वे' इत्युक्तं **श्रीमत्प्रभुचरणैः । सर्वोत्तमे**पि 'तत्कथाक्षिप्तचित्तस्तद्विस्मृतान्यो व्रजप्रिय' इत्याद्युक्तम् । तदा पुनर्विप्रयोगदशानुभवे तद् विना स्थातुमशक्तौ गुणालम्बनेनैव कालनिर्वाह इति **श्रीमदाचार्यचरणा** अहर्निशं उद्दीपनालम्बनविभावादि रसान्तःपातिसकलसामग्रीसम्पन्नं तत्तत्सामयिकलीलागुणविशिष्टमुद्बुद्धरसात्मकं स्वरूपं

---

१ व्रजेशकलमाधुरीति पाठः । २ वल्लभेति पाठः ।

यथानुभूतं तत् तथा वर्णयन्ति **अधरं मधुर**मित्यादिभिः ।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥१॥

अहो रूपं तु किं वर्णनीयं मधुराधिपतेरखिलमेव मधुरं, यावन्तः तत्पदार्थास्ते मधुराः । अथवा रसाः वीरादयः तेषामपि शृङ्गाररसान्तःपातित्वेन मधुरत्वाद् रसत्वं, अन्यथा तत्त्वमेव नास्ति इति रसशास्त्रसिद्धान्तात् । तादृशानां अधिपतिः शृङ्गाररसः, तद्रूपस्य भगवतो यद्यपि अखिलमेव मधुरं, यथा राज्ञः परिधेयानि आभरणानि सुवर्णमयानि उपकरणानि अपि तथा, तथापि यस्य यादृग् रूपमाधुर्यं यस्यां यस्यां लीलायां समनुभूतं विप्रयोगे तत्तत्स्मरणे तत्तन्माधुर्यस्य स्वरूपतो विशेषेण वक्तुमशक्यत्वात् तत्तन्नामनिरूपणपूर्वकं पृथक्त्वेन तत्तन्मधुरमुच्यते । तत्र प्रथमं रसात्मकवचनामृतप्रवेशेन स्वरूपानुभवो जातः, तस्याधरसंबन्धित्वात् पूर्वं तदनुभव एव अभूत्, इति वर्णनेपि प्रथमं **तदधरं मधुर**मित्युक्तम् । पश्चात् तत्सुधाप्रवेशे सम्पूर्णतद्वदनमाधुर्यलावण्यस्यानुभवो जात इति **वदनं मधुर**मित्युक्तम् । यथा 'बर्हापीडे'तिश्लोकोक्तसुधाप्रवेशानन्तर'मक्षण्वतां फलमिद'मित्युक्तम् । तदनु वदनमाधुर्यानुभवे कोटिकन्दर्पलावण्यरससंव[1]लितापाङ्गरङ्गतरङ्गविलासानुभवस्य सम्पन्नत्वात् **नयनं मधुर**मित्युक्तम् । तदेवोक्त'मनुरक्तकटाक्षमोक्ष'मिति, तत्रैव 'मदविघूर्णितलोचन' इत्यादि च । एतेन विचित्रभावललितत्वं[2] लोचनयोरुक्तम् । ततो विगाढरसे हासरसस्याप्यनुभवात् **हसितं मधुर**मित्युक्तम् । नयनमाधुर्यानन्तरं हसितस्य निरूपणात् नयनयोरपि स्मेरत्वं सूच्यते । ततो अधरवदनमाधुर्यानुभवतो भगवतो हार्दमपि रसपरवशत्वेन स्वाधीनत्वात् अतिमधुरं ज्ञातमिति तथोक्तं **हृदयं मधुर**मिति । एतेन यथा स्वस्य भगवति परमा प्रीतिः, तथा भगवतोपि स्वस्मिन् अनुभूतेति सूचितम् । किञ्च, हृदयपदेन वक्षोपि व्यज्यते । तेन भगवतो हृदयमपि मधुरतरोल्लसदभिनवकैशोरवयःक्रमेण किञ्चित् उच्छूनं सुललितविलासं प्रकटीकरोति, इति तादृशमालि-

---

१ विविधापाङ्गतरङ्ग इति पाठः । २ वलितत्वमिति पाठः ।

ङ्गनादौ स्पर्शादौ वीक्षणेपि प्रियाणां महारसानुभावकत्वेन[1] परमानन्ददायकं
इति तत्स्मृत्वा तन्माधुर्यमुक्तं **हृदयं मधुर**मिति । ततो रसान्ते अलसवलित-
भावादिसहितं गमनं, रसादौ तु विलासलीलापूर्वकं तद्भवति इति तदुभयानु-
भवात् **गमनं मधुर**मित्युक्तम् । एवं पृथक्त्वेन तत्तन्माधुर्यनिरूपणे
चित्तं महारसाब्धौ लीनमासीत् । क्षणानन्तरं उद्बोधेन पुनः पूर्वरसावेशात्
तादृशस्याखिलमेव मधुरमिति अनिर्वचनीयत्वेन अन्ते सर्वत्र **मधुराधि-
पतेरखिलं मधुर**मित्युक्तम् । अत्र स्मरामि इति क्रियाध्याहारः सर्वत्र
कर्तव्यः ॥ १ ॥

वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥

ततः पुनरेकान्ते परमहृद्यानि नेपथ्यादिरचनरूपाणि[2] बन्धादिविशेष-
ज्ञापकानि परिहासकारकाणि यानि वचनानि 'रहसि संविदो या हृदि-
स्पृशः' इत्याद्युक्तप्रकारकाणि भगवतोक्तानि तेषां माधुर्यस्यानुभूतत्वात्
वचनं मधुरमुक्तम् । एतस्यैव माधुर्याब्धौ मनसो मग्नत्वात् अन्येषां
वक्तुमशक्यत्वेन एकवचनमुक्तम् । वचने पश्चात् तद्वचनोक्तबन्धादिलीलायां
तन्माधुर्यमनुभूतं भवति इति **चरितं मधुर**मित्युक्तम् । ततस्तादृश-
तच्चरित्राचरणे उद्बुद्धरसात्मकस्य भगवत आच्छादकशक्तिरूपत्वेन वसनस्य
रसोद्दीपकत्वाद् अवलोकने पुनः तन्माधुर्यमनुभूतं भवतीति **वसनं मधुर**-
मित्युक्तम् । अत एव 'बर्हापीडे'त्यस्य विवरणे यत्र वसनाकृतिरपि न
सम्यगवलोकिता तत्र तदाच्छन्नं रसं कथमुद्घाटयेयुरित्युक्तम् । रसो हि
गुप्त एव रसत्वमापद्येत' इत्युक्त्या तदाच्छादकमावश्यकम् । आच्छादकत्वेपि
आकृतिदर्शनं रसोद्बोधकत्वात् सुतरां मधुरं भवतीति तथोक्तम् । ततो
रसानुभवे अलसवलितादयो हावभावादयः सात्त्विकादिभावाश्च परममधुरा
भवन्तीति तत् स्मृत्वा **वलितं मधुर**मित्युक्तम् । समुदितभावज्ञापनाय
वलितपदम् । एते सर्वे रात्रिसम्बन्धिलीलाप्रकारा निरूपिताः । अतःपरं

---

[1] भवकत्वेनेति पाठश्च । [2] –रचनरूपाणीति पाठः ।

दिवासम्बन्धिलीलानां मधुरत्वं निरूपयन्ति **चलित**मित्यादिभिः । अय भावः । प्रातर्यदा गोचारणार्थमुद्यतस्तदा वनलीलालोकनाय[1] अन्तरङ्गवयस्यैः सह नर्मपरिहासादिकं कुर्वन् अवलोकनार्थं बहिःस्थितानां प्रियाणां अतिहृदयङ्गमं लावण्यं प्रदर्शयंश्चलति, तत्सामयिकं स्मृत्वोक्तं **चलितं मधुर**मिति । अथवा वनादागमनसमयेपि तथैव चलतीति तथोक्तम् । तदुक्तम् 'घनरजस्वलं दर्शयन्मुहु'रिति । अग्रे पुनर्लोके विपिनभ्रमणं मधुरं न भवतीति श्रमहेतुत्वात् भगवतस्तदभावात् तदपि मधुरं निरूप्यते । तथा च वनसम्बन्धिभूम्यादितृणपर्यन्तसमस्तपदार्थानां रसात्मकचरणारविन्दमकरन्दसम्बन्धेन लीलोपयोगिरसात्मकतां सम्पादयितुं वने भ्रमणं करोतीति चरणारविन्दस्य रसात्मकत्वात् श्रीनिकेतनत्वाच्च भ्रमणजनितरजःसम्बन्धित्वे[2] परमशोभातिशयेन मधुरत्वमेव भवति, न तु कदाचिदपि तदन्यथात्वमिति **भ्रमण**मपि **मधुर**मुक्तम् । एतदेवोक्तं 'तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्' इत्यस्य विवरणे । अथवा तत्सङ्केतादिषु स्थितानां भक्तानां मिलनार्थं तत्र तत्र भ्रमणं करोति भगवान्, तत्तु तत्तत्प्रियामिलनोत्कलिकासमाकुलविविधरसभावात्मकमिति परमं मधुरमनुभूतं भवति, सङ्केतस्थप्रेयसीनां चरणारविन्दसंवाहनादिषु लीलायां चेति तत्स्मृत्वा **भ्रमितं मधुर**मुक्तम् । एवं श्रमसूचकमपि सर्वं रसात्मकस्य मधुरमिति निरूपयन्ति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मिति । रसस्तु यत्र यत्र गच्छति तत्र तत्र रसत्वं सम्पाद्य मधुरत्वं सम्पादयतीति स्वस्य मधुरत्वे किं वाच्यमिति भावः । किञ्च, यथा रसस्य प्रवहणरूपत्वात् भ्रमणेपि मधुरत्वं न गच्छति, तथात्रापीति अपि सूच्यते ॥२॥

वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥

अग्रे **वेणुर्मधुर** इत्युच्यते । तस्यायं भावः । सङ्केतस्थलज्ञापनार्थं वेणुनादे कृते 'कलपदैस्तनुभृत्सु सख्य' इत्युक्तत्वात् तत्र स्वनामादिश्रवणात् नादद्वारा तन्माधुर्यमपि अनुभूतं भवति । तथापि सङ्केते समागतानां

---

[1] लीलोत्कण्ठयान्तरङ्गेति पाठः । [2] सम्बन्धेपीति पाठः ।

प्रियसङ्गमे सम्पन्ने तदानन्दजनितपरमसौभाग्यशोभाभरेण विलसद्वचनानां तासां प्रियाणां प्रियसमीपवर्तिवेणुविलोकने प्रियप्रापकत्वात् तस्मिन् परमस्नेहभरेण स्वरूपतस्तन्मर्यादालोपकं माधुर्यमनुभूतं भवतीति इति **वेणुर्मधुर** इत्युक्तम् । अधरामृतसम्बन्धेन तस्य तथात्वं स्पष्टमेव । अग्रे **रेणुर्मधुर** इत्युच्यते तस्यायं भावः । गोचारणे रेणुसम्बन्धस्य आवश्यकत्वाद् अलकादिषु तस्य छुरितत्वेन यथा अलकानां कामरूपत्वेन माधुर्यं, तथा रजसो रजोगुणत्वाद् अनुरागरूपत्वेन परममाधुर्यं दृश्यते इति **रेणुर्मधुर** इत्युक्तम् । एतत्सर्वं 'तं गोरजश्छुरितकुन्तले'ति श्लोके निरूपितम् । वदनकमलसम्बन्धे रजसः परागरूपत्वान्माधुर्यं युक्तमेवेत्यपि सूचितम् । अथवा सन्ध्यायां आगमनसमये गोरेणुसङ्घाते घनीभूते इतरावलोकनाभावात् प्रियसङ्गमे च सम्पन्ने तन्मुखारविन्दकटाक्षादिरसानुभवात् स रेणुरपि परममधुरो भवति इति तथोक्तम् । एतेन अन्धकारादीनामपि लीलोपयोगित्वेन मधुरत्वमेव इति सूचितम् । एतत् स्वरूपं 'पीत्वा मुकुन्दमुखसारघे'त्यस्मिन् श्लोके 'सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्ष'मित्यस्य विवरणे निरूपितम् । अथवा रेणुरत्र चरणारविन्दसम्बन्धी ज्ञेयः। तेन रसात्मकत्वात् लीलोपयोगिदेहसम्पादनैकस्वभावत्वाच्च लीलासम्बन्धिनीनां प्रियाणां तद्विरचितदेहवत्त्वेन तन्माधुर्यमनुभूतं भवतीति तथोक्तम् । अग्रे पुनर्वनादागमनसमये त्रिभङ्गललितस्वरूपेण वेणुं संवादयति तदा वेणुरन्ध्रेषु स्वाङ्गुलिचलने पाणेरपूर्वतरा शोभा प्रकटीभवतीति तत्स्मृत्वा **पाणिर्मधुर** इत्युक्तम् । तथैव पादयो'र्वामजान्वन्ताश्रितातिवक्रदक्षिणजानुक'मित्युक्तप्रकारेण स्थापने अनिर्वचनीयसौन्दर्यं प्रकटीभवतीति तत् स्मृत्वा **पादौ मधुरौ** इत्युक्तम् । तदेवोक्तं 'सौन्दर्यं किमपितरां प्रकटयति प्रेमवल्लभ्य'मिति **प्रभुचरणैः** [1]स्वरूपवर्णने । अथवा दिवासम्बन्धिचरित्रे वनलीला सर्वा भक्तानां गृह एव अनुभूता भवति, तत्र पुलिन्दीभाग्यानन्दनकरणे भगवत्पदकमलसम्बन्धिकुङ्कुमस्मरणे जाते दयितास्तनरचिततद्रचनाचातुर्यकलातिकमनीयपाणिस्मरणात् तच्छोभामाधुर्यानुभवात् पाणिपादयोर्मधुरत्वं निरूपितमव्यवधानेन । एतच्च 'पूर्णाः पुलिन्द्य' इत्यत्र स्फुटीकृतम् । अथवा सन्ध्यायां तत्तत्प्रियावलोकनजनितविचित्रभावोद्भूतरसेन दोहनविधौ नूपुरमुद्रिकादिभूषणभूषितपाणिपादसौन्दर्यमाधुर्यं प्रियाणामनुभूतं भवतीति तथोक्तम् । एतदेवोक्तं 'वेणुस्वनैः कलपदैर्नियोगपाशकृतलक्षणयो' रित्यनेन । अथवा लीलासमये तत्तद्बन्धादिरचनायां कुचकुम्भेषु मकरादिचित्ररचनायां चारुहृदयादिषु स्थापने च तापहारकत्वानन्ददायकत्वशोभातिशयत्वमधुरत्वादिगुणाः सर्वेऽनुभूता भवन्तीति तत् स्मृत्वोक्तं **पाणिर्मधुरः पादौ मधुरा**विति । अत एव 'शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रह'मिति 'कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छय'मिति ताभिरुक्तं फलप्रकरणे । एवमनन्तप्रकारा भावनीयाः । अग्रे पुनर्नृत्यं मधुरमुच्यते तस्यायं भावः । अत्र सर्वं व्रजभूषणसीमन्तिनीसम्बन्धिलीलोपयोगि निरूप्यते । तेन सायं वनादागच्छन् वेणुं कूजयन् नृत्यन्मयूरानुकरणं कुर्वन् दिवा विरहतापं दयितानामपाकरोति । तन्नृत्यं त्वभिनयात्मकमित्यभिनयकरणे मधुरस्मितपूर्वकभ्रुकुटीभङ्गकटाक्षादिविलासेषूल्लसितेष्वतिरमणीयलावण्यरसभावामृतपोषपुष्टाः प्रिया भवन्तीति तत् स्मृत्वा **नृत्यं मधुर**मित्युक्तम् । तस्मिन्नेव समये पुनः समानशीलत्वं विना रसः पुष्टो न भवतीति सख्याङ्गीकारे सख्यरसस्याप्यनुभवात् तस्यापि मधुरत्वं निरूपितं **सख्यं मधुर**मिति । अत एव 'सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्ष'मित्यत्र 'पुष्टे रसे हास' इत्युक्तम् । सख्ये सति हाससम्भवादत्र तन्निरूपणात् सख्येनैव रसपोष इति सख्यस्य मधुरत्वं निरूपितमिति भावः । एवं दिवासम्बन्धि सर्वं मधुरमेवेति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मित्यन्ते निरूपितम् ॥३॥

एवं सख्यसहितं नृत्यस्वरूपं निरूप्य गीतं निरूप्यते ।

गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४॥

मधुरम् इदं **गीतं** नृत्यानन्तरं क्वचिद्देशविशेषे स्थित्वा करोतीति 'रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमाना'वित्यत्र निरूपितम् । तस्य गीतस्य भावात्मकत्वात् तन्माधुर्यस्य व्रजसीमन्तिनीहृदयैकवेद्यत्वेन **गीतं मधुर-**

---

[1] स्वरूपं वर्ण्यते इति पाठः ।

मित्युक्तम् । अथवा अत्र क्रमो न विवक्षितः । **श्रीमदाचार्याणां** हृदये
विप्रयोगरसाविर्भावेन सर्वा एव लीला भगवतो विलासाः प्रकटा जाता
इति यदैव यत्स्फूर्तिः तदेव तन्निरूपयन्ति इति तत्सामयिकं गीतं सर्वमपि
मधुरं निरूप्यते । एवं सति पूर्वं पाणिपादनृत्यसख्यानि निरूपितानि, तेन
रासलीलास्फूर्तौ तत्र नृत्यस्य मुख्यत्वादभिनयार्थं पाणिपादयोश्चालनक्रियायां
तत्तत्संस्थानजनितशोभातिशयलावण्यादीनामनिर्वचनीयमाधुर्यानुभवात् तन्मा-
धुर्यं निरूप्य पश्चात् नृत्यस्य माधुर्यं निरूपितम् । ततो रसपोषार्थं सख्यं
निरूप्य गीतं निरूपितम् । तेन इदं गीतं 'काचित् समं मुकुन्देने'त्यत्र
यदुक्तं तदवगम्यते । तत्र भगवतापि गानं कृतमिति उक्त'मुत्पन्नस्य नाद-
स्यामृतमयत्वायें त्याभासेन । स च मधुर एव कर्तव्य इत्युक्तत्वात् तत्स्मृ-
त्वा **गीतं मधुर**मित्युक्तम् । किञ्च, रासलीलानन्तरं प्रातर्भगवति अन्तः-
प्रविष्टे 'वामबाहुकृतवामकपोल' इत्यादियुग्मश्लोकोक्तनिरूपितलीलासु सर्वत्र
गीतस्यानुस्यूतत्वान्माधुर्यानुभवात् तत्सामयिकमपि उक्तमिति ज्ञेयम् । किञ्च,
तत्र पुनः सायं व्रजागमनसमये 'मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसु-
हृदा'मित्युक्तप्रकारकागमनस्योक्तत्वात् तत्र मदपदेन पूर्णावबोध उक्तो
विवरणे । तस्यार्थस्तु विविधनायिकाविलासस्मृतिधाराजनितानन्दसन्दोहानु-
भव इति **टिप्पण्यां** विवृतः । 'स चेतरविस्मारक' इति मदपदमुक्तं मूले ।
एवं सति सायं संयोगसमये यथा तादृशमदजनिता भावाः स्वरूपे प्रकटा
भवन्ति तथा वने प्रियाविरहेण पूर्वानुभूतप्रियारसामृतस्मृतिधारया नामस्व-
रूपात्मकं गीतमपि विचित्रभावोद्भूतं भवति इति तत्स्मृत्वा **गीतं मधुर**-
मित्युक्तम् । तेनेदं गीतं 'मणिधरः क्वचिदागणयन् गा' इत्यत्र यदुक्तं
तदवगन्तव्यम् । तत्र क्वचिदेव गा गणयतीति विवृतत्वात् तथात्वं स्पष्ट-
मेवेति भावः । एवमनन्ता भावा विभावनीयाः । ततः प्रदोषसमयलीलास्फूता
तत्संबन्धिपदार्थानां माधुर्यं निरूपयन्ति **पीतं मधुर**मिति । अत्र सर्वस्यापि
भावरूपत्वेन निरूपणात् क्तप्रत्ययान्तशब्दा अपि भावार्थका एव इह प्रयुक्ता
इति पीतपदेन पानं ज्ञेयम् । अयं भावः । पूर्वं वनलीलायां नादनिष्ठामृत-
पानेन गवां पशुत्वधर्मनिवृत्तिपूर्वकं रसात्मकता निरूपिता 'गावश्च कृष्णमुख'

इति पद्येन । पश्चात् सायं दोहनसामयिकस्वरूपसौन्दर्यमहिम्नैव सा निरूपिता 'गागोपकै'रित्यनेन । एवं सति रसात्मिकानां तासां रसोपि भावात्मकत्वेन मधुर एव भवितुमर्हति इति तद्रसपाने तस्य भावात्मकत्वेन भावजनकत्वात् भगवतस्तत्प्रि[1]यासम्बन्धिसाक्षाद्रसपानस्मरणेन विचित्रभावविलासललिततरं तत् पानं भवतीति तत्स्मृत्वा **पीतं मधुर**मित्युक्तम् । अन्यथा 'राधाधरसुधापातुः किमन्यन्मधुरायित'मित्युक्त्या तदन्यत्र रुचिरेव न संभवतीति कथं तत् पिबेदिति भावः ॥ एवं एतत्तद्भोग्यपदार्थानां ह्यलौकिकरसात्मकत्वेन भावरूपत्वात् तदग्रे भोजनलीलाकरणात् तत्स्मृत्वा **भुक्तं मधुर**मित्युक्तम् । अत एव **श्रीगोकुलाष्टके** 'श्रीमद्गोकुलभोग्यश्री-'रित्यत्र तत्तत्पदार्थानां स्वरूपात्मकत्वेन भावरूपत्वं निरूपितम् ॥ अग्रे भोजनानन्तरं शयनं निरूपयन्ति **सुप्तं मधुर**मिति । भगवतो हि शयनमपि भावात्मकत्वेन मधुरमेव । तदुक्तं 'निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः' 'वृक्षमूलाश्रयः शेत' इत्यादिभिः । तादृशस्य मधुरत्वं स्फुटमेवेति भावः । किञ्च लीलायां यावन्तः प्रकाराः शयनस्य प्रियावक्षःस्थलादिषु पदकमलधारणरूपाः बन्धादिप्रकाररूपा वा भवन्ति ते सर्वेपि अनुभूता इति तत् स्मृत्वा तथोक्तं समुदायसूचकत्वेन ॥ एवं प्रदोषसामयिकलीलां निरूप्य रात्रिचरित्रं निरूपयन्ति **रूपं मधुर**मिति । रात्रौ भगवान् विविधनायिकाभोगोपयोगिकोटिकन्दर्पाधिकलावण्यमुद्बुद्धरसात्मकं स्वरूपं प्रकटीकृत्य तत्तत्सङ्केतेषु गच्छति तदा तदागमनावलोकनपराः प्रियास्तादृशपरमसौन्दर्यमाधुर्यरससिन्धुलहरीललिततरोल्लसदनेकभावलावण्यमनोहरं रूपं दृष्ट्वा तदवलोकनरसामृतसिन्धुमग्ना भवन्तीति तत् स्मृत्वा **रूपं मधुर**मित्युक्तम् । अथवा, अग्रे पुनः प्रियायाः स्वकरकमलरचिततत्तद्भावात्मकसकलकला[2]कल्पविरचनायां संपूर्णस्वरूपमाधुर्यमनुभूतं भवतीति तत् स्मृत्वा तथोक्तम् । अथवा, परमसौरभसुरभितैलाभ्यञ्जनविधानपूर्वकमज्जनादिसामयिकं स्मृत्वा तथोक्तम् । अथवा, निर्भररससामयिकमेव माधुर्यमनुभूयोक्तम् । एवमनेकधा भावनीयम् ॥ अग्रे तिलकमाधुर्यमुच्यते **तिलकं मधुर**मिति ।

---

१ त्रितयसम्बन्धीत्यन्यः पाठः । २ सकलाकल्पेति द्वितीयः पाठः ।

‘दर्शनीयतिलक’ इति वाक्यात् सकलशृङ्गारेषु तिलकस्य [1]मुख्यत्वात् तदेवोक्तम् । किञ्च, नायिकानां नखादारभ्य शृङ्गाररचना या क्रियते सा नायकस्य तिलकमारभ्येति रसशास्त्रोक्तत्वात्, प्रथमं तिलकरचनायां मलयजतिलकं विधाय तन्मध्ये कस्तूरीतिलकं कृत्वा तन्मध्ये मुक्ताफलबिन्दुः क्रियत इति । तथा चोक्तमपि **प्रभुचरणैः** ‘प्रथमं मलयजतिलकं मृगनाभिजनुस्तदन्तरालेपि । तन्मध्येपि च कुङ्कममुक्ते’ति । तथाविधरचनायां तादृशस्य परममोहनरूपत्वात् तत्सौन्दर्यमाधुर्यावलोकनरसपूरमग्ना भवन्ति प्रियाः, तत्समयं स्मृत्वा तथोक्तम् ॥ एवं तिलकमाधुर्यं निरूप्य अन्येषामपि भूषणादीनां तन्निरूपयन्ति **मधुराधिपते**रिति । यद्यप्यखिलान्यपि भूषणादीनि मधुराण्येव तथापि तिलकस्य परमसौभाग्यस्थानस्थितत्वात् परमसौभाग्यरूपत्वेन महावशीकरणसामर्थ्यवत्त्वेन तिलकस्यैव मधुरत्वं निरूपितम् । किञ्च, तिलकशोभावलोकने तन्माधुर्यामृतजलधिमग्नं तन्मनो जातमिति तावदेवोक्त्वा स्थितमिति भावः । किञ्चात्र ‘मधुराधिपतेरखिलं मधुर’मित्यत्र अखिलपदेन अन्योपि भावः सूच्यते । तथाहि । प्रथममन्यत्र प्रियया सह रमणं कृत्वा पुनरितरस्याः समीपमागते प्रिये तच्चरणकुङ्कुमाङ्कितितिलकावलोकनाद् मानसम्भावनायामपि तज्जनितापूर्वशोभया सर्वविस्मरणे तद्वशीभूतो रमत **इत्यखिलं मधुर**मुक्तम्, खण्डिताया एतदसम्भवात् ॥

अथवा, यथा पूर्वोक्ततादृग्रूपरसात्मकसाक्षाद् भगवत्स्वरूपान्तःप्रवेशे **श्रीमदाचार्याणां** हृदये तत्तल्लीलाप्राकट्येन तत्तल्लीलानुभवोऽभूत्, तथा जन्मोत्सवमारभ्य बाललीलाया अप्यनुभवो जात इति तत्सामयिकमाधुर्यस्मरणे, अत्र तदपि निरूपितमिति ज्ञेयम् । एवं सति प्राकट्यसमयमारभ्य तत्तल्लीलास्मरणे प्रथमं प्राकट्यानन्तरमेव स्वप्रियावलोकने अतिमृदुलनवकिसलयारुणरुचिरतराधरसौन्दर्यदर्शने चिरेप्सितरसस्य भावि[2]पानानन्दोत्कण्ठाजनितभावनया[3] तन्माधुर्यानुभवाद् **अधरं मधुर**मित्युक्तम् । पश्चात् तादृशवदनावलोकने चिबुककपोलादिशोभाया अपि रसैकपानपर[4]रूपत्वेन

---

[1] मुख्यत्वमिति पाठः। [2] पालनेति पाठः। [3] भावनायामिति पाठः। [4] स्थलेति पाठः।

तदभिलाषजनितभावनया तदनुभवात् सम्पूर्णवदनस्याप्यनुभवाद् **वदनं मधुर**मित्युक्तम्। किञ्च, तादृशे समये बालकवदनं प्रोञ्छनाद्यलङ्कारालङ्कृतं भवतीति तथोक्तम् । अथवा प्रतिमासोत्सवादिषु विशेषेणालङ्कृतं भवतीति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । अग्रे नयनं निरूपयति **नयनं मधुर**मिति । अयं भावः । नवकमलदलसदृशशोभातिशयरुचिरस्य श्रीमन्मातृचरणविरचितनवाञ्जनरेखातिरमणीयप्रकटमुग्धभावस्यापि नयनस्य ‘तोकता वपुषि तव राजते दृशि तु मदमानिनीमानहरणं’ इत्युक्त्या परमप्रेमरसनिभृतमाधुर्यं मधुरत्वेनानुभवात् तथोक्तमिति भावः । अग्रे हसितं निरूपयन्ति **हसित**मिति । [1]बाले हि प्रथममेव वचनाद्यसम्भवात् स्मितमेव भवति । तदप्यधरपल्लव एवेति, केप्येते मां मत्कृतिमपि न जानन्तीति स्वसङ्केतं स्वप्रियाणां ज्ञापयन्निव भगवांस्तादृशं स्मितं करोति तत् तासामतिहृदयङ्गमं भवतीति तन्माधुर्यं स्मृत्वा **हसितं मधुर**मित्युक्तम् । किञ्च, बाल्ये तादृशमन्दहसितनिरूपणे अतिकोमलदुग्धदशनकिरणावलीजनितशोभातिशयमाधुर्यादिसङ्ग्रहोपि निरूपित इति ज्ञेयम् । अग्रे तादृशं मधुरस्मितामृतलहरीविमलचन्द्रिकाचारुतरहृदयं परममधुरमनुभूतं भवतीति तत्स्मृत्वा **हृदयं मधुर**मित्युक्तम् । किञ्च, बाले तादृशं हृदयं व्याघ्रनखादिभूषणभूषितत्वेन परमरमणीयं भवतीति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । अथवा तादृशबालकस्य [2]क्रोडादाने हृदयादौ लालनादिकरणे च हृदये माधुर्यं समनुभूतं भवति इति तत्स्मृत्वा तथोक्तम्। अग्रे गमनं निरूपयन्ति **गमन**मिति । हृदयनिरूपणानन्तरं गमननिरूपणात् तादृशबालकस्य प्रथमं हृदयेनैव तत्तद् भवतीति तथोक्तम्। किञ्च, अतिप्रेम्णा क्रोडीकृत्य हृदयोपरि समादाय [3]एकया लालने क्रियमाणे पुनरन्यत्र बाहू प्रसार्य हृदयेनैव गमनं करोति, पुनस्तत्सकाशाद् [4]अन्यस्या एव समीपे समायाति । एवं मुहुर्मुहुर्गमनेन सर्वासां प्रेयसीनां आश्लेषाद्यभिलाषपूरणात् स्वस्य दक्षिणनायकत्वचातुर्यस्य बाल्ये एव ज्ञापनात् तादृशं तदतिमधुरमनुभूतं भवतीति तत्स्मृत्वा **गमनं मधुर**मुक्तम् । एवं मधुराधि-

---

[1] बाल्ये हीति पाठः । [2] क्रीडाया इति पाठः । [3] एकधेति पाठः । [4] अस्या इति पाठः ।

पतेः फलरूपस्याङ्कुरमारभ्यैव सर्वं मधुरमिति तत्स्मृत्वा **अखिलं मधुर**मित्युक्तम्। अत एव उपसंहारे **दलितं मधुरं फलितं मधुर**मित्युक्तम् । ततो वचनं निरूपयन्ति **वचनं मधुर**मिति । तादृशस्य बालकस्य वचनं तु अव्यक्तमधुरं भवति । तद्वचनायां अल्पदशनानां अधरपल्लवस्य च शोभाकिर्मीरितत्वेन परमरुचिरा भवतीति तादृशी सा प्रेयसीनां अतिहृदयङ्गमेति तत् स्मृत्वा **वचनं मधुर**मित्युक्तम्। किञ्च, मुग्धभावजनिताव्यक्तभाषणेपि [1]प्रचुरप्रेमभाववतीनां यथा नयनयोर्मदमानिनीमानहरणत्वमनुभूतं तथा तादृग्वचनानामपि तथैवानुभव इति तत् स्मृत्वा तथोक्तम् । एवं वचनमाधुर्यमुक्त्वा तदाचरितमाधुर्यं निरूपयन्ति **चरितं मधुर**मिति । मुग्धदशायामपि नयनकरकमलादिभिर्यत्क्रियते तत् चरितशब्देनोच्यते । तथा च तत्तदङ्गस्पर्शनखदानादिरूपं तत्प्रेयसीनां लालनादौ अतिचतुरनायकचरितमिवानुभूतं भवतीति तत्स्मृत्वा **चरितं मधुर**मुक्तम् । अग्रे वसनं मधुरं निरूपयन्ति **वसन**मिति । तस्यायं भावः । यद्यपि वसनस्य आच्छादकशक्तिरूपत्वमस्ति तथाप्येतादृशे वयसि वसनस्य निरावरणरसानुभावकत्वात् तन्माधुर्यमनुभूतं भवति इति तत्स्मृत्वा **वसनं मधुर**मित्युक्तम् । किञ्च, ईदृग्रूपस्य बालस्य वसनपरिधानासम्भवाद् वसनं मधुरमित्युक्तेरयमाशयः । यदा व्रजतरुण्यः क्रोडीकृत्य वक्षःस्थलोपरि संस्थाप्य लालयन्ति तदा अन्यं न ज्ञापयाम इसि स्वाञ्चलेन सङ्गोप्याश्लेषादिना लालयन्ति, तदा तासां प्रियस्यापि तत्परममधुरत्वेन अनुभूतं भवतीति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । अग्रे **वलितं मधुर**मुच्यते । तस्यायं भावः । पूर्वमेकया श्रीगोकुलतरुण्या क्रोडीकृत्य पुनर्वक्षःस्थलोपरि [2]संस्थाप्य लालितः क्षणानन्तरं अन्यस्याः [3]समीपागमने पूर्वस्याः कुचकुङ्कुमादिषु करकमलनखादिषु स्पर्शं विधाय तदन्तिके गच्छतीति तादृशवलनमाधुर्यं तदनुभवैकमनोहरमिति तत् स्मृत्वा **वलितं मधुर**मित्युक्तम् । अतःपरं रिङ्गणलीलास्फूर्तौ[4] तां निरूपयन्ति **चलितं मधुर**मिति । एतन्मधुरत्वं तु ‘गोकुले

---

[1] प्रचुरतरप्रेमवतीनामिति पाठः । [2] प्रतिष्ठाप्येति पाठः ।
[3] समीपे इति पाठः । [4] स्फुरितेति पाठः ।

रामकेशवौ रिङ्गमाणौ विजह्रतु’रित्यत्र निरूपितम् । तत्र केशवपदार्थनिरूपणेन केशकृतसौन्दर्यातिशयो निरूपितः । किङ्किणीवलयनूपुरादिशोभा चाग्रे निरूपिता । एवं सति तादृशं चलनमतिमुग्धभावरूपमतिमोहकत्वाद् मधुरं भवतीति तथोक्तम् । किञ्च, चलितवलितयोरव्यवधानेन निरूपणात् तादृशसञ्चलने पुनः परावृत्त्यावलोकयतीति [1]चलितपदेनोच्यते । तेन सिंहावलोकनन्यायेन तच्चलनं करोतीति तादृशमदमन्थरावलोकनगौरवेण मदकलमातङ्गगतिरमणीयतरुणीमनोमोहनोत्तरलितमानिनीमानहरणत्वं चलने द्योतितमिति तत्स्मृत्वा **चलनं मधुर**मित्युक्तम्। अग्रे **भ्रमितं मधुर**मिति निरूपययन्ति । तस्यायं भावः । ‘यर्ह्यङ्गनादर्शनीये’त्युक्तप्रकारकव्रजाङ्गणरिङ्गणलीलायां घोषप्रघोषरुचिरावित्युक्त्या मुग्धभावप्रदर्शनार्थमेव तादृक् भ्रमणं करोति, तदा तत्प्रेयसीना पूर्वं लालनादौ स्वेप्सितरसानुभवकरणादधुना तु एतादृशमुग्धभावप्रदर्शनाच्च तद् भ्रमणं मधुरमनुभूतं भवतीति तत्स्मृत्वा **भ्रमितं मधुर**मित्युक्तम् । किञ्च, अग्रे वानरैः सह भ्रमणकरणे रहसि प्रियासङ्गे सति तद् भ्रमणस्य रसानुभावकत्वादपि **मधुरत्व**मुक्तम् । अत्र ‘कुमारो द्विवार्षिक’ इत्युक्त्या मुग्धभावप्रदर्शनोक्त्या चैषा बाल्यभावसहिता कुमारलीलोक्ता । केवलां त्वग्रे निरूपयिष्यन्ति इति अग्रे **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मित्युक्तम् । बालभावेनापि सहिता कुमारलीला प्रेयसीनां [2]स्वसमीहितरसदानात् मधुरा तदा केवलाया मधुरत्वे किं वाच्यमिति भावः। अग्रे **वेणुर्मधुर** इति निरूपयन्ति। तस्यायं भावः। आक्रीडनपदार्थानां मध्ये **वेणु**र्मुख्य इति स एवोक्तः । स पुनर्बाल्येपि आक्रीडनक्रीडायां कदाचिदधरे स्थाप्यते, कदाचिद् वादयितुं फूत्करोति, कदाचित् बालभावकृतफूत्कारस्य वादनाशक्तौ स्वयमेव गुञ्जति, कदाचिदेतादृशमुग्धभावेपि अतिमनोहरस्वभावस्वरादिसहितं वेणुं वादयति भगवान् , इत्येवं बाल्यमारभ्यैव प्रियाधरसम्बन्धस्य जातत्वात् तज्जनितविविधप्रकारसौभाग्यानुभवाद् **वेणुर्मधुर** इत्युक्तम् । अग्रे रेणुं निरूपयन्ति **रेणुर्मधुर** इति । ‘पङ्काङ्गरागरुचिरा’विति श्लोके पङ्कस्याङ्गरागरूपत्वनिरूपणेन रिङ्गण-

---

[1] वलितेति पाठः । [2] स्वसमाहितेति पाठः ।

लीलायां रेणोः प्रत्यङ्गसङ्गे अङ्गरागरचितपरममनोहरशोभाजनकत्वात् तन्मिषेण प्रोञ्छनकरणादौ तन्माधुर्यमनुभूतं भवतीति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । किञ्च, रेणुशब्दोत्र स्त्रीलिङ्गवाची भूरूपोप्यस्ति, तेन रिङ्गणलीलायां सकलाङ्गसङ्गो भुवः स्त्रिया इव कामलीलारसभोगो भवतीति तादृग्रसाविष्टानां तद्वेद्यमिति तत् स्मृत्वा **रेणुर्मधुर** इत्युक्तम् । अत एव रेणुनिरूपणानन्तरं पाणिपादयोरव्यवधानेन निरूपणम् । रिङ्गणलीलायां भूमौ [1]पतिते गाढाश्लेषादिकृतिरिव पाणिस्थितिर्भवति, बन्धादिविशेषप्रकार इव पादस्थितिर्भवति इति तत्प्रकारकानुभवस्तु तासामेव इति तथोक्तम् । अथवा, लालनादौ पाणिपादयोः [2]स्वकुचकुम्भादिषु स्थापने तान्माधुर्यमनुभूतं भवतीति तथोक्तम् । अथवा, पाणिपादादिषु तत्तत्कमलादिचिह्नानां दर्शनात् तत्तच्चिह्नोक्तधर्मास्तु [3]बालभावमारभ्यैव प्रियाभिरनुभूयन्त इति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । एवमनेकप्रकारा भावनीयाः । अतःपरं **नृत्यं मधुर**मुच्यते । [4]लालनकरणे यथैव प्रिया नृत्यं कारयति तथैव भगवान् नृत्यति इति तदवलोकने तासां यथा इदानीं अस्मत्सन्तोषार्थं अस्मद्वशो भूत्वा नृत्यं करोति, तथाग्रेप्यस्मद्वशोस्मत्सन्तोषं[5] करिष्यति इत्याशया तत् नृत्यं परमरसाधयकं भवतीति **नृत्यं मधुर**मित्युक्तम् । किञ्च, भ्रूभङ्गाद्यभिनयानां बाल्येपि [6]कामिनीकामोद्बोधकत्वाद्रसाविष्टानां तथैवानुभवात् तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । अतःपरं सख्यं निरूपयन्ति **सख्यं मधुर**मिति । अयं भावः । ‘समानशीलव्यसनेषु सख्य’मित्युक्तत्वात् सर्वसमक्षं स्वस्य बालभावेनैव [7]स्वलालनरसाविष्टां तत्तन्मधुरमुग्धभावानुसारिणीं विधाय पश्चात् सख्यभावं कृत्वा रहसि तत्तल्लीलारसानुभवमग्रे कारयतीति तत्स्मृत्वा **सख्यं मधुर**मित्युक्तम् । अथवा, बालभावेन सख्यं कृत्वा सर्वसमक्षमेव प्रियाभिः सह क्रीडाकरणे प्रिययोः स्वसमीहितरसानुभव एव भवत्यन्येषां बालभावस्यैवेति तत्स्मृत्वा **सख्यं मधुर**मित्युक्तम् । अग्रे **गीतं मधुर**मुच्यते । तस्यायं भावः । मुग्धभावांगीकारेऽपि

---

[1] पतने इति पाठः । [2] स्वकुचकुङ्कुमादिचिह्नानामिति पाठः । [3] बाल्येति पाठः । [4] लीलानुकरणे । [5] भावप्रियोऽस्मत्तोषं करिष्यतीति पाठः । [6] कामुकानामिति पाठः । [7] रसाविष्टगोपिकामिति पाठ ।

यावन्तो गीतभेदास्तदभिनये रसाविष्टानां कामरसाविर्भाव एव भवतीति **गीतं मधुर**मित्युक्तम् । अथवा, मुग्धभावप्रदर्शनार्थमेव कदाचिदव्यक्तं गीतं करोति तथापि तासां तादृशाभिनयजनितभ्रूभङ्गकटाक्षाद्यवलोकने कामरस एव उत्पद्यते, अन्येषां बाल्यरसाविर्भाव एव भवतीति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । अत एवोक्तं ‘व्रजजनश्लाघ्यगुणे’ति गीते, तेन तथात्वम् । अग्रे **पीतं मधुरं भुक्तं मधुर**मुच्यते । तस्यायं भावः । बाल्ये पानभोजनादिकं श्रीमन्मातृचरणसमीपे कृतं भवति यद्यपि तथापि [1]स्वभावाग्रहेणैव काञ्चित् [2]प्रियां समाहूय स्वसमीपे स्थापयित्वा तया [3]सममेव पानभोजनादिकं करोतीति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । अथवा, चौरचर्योक्तप्रकारेण सर्वासामुपभोगकरणात् तथोक्तम् । अथवा, सायं प्रथमं पयःफेनादिपानं भवति, पश्चाद्रात्रौ भोजनं भवतीति, पूर्वं तदुक्तम् । तथा च स्वर्णपात्रे पायःफेनपानव्याजेनेत्युक्त्या तस्य मधुरत्वं [4]युक्तमेवेति तथोक्तम् । एवं अनेकप्रकाराः पानभोजनादौ भावनीयाः । ततः **सुप्तं मधुर**मुच्यते । तस्यायं भावः । यद्यपि शयनं बाल्ये मातृचरणसमीपे तथापि भक्तानां रात्रौ विप्रयोगेन तदात्मकतायां अन्तस्तत्प्राकट्ये तत्स्वरूपानुभव एव भवति इति तथोक्तम् । [5]प्रातरेत्य बहिरवलोकनाभावजनिततापनिवृत्त्यर्थं ‘चिरविरहितापहरे’ इत्यादि गीतेन प्रार्थ्यते ताभिः । अथवा, क्रोडीकृत्य लालनादौ बालभावेन क्रोड एव कदाचित्स्वपिति तदा तस्याः प्रियायाः वक्षसि समालिङ्ग्य एककरेण कुचस्पर्शं कुर्वन् स्वपितीति पूर्णरसानुभव एव तस्या भवतीति तत्स्मृत्वा **सुप्तं मधुर**मुक्तम् । अग्रे **रूपं मधुर**मुच्यते । तस्यायं भावः । एवं क्रोड एव शयने कृते सर्वाङ्गावलोकनस्पर्शादौ तन्माधुर्यमनुभूतं भवतीति **रूपं मधुर**मुक्तम् । अथवा, बाल्यदशायामपि तादृशरूपस्य परमसौभाग्यौदार्यगुणाधारत्वाद्रसाविष्टानां कामोद्दीपकत्वेन **रूपं मधुर**मुक्तम् । अग्रे तिलकं निरूपयन्ति **तिलकं मधुर**मिति । यद्यपि गोरोचनादिकृततिलको मुग्धभावमेव प्रकटयति, तथापि तादृशे रूपे कृतत्वात् स्वस्यापि मोहनैकस्वभावात् कामभावमेवोत्पादयतीति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । किञ्च, अस्य

---

[1] बालभावेति पाठः । [2] स्त्रियमिति पाठः । [3] सहैवेति पाठः । [4] उक्तेति पाठः । [5] आगत्येति पाठः ।

तिलकस्य मुख्यत्वेन तन्निरूपणात् सर्वेषां भूषणानामपि निरूपणं ज्ञेयम् । तेन सर्वाण्याभरणानि तादृशभावोद्दीपकानि मधुराण्येव इति ज्ञापनाय अग्रे निरूपयन्ति **मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्** ॥

अतः परं केवला कुमारलीला निरूप्यते **करणं मधुर**मिति। यद्यपि **श्रीमदाचार्यैः** निखिललीलामाधुर्यानुभवाद् बाललीलामाधुर्यसमुदायेनैव '**अधरं मधुर**'मित्यादि निरूपितं, तथापि प्रथमदर्शने यादृशानुभवो जातस्तादृशमेव माधुर्यं प्रथमं निरूपितं भवतीत्यभिप्रायेण पूर्वं प्रथमानुभवप्रकारकभावविवरणं कृत्वा पश्चादितरलीलामाधुर्यविवरणं कृतमिति श्लोकचतुष्टयस्य पुनः पृथक्तया [1]बाललीलाभावनिरूपणं कृतमिति ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

प्रस्तुतं निरूपयन्ति **करणं मधुर**मिति ।

करणं मधुरं रमणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥

ईदृग्रूपतिलकनिरूपणेन भगवतः सकलकलाचातुर्यातिशयस्फूर्तौ लीलासम्बन्धिविविधोपायविरचनस्याशक्यस्यापि शक्यत्वसम्पादनरूपत्वानुभवात् **करणं मधुर**मित्युक्तम् । एतत्सर्वं 'निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः । एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रज' इत्यस्य विवरणे **श्रीमदाचार्यैः** 'ब्राह्मणोपि भवति क्षत्रियोपि भवत्येकस्यां शाखामारूढः सर्वं फलं भुङ्क्त' इत्यादि निरूपितम्। विशेषतः **पिप्पण्यां** कारिकाभिः स्फुटीकृतं **श्रीमत्प्रभुचरणैः** ॥ अग्रे तादृशकृत्यनन्तरं रमणं मधुरमेव भवतीति **रमणं मधुर**मित्युक्तम् ॥ ततः कदाचिद् यमुनापारस्थ[2]भर्तुर्मिलनार्थं यातायातमपेक्षितमुभयोः सान्निध्ये किञ्चिन्निमिषान्तरं विना न सम्भवतीति कौतूहलक्रीडया स्वस्य नाविककलाकौशलं [3]प्रदर्शयन् पारोत्तारणविधिं स्वयमेव करोति भगवांस्तदा भक्तानां [4]पारावारोत्तरणविधाने परस्परमिलने सति चिरनिभृतनिर्भरोत्तरलितसुभगानुरागभरमधुरतरोल्लसितस्मितस्मेरापाङ्गभङ्गविलोकन-

---

[1] लीलात्मकभावेति पाठः । [2] भक्तेति पाठः । [3] प्रदर्श्येति पाठः । [4] पारोत्तारणेति पाठः ।

वचनरचनायां परमकुतुकाकूतविचित्रभावानामुच्छलितत्वाद् विलक्षणरसानुभवेन तत्तरणमतिमधुरमनुभूतं भवतीति तत्स्मृत्वा **तरणं मधुर**मित्युक्तम् ॥ [1]एवं तरणेपि भावा अनेका भावनीयाः अग्रे पुनरुपद्रावकलीलां निरूपयन्ति **हरणं मधुर**मिति । **हरणं** चौर्यं बलादन्यसम्बन्धिवस्तुपदार्थानामाहरणं वा, तत्सर्वेषामुपद्रावकम्, भक्तानां तु परमरसानुभावकत्वेन परममधुरमनुभूतं भवतीति तत्स्मृत्वा **हरणं मधुर**मित्युक्तम् । अत्राप्यनेकप्रकारा ज्ञेयाः । किञ्च, चौर्यसमये गृहीतश्चेद् विविधभावकृतापाङ्गादिदर्शनेन स्वरूपरसानुभव एव भवतीति तत्स्मृत्वा तस्य मधुरत्वं निरूपितमिति भावः ॥ एतदग्रे ततोऽप्युपद्रावकमाहुः **वमितं मधुर**मिति । चौर्येण दधिदुग्धादिकं पिबतीति ज्ञात्वा गृहीतश्चेत् तन्मुखोपरि दुग्धादिगण्डूषं कृत्वा पलायते, तदा पुनः कौतुकरसाविष्टास्तत्कृतिं विलोकयन्त्यो हसन्त्येव न तु तासां कोपादिकं भवति, इति प्रभुरपि दूरे स्थित्वा तन्मुखमवलोकयन् हसतीति स्वरूपमाधुर्यरसमोहिता एव करोतीति तत्समयं स्मृत्वा **वमितं मधुर**मित्युक्तम् ॥ अग्रे पुनस्तादृशोपद्रवोपलम्भनार्थं यदा श्रीमातृचरणसमीपे प्रियाः समायान्ति तत्पूर्वमेवागत्य श्रीमन्मातृचरणसमीपे परमसाधुर्भूत्वा विविधमुग्धभावैः क्रीडति, तदा तास्तादृशोपद्रवकर्तुः तादृशलीलाशान्तस्वरूपत्वं [2]विलक्ष्य तज्जनितमुग्धभावातिसौन्दर्यं प्रकटीभवतीति तदनिर्वचनीयमाधुर्यरसानुभवेन विविधभावतरङ्गान्दोलितहृदयाः स्वरूपमेव पश्यन्त्यः किमपि वक्तुं न शक्नुवन्ति, तत्समयं स्मृत्वोक्तं **शमितं मधुर**मिति । एतदेवोक्तं 'तरङ्गा इव रागाब्धेरुदिताः प्रिययोर्मिथः । भावा वक्तुमशक्यास्ते ज्ञेयास्तु तदनुग्रहात्' इति **प्रभुचरणैः** ॥ एवं तत्तत्सामयिकं उपद्रावकमपि परममधुरमित्युक्तमग्रे **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मिति ॥ ५ ॥

अतः परं यमुनातीरलीलास्फूर्तौ तन्निरूपयन्ति **गुञ्जा मधुरा** इत्यादिभिः ।

गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥

---

[1] एवमनन्ता भावास्तरणेऽपि भावनीया इति पाठः । [2] वीक्ष्येति पाठः ।

यमुनातीरवनेषु गुञ्जातरवो बह्वोपि सन्ति फलिता इति ‘गुञ्जानां मधुराञ्जनदीप्तिभिः सुनासापुटमुक्ताफलभूषणं तवास्यसदृशं भवती’त्युक्तत्वेन भावात्मकत्वात् धारणं करोति भगवांस्तेन भावात्मकत्वेन तन्माधुर्यं स्मृत्वा तथोक्तम् । तथैव वन्यमालाया धारणमपि पुष्पाणां प्रियाहसितसादृश्येन तद्ग्रथितमालाया भावात्मकत्वेन रसोद्बोधकत्वात् परमसौन्दर्यमाधुर्यानुभवात् मालाया मधुरत्वं निरूपितम् । मालाया ‘बर्हापीडे’ति श्लोके विक्षेपकशक्तिमत्त्वेन रसोद्दीपकत्वं निरूपितमेवेति स्फुटमेव तथात्वमिति भावः । अथवा, ‘दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तै’रित्युक्ते लीलायां प्रियाविरचितमालाधारणेन आलिङ्गनादिसम्मर्दनजनितकुङ्कुमादिसौरभशोभारञ्चितमाधुर्यानुभवात् तथोक्तम् । अथवा, ‘ग्रीवोरःस्थलकटितटकाञ्चीदामप्रपदयोः सततं, विहरन्ती वनमाला मत्तालिकुलैरभवदुद्गीते’ति श्लोके तत्तदङ्गविहारव्यञ्जितविपरीतरसभावात्मकत्वं मालाया द्योत्यते । तेन तन्माधुर्यसौभाग्यं किं वाच्यमिति भावः । एवमनेकविधा भावाः मालायामपि भावनीयाः ॥ एवं तीरसम्पत्तिमाधुर्यं निरूप्य यमुनाया माधुर्यं निरूपयन्ति **यमुना मधुरे**ति । यमुनायाः साक्षाद्रसात्मकभगवद्व्रजरसज्ञरमणीलीलारसानुभवोद्भूतरसभावात्मकत्वेन च माधुर्यस्य प्रकटत्वात् स्वरूपतो **यमुना मधुरे**त्युक्तम् ॥ ततस्तरङ्गानामुच्यते **वीची मधुरे**ति । अत्र वीचीनिरूपणे त्रिविधवायुनिरूपणमपि ज्ञेयम्, अन्यथा वीचीनामसम्भवात् । सोपि लीलायां रसाधायकत्वात् मन्द एवेति वीचयोपि मृदुलतरा एव सूच्यन्ते । तादृशीनां शृङ्गाररसजलधिसमुच्छलत्तरलतरङ्गसदृशप्रियापाङ्गरङ्गसमसौभाग्येन भावात्मकत्वाद् मधुरत्वं निरूपितम् ॥ ततो जलस्य माधुर्यं निरूपयन्ति **सलिलं मधुर**मिति । ‘उपरि चलदमलकमलारुणद्युतिरेणुजलभरेणामुना व्रजयुवतिकुचकुङ्कुमारुणमुरः स्मारयसि मारपितुरधुने’ति निरूपणात् जलस्यापि तादृशरसात्मकभावरूपत्वात् मधुरत्वं निरूपितम् । किञ्च, ‘सकलगोपिकासङ्गमस्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः सङ्गम’ इत्युक्तप्रकारकरसात्मकत्वेनापि मधुरत्वस्मरणात् तथात्वमुक्तम् । तेन जलक्रीडाजनितपरमानन्दानुभावकत्वात् तथोक्तमित्यपि सूचितम् । किञ्च, कुमारिकाभिः जलक्रीडायां व्रतचर्योक्तप्रकारकसलिलमाधुर्यं यथानुभूतं तथा स्वस्याप्यनुभवात् तथोक्तमित्येवमनेकप्रकारा भावनीयाः ॥ ततः कमलानां निरूपयन्ति **कमलं मधुर**मिति । यद्यपि कमलानां माधुर्यं तापहारकादिधर्मैः प्रकटमेव तथापि, ‘अत्राधिरजनिहरिविहृतिमीक्षितुं कुवलयाभिधनयनान्युषसि तनुष’ इति **यमुनाष्टपदी**गीतोक्ततन्नयनरूपत्वेन रसात्मकत्वात् तल्लीलावलोकनजनितविविधभावसंवलिततद्रसरूपमकरन्दमाधुर्यानुभवात् तथोक्तमिति भावः ॥ अथवा, प्रियानेत्रसदृशशोभातिशयधारणेन भावात्मकत्वात् तथोक्तम् ॥ एवं यमुनासम्बन्धिसमस्तपदार्थानां माधुर्यवत्त्वमेवेत्यग्रे **मधुराधिपते**रित्युक्तम् ॥ ६ ॥

अतः परं समस्तलीलोपयोगिपदार्थानां [1]उद्दीपनविभावादीनां माधुर्यं निरूपयन्ति **गोपी मधुरे**ति ।

गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ७ ॥

गोपीपदेन[2] शुद्धभावात्मिकास्ता उक्ताः । यद्यपि लोकेपि नायिकानां माधुर्यं भवति तथाप्येकान्तिका एताः शुद्धभावेन परमस्निग्धाः अलौकिकरसात्मिका भगवत्स्वरूपैकनिष्ठा इति स्वरूपत एव साहजिकमलौकिकमाधुर्यमस्तीति तादृशस्वरूपानुभवाद् **गोपी मधुरे**त्युक्तम् । किञ्च, एतासां शुद्धभाववत्त्वेन देहप्राणेन्द्रियान्तःकरणादयोपि भगवत्स्वरूपभावात्मका एवेति तत्सौन्दर्यमाधुर्यलावण्यादीनां सर्वदा प्रकाशमानत्वात् सार्वदिकमेव तासामलौकिकं माधुर्यमिति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । किञ्च, यमुनामाधुर्यवर्णनप्रस्तावे **गोपी मधुरे**ति निरूपणात् जलक्रीडासमयः सूच्यते । तेन जलक्रीडायां गोपीनां वसनभूषणादीनामल्पत्वसम्भवात् स्वाभाविकं सौन्दर्यजनितमसाधारणं माधुर्यं तत्तदङ्गेष्वनुभूतं भवतीति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् । अत्र गोपीपदे त्वेकवचनं शुद्धभावात्मकजात्यभिप्रायेणोक्तम् ॥ ततो लीलाया मधुरत्वं निरूपयन्ति **लीला मधुरे**ति । तादृशीनां लीला हावभावकटाक्षादिरूपाः ‘काञ्चित्कराम्बुजं शौरे’रित्यारभ्य ‘पादन्यासैर्भुजविधुतिभि’रित्यादिसर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रया इत्यन्तेनोक्ताः सर्वा मधुरा इति

---

[1] आलम्बनेति च पाठः । [2] शब्देनेति पाठः ।

तदखिलं स्मृत्वा तथोक्तम् । यद्यपि कामलीला मधुरा भवति, तथापि भगवल्लीलायामुद्दीपनविभावानामालम्बनविभावानां चालौकिकरसात्मकत्वात् तल्लीलानामप्यलौकिकत्वेन तन्माधुर्यस्य वैलक्षण्यानुभवात् तल्लीला मधुरेत्युक्तम् । किञ्च, गोपीपदस्य शुद्धभावार्थकत्वात् शुद्धभावप्रसादित इति प्रस्तावे कुमारीणां तथा निरूपणात् ता अपि अत्र निरूप्यन्ते **गोपी मधुरा लीला मधुरे**ति । किञ्च, यमुनासम्बन्धिलीलानिरूपणप्रस्तावे 'गोपी मधुरे'ति निरूपणेनापि व्रतसम्बन्धिन्यो ज्ञायन्ते, यमुनायाः कुमारीकामपूरकत्वात् । तदुक्तम् । 'कुमारीकामपूरके कुरु भक्तिराय-'मिति । तास्तु यमुनायां शृङ्गारोद्दीपकवसनेन भूषणादित्यागेन विहरन्तीति तासां परमसौन्दर्यमाधुर्यरमणीयतरप्रत्यङ्गावलोकनार्थं भगवता वसनेषु हृतेषु पुनस्तत्प्रार्थनतदुत्तरविरचनायामन्तरुच्छलद्रसाब्धिपूरजनितविचित्रभावतरङ्गसंवलितावलोकनपरिहासकौतुकरसात्मकमुग्धभावातिललितसकलाङ्गावलोकनजनितपरमरसानुभवोभूद्भगवत इति तत्स्मृत्वा **गोपी मधुरा लीला मधुरे**त्युक्तम् ॥ अग्रे पुनः स्वसमीपागमने स्वकरकमलेनालौकिकरसात्मकवसनयोजनं **युक्त**पदेनोच्यते । तादृशं वसनपरिधापनं स्मृत्वा **युक्तं मधुर**मित्युक्तम् ॥ अग्रे **मुक्तं मधुरं** निरूप्यते । तस्यायं भावः। तत्तदङ्गपरमसौन्दर्यमाधुर्यावलोकनपूर्वकं नीवीपरिधापने सात्त्विकभावाविर्भावेन करकमलान्नीवी स्खलतीति तत् स्मृत्वा **मुक्तं मधुर**मुक्तम् । अथवा, सौन्दर्यावलोकनार्थमेव करकमलान्नीवीं मुञ्चतीति तथोक्तम् । अथवा, परिहासार्थमपि तथा करोतीत्यनन्तप्रकारकभावसंवलितं मोचनमुक्तम् । अथवा, प्रौढानामेव मोचनमुच्यते । तदा 'नीवीं पति प्रणिहिते च करे प्रियेणे'त्युक्त्या तन्मोचनमाधुर्यं तदनुभवैकवेद्यमिति तत्स्मृत्वा तथोक्तम् ॥ अग्रे **दृष्टं मधुरं** निरूप्यते । तस्यायं भावः । तादृशे समये परस्परोच्छलितकामभावतरलतरावलोकनं परममधुरं भवतीति तथोक्तम् । अथवा, [1]व्रतस्थानामेतावत्पर्यन्तं कौमारभावसंवलितावलोकनमभूदधुनैव तथाविधकामरूपवसनपरिधापने तद्रसात्मकं परस्परं निरीक्षणं परममधुरं भवतीति तत्स्मृत्वा **दृष्टं मधुर**-

---

[1] वृतार्थानामिति पाठः ।

मुक्तम् । तथा चोक्तं 'प्रेष्ठसङ्गमसज्जिता' इत्यस्य विवरणे 'रसात्मका जातास्ता' इति **श्रीभागवते** ॥ अतः परं श्रीमतः **शिष्टं मधुरं** निरूप्यते । अत्रायं भावः । व्रतस्थाः सर्वा ऋषयः । तेषां परमानुग्रहेण देहप्राणेन्द्रियान्तःकरणं तद्धर्मादयः सर्वे भगवता स्वविषयीकृताः, अधुना लीलात्मकस्वरूपप्राप्त्यनन्तरं तदीयपुंस्त्वाख्यो यो धर्मः सोवशिष्टः पृथक्तया भगवता स्वान्तःस्थापितोङ्गीकृतत्वात् । तद्धर्मरूपा एव ते वयस्याः, तेषां दर्शने तासां स्वधर्मरूपत्वाज्ञानाल्लज्जया विविधभावसंवलितवचनमाधुरीसमुद्रलहरीविलासा जाताः; तेषां तु [1]तद्धर्मरूपवयस्यत्वेन पृथग् विद्यमानत्वाद् भगवत्कृतिचातुर्यज्ञानेन स्वस्यापि तदङ्गीकृतिजनितरसात्मकभावरूपत्वसम्पत्तिज्ञानेन च विविधभावाकूतं तल्लीलावलोकनं भवतीति तत्स्मृत्वोक्तं **शिष्टं मधुर**मिति । तादृशलीलावलोकनमितरपुरुषाणां न सम्भवति रसाभाससम्पादकत्वात् । अथवा, उद्दीपनालम्बनविभावलीलानिरूपणानन्तरं 'शिष्टं मधुर'मिति निरूपणात् । शिष्टपदेन रमणमेवोक्तम् । तेन 'आत्तगजेन्द्रलील' इत्येतत्प्रकारकानिर्वचनीयमाधुर्यानुभवात् तथोक्तम् । अथवा शिष्टपदेन रत्यन्तो ज्ञेयः । तेन लोके तदन्ते विरतिर्भवतीति रसाभावो निरूपित इत्यतो भगवतस्तत्करणमपि मधुरमेवेह विरत्यभावादिति **शिष्टं मधुर**मुक्तमिति भावः ॥ तथा चोक्तं 'स्वरतिरात्तगजेन्द्रलील' इति । तादृशमपि भगवत्सम्बन्धिरससम्पादकमिति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मित्युक्तमग्रे ॥ ७ ॥

अतः परं परेषामप्ययोग्यानां योग्यत्वं निरूपयन्ति **गोपा मधुरा** इति ।

गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

गोपा अन्तरङ्गाः शुद्धभावं प्रपन्नाः सङ्केतादिषु भगवल्लीलासाधकाः तत्तद्भक्तसङ्गमकरणैकतत्पराः सर्वदा भगवद्भावाविष्टाः [2]सर्वदानुभूतलीलागुणगानरसैकसरसमानसाः, अत एव बहिरपि तदेकरसार्द्रनयनाः तत्तत्प्रियासम्बन्धिवार्तानुवादकरणोपयोगित्वेन भगवतोऽतिप्रियाः, तादृशानां तेषां तावन्निखिलधर्मादिस्फूर्तौ **गोपा मधुरा** इत्युक्तम् । एतदेवोक्तं **वेणुगीते**

---

[1] स्वधर्मरूपेति पाठः । [2] पूर्वानुभूतेति पाठः ।

‘एते देवाः साक्षिण’ इति विवरणे ॥ ततोग्रे इतोप्ययोग्यानां माधुर्यं निरूपयन्ति **गावो मधुरा** इति । गावस्तु पशुत्वेन अत्यन्तं अयोग्याः, तथापि वेणुनादामृतप्रवेशे तासामपि रसात्मकालौकिकभावसम्पत्तिः पशुत्वधर्मनिवृत्तिपूर्वकं सम्पन्नेति ‘गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्य’ इत्यनेन निरूपितम् । अत एव गावोपि भावात्मकत्वेन मधुरा एवेति तथोक्तम् । अथवा, गावोऽनुभाविकाः, गोदोहनादिव्याजेन तत्तद्भक्तसंयोगे तत्तत्तद्रसानु[1]भवकारिका इति विप्रयोगसमये तासां गवां दर्शनस्पर्शादौ तत्तत्प्रियावलोकनस्पर्शादिमाधुर्यानुभवो भवतीति तत्स्मृत्वा **गावो मधुरा** इत्युक्तम् ॥ अतः परमचेतनानां तत्रापि शुष्काणां मधुरत्वं निरूपयन्ति **यष्टिर्मधुरे**ति । **यष्टि**र्नीरसा, तस्या अपि मधुरत्वस्य सम्पादने अत्यलौकिकं चरित्रं भगवतो निरूपितम् । अयं भावः । **यष्टि**स्तु नियामिका दण्डसाधिका भवति । रसात्मकलीलायां दण्डान्तराभावात् यष्टिनिरूपणेन दानलीला व्यज्यते । तेन दधिविक्रयार्थं निर्गतानां वने समागतानां व्रज[2]वल्लवीनां निरोधार्थं प्रवृत्तस्य तन्निरोधसाधिका यष्टिरिति ज्ञाप्यते । तथा च तन्निरोधकरणे परस्परोत्तरप्रत्युत्तररसार्णवे मग्नानां [3]समुत्तरणे सति प्रथमं निरोधव्याजेन परमलावण्यरससंवलितानेकभावोल्लसितापूर्वतररुचिरस्मित[4]स्मरोत्फुल्लविलोचनसुधासिन्धुप्रसृतमाधुरीभरातिमधुरापाङ्गभङ्गीभिरनङ्गरङ्गतरङ्गा[5]नुत्तेजयता भगवता तासां वक्षःस्थलादिषु यष्ट्यैव स्पर्शः क्रियते, तदा करकमलसम्बन्धजनितरसात्मकयष्टिस्पर्शेन कुसुमशरस्पर्शाघातेनेव तासां हृदयं विविधभावोद्घुर्णितं भवतीति तन्माधुर्यं तासामेव वेद्यं, नान्येषाम्, स्वस्य तदनुभवात्। तत्स्मृत्वा **यष्टिर्मधुरे**त्युक्तम् ॥ एवं लोकदृष्ट्या अयोग्यानामपि भगवत्सम्बन्धित्वेन मधुरत्वं निरूप्य लीलासृष्टिः सर्वापि मधुरैवेति निरूपयन्ति **सृष्टिर्मधुरे**ति । अयं भावः । ‘पुष्टिं कायेने’ति वाक्यात् साक्षाद्रसात्मकभगवच्चरणारविन्दरजआदितदप्राकृतभूतसम्पादितस्वरूपा लीलासृष्टिः, तत्र यस्य यादृशं रूपमपेक्षितं तादृशमेव भवितुमर्हतीति लोकदृष्ट्या

---

[1] अनुभाविका इति च पाठः । [2] तरुणीनामित्यपि पाठः । [3] समुत्तरलेति पाठः । [4] स्मेरामलेति च पाठः । [5] उन्निनयतेति पाठः।

[1]यष्टेः नीरसत्वेपि रसात्मकसृष्ट्यन्तर्गतत्वेन भावात्मकत्वात् तस्या मधुरत्वं निरूप्य सृष्टिरेव सर्वा मधुरेति ज्ञापनाय **सृष्टिर्मधुरे**त्युक्तम् ॥ एवं भगवतः सर्वं रसात्मकमिति निरूप्य तादृशस्य स्वरूपनिरूपणपूर्वकं उपसंहरन्ति **दलितं मधुरं फलितं मधुर**मिति । अत्र भगवतो रसात्मकफलरूपत्वाद् व्रजसीमन्तिनीनां तद्दलत्वेनोपभोगयोग्यत्वेन माधुर्यं निरूपितम् । एवं सति फलस्य वृक्षाश्रयत्वाद् भगवतो वृक्षरूपत्वमपि निरूप्यते । तथा चोक्तमपि **श्रीप्रभुचरणैः** ‘नन्दगेहालवालोदितस्त्रीरागसेकसंवृद्धसुरवृक्षं’ तथा ‘भावैरङ्कुरितं महीमृगदृशामाकल्पमासिञ्चित’मिति । लोके वृक्षस्य फलमेव उपभोग्यं भवति । अयं तु अङ्कुरमारभ्य फलपर्यन्तमनवरतसुरवृक्ष एव रसात्मक उपभोक्ष्यते इति ज्ञापयितुं **दलितं मधुर**मित्युक्तम् । वृक्षस्य यथा प्रथममङ्कुरमारभ्य पल्लवशाखाकलिकापुष्पफलानि क्रमशो भवन्ति, तथास्यापि नन्दगेहालवाले प्राकट्यादारभ्य बाल्यकौमारपौगण्डकैशोरपर्यन्तं सर्वदा रसात्मकत्वेन उपभोग्यत्वमेवेत्यलौकिकत्वेन ततो वैलक्षण्यं निरूपितम् । किञ्च, अयं रसात्मको वृक्ष इति रसस्य भावात्मकत्वेन भावानां कोमलप्रौढतरादिविविधविचित्ररूपत्वादङ्कुरपल्लवादिरूपत्वं शास्त्रे निरूपितम् ‘अङ्कुरपल्लवशाखेत्यादिने’ति । तादृशत्वज्ञापनाय भगवतः पल्लवादिधारणं **श्रीभागवते** निरूपितं ‘चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमाले’त्यत्र । तद्भावास्तु विवरणे ‘वस्तुनिर्देशमात्रेणे’त्यादिकारिकाभिः स्फुटीकृता इति तत् सर्वं स्मृत्वा **दलितं मधुरं फलितं मधुर**मुक्तम[2]व्यवधानेन । किञ्च, अत्रोपक्रमोपसंहाराभ्यामपि अयमेव भावार्थः स्फुटीभवति । तथा च उपक्रमे अधरस्योक्तत्वात् उपसंहारे दलितस्य निरूपणाच्च अधरस्य दलरूपत्वेन उपक्रमोपसंहारसङ्गतौ सत्यां तन्मध्यपातिसम्पूर्णवृक्षस्यैव रसात्मकत्वेन उपभोग्यत्वमिति ज्ञापनार्थं अन्ते पुनः **फलितं मधुर**मुक्तमिति भावः । एवं सम्पूर्णवृक्षस्य रसरूपत्वं निरूप्य फलरूपत्वं निरूपयन्ति **फलितं मधुर**मिति । ‘अतो निरोधो महाफल’ इत्युक्तत्वात् फलप्रकरणीयपूर्णसंयोगरसानुभवानन्तरं विप्रयोगे श्रीमदुद्धवमिलनजनितोत्सवभराविर्भूतविचित्रभावा-

---

[1] सृष्टेरिति पाठः । [2] तदव्यवधानेति पाठः ।

मृतसिन्धुकल्लोलदोलायितव्रजयुवतिदेहप्राणेन्द्रियान्तःकरणादिषु [१]तत्तद्रूपेण निरन्तरं लीलाकरणरूपं यत्फलितं तन्मधुरमित्युक्तम्, तथा निरोधस्य सम्पूर्णत्वादिति । अत एव 'उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान्यथे'ति निरूपितं निरोधवर्णने ॥ एवं फलपर्यन्तं निरूप्य भगवतो [२]ह्युभयरसात्मकत्वादुभयरसलीलापि सर्वा मधुरैवेति निरूपयन्तो निरोधसमाप्तिं निरूपयन्ति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मिति । उभयरसरूपस्य सर्वं मधुरमेवेति निरूपणात्संयोगे यथा शृङ्गाररसान्तःपातित्वेन वीरादीनामपि मधुरत्वं, तथा विप्रयोगेपि अत्यार्त्या कथञ्चिदपि प्रियचरणसम्बन्धो भवत्विति बुद्धया कृतानां 'कस्याश्चित् पूतनायन्त्या' इत्यादिउक्तप्रकारकवीरादीनां रसत्वेन मधुरत्वमेवेति ज्ञापनाय अखिलमेव तादृशस्य भगवतो मधुरमित्युक्तं **श्रीमदाचार्यचरणैः मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मिति ॥ ८ ॥

मधुराधिपते रूपमाधुर्यमधुराखिलान् ।
श्रीमदाचार्यचरणान् नमामि मधुरप्रदान् ॥ १ ॥
स्वतःसमुल्लसद्भूरिकरुणामृतकेलिनः ।
अनुग्रहानिलेनेद मानसं सुरभीकृतम् ॥ २ ॥
ततः स्फुटोऽभून्मधुरभावानां कोपि सौरभः ।
विकसच्छ्रीमदाचार्यमुखपद्म[३]सुधात्मनाम् ॥ ३ ॥
अगाधं माधुर्यं जयति मधुराधीशजलधे-
रगाह्यस्तल्लीलाम्बुधिमधुरिमा वागविषयः ।
अपि स्वाचार्यास्याम्बुजमधुरता तत्र कृपया
स्फुटा भावाः केचित् तदिह खलु बिन्दोर्विलसितम् ॥ ४ ॥
श्रीविट्ठलेश्वरपदाम्बुजमञ्जुमाध्वीमाधुर्यलुब्धमदमत्तमधुव्रतस्य ।
आनन्दगुञ्जितमिवालपितं ममेदं सौहार्दतः स्वसुहृदः परिशीलयन्तु ॥ ५ ॥

इति श्रीवल्लभाचार्यसूनुश्रीगोस्वामिश्रीविट्ठलेश्वरदीक्षितात्मजश्रीबालकृष्णकृतं श्रीमधुराष्टकविवरणं सम्पूर्णम् ॥

---

[१] तत्त्वरूपेणेति पाठः । [२] रसात्मकस्येति पाठः । [३] आसवात्मवानिति आसवात्मनामिति च पाठौ ।

श्रीकृष्णाय नमः ।
श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।

मधुराष्टकम्

श्रीवल्लभकृतविवरणसमेतम् ।

जयन्ति जगतीतले भगवदास्यवैश्वानराः
स्वकीयजनभावनाप्रकटवल्लभाधीश्वराः ।
वियोगतरलीकृतव्रजवधूविलासं ययु-
स्त एव मधुराष्टके मधुरगीतपूर्णात्मकाः ॥ १ ॥
यत्करुणीकृतदृष्ट्या भावाः स्वत एव वर्धिताः सततम् ।
हृदये तदेकशरणे वन्दे तान् श्रीमदाचार्यान् ॥ २ ॥
श्रीमदाचार्यचरणकमलैकरसाश्रयः ।
संसिक्तहृदयात्माहं व्याख्यास्ये मधुराष्टकम् ॥ ३ ॥
सर्वाः सर्वात्मभावेन भगवद्गानतत्पराः ।
साक्षात्फलात्मरूपेण कृष्णेनाङ्गीकृता हि ताः ॥ ४ ॥
ततो मानादिभावेन स्वान्ते मानं परं दधुः ।
तद्वीक्ष्य भगवान्मध्यस्तिरोधानं चकार हि ॥ ५ ॥
तद्वर्ण्यते द्विधा तासु स्वरूपेण गुणेन च ।
गुणानामपि तादात्म्यं स्वरूपं वै रसाकरम् ॥ ६ ॥
'रसो वै स' इति श्रुत्या तत्तथैव निगद्यते ।
'यत्राकृतिस्तत्र गुणा' इति न्यायोपदेशतः ॥ ७ ॥
तस्मात्स्वरूपमाधुर्यं गुणानां वा तथैव च ।
विवेकरहिता भक्ता भावयेयुर्मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥
प्रत्यङ्गभावनापूर्वं गानं सर्वाः पृथक् पृथक् ।
कालक्षेपाय तास्तत्र कुर्वन्तीति परस्परम् ॥ ९ ॥

अथ **श्रीमद्वल्लभाधीशचरणा**स्तादृशीनां भावं स्वहृदि समाधाय तत्तल्लीलानुभवं कुर्वन्तस्तादृशालापसंयुक्तगुणगानपराः सन्तो यथा कथञ्चिद्विप्रयोगकालक्षेपार्थं सर्वथा यत्क्षणमपि तेन विना स्थातुं न शक्यते, तदनिर्वाहकत्वेन कल्पान्तरोपसमकक्षत्वेन ‘त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यता’मिति वाक्यात्तादृशभावयुक्तानां भावं चानुभूय स्वस्य प्रथममित्येव तदास्यरूपत्वेनोद्गताधरसुधापानकरणत्वेन च प्रार्थयन्ति **अधरं मधुर**मिति ।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ १ ॥

या सुधा सर्वाभोग्यरूपा, स्वामिनीनां गुणगानदशायामेव कर्णद्वारेण हृदये प्रवेष्टुं शक्या, तत्रापि तदधरसम्बन्धेनैव मधुरा, सा लोभात्मक अधर एव स्थापिता, तत्प्रार्थनायां तावन्मात्रमित्युक्तम्, तथा च तद्वद्गुणगानलीलासामयिकमनुभावादिकं सर्वं हृदि कृत्वेत्युक्तमित्यर्थः । यद्वा । अधरमेव मधुरमिति स्वामिनीनामिव भगवतस्तद्गुणालापेनैवोत्कण्ठाविरहशामकत्वात्तद्भावापन्नमिति सार्वदिकं सूचितम् । तेन तद्विना क्षणमपि कुत्रापि स्थातुं न शक्नोतीति भावः । तादृग्भावसम्पादने **श्रीमदाचार्याणामेव** श्रीयमुनावल्लीलोपयोगित्वादिकमस्तीति ज्ञापनायाप्युक्तम् । अथवा । पूर्वोक्तभाववतीनामवस्थां दृष्ट्वा स्वस्मिन्नपि तद्भावापन्नतया विप्रयोगरसानुभवार्थं तद्भावपूरकत्वेनानन्यधर्मस्फूर्त्या कथमपि शरीरसम्पादकत्वेन च रसवशात्तथैवोक्तम् । अत एव ‘तत्कथाक्षिप्तचित्त’ इति **सर्वोत्तमे प्रभुभि**र्निरूपितम् । अथवा । समानशीलव्यसनवत्त्वेन सजातीयतादृशीभिः सह लीलामृतजलधिमध्यपातित्वादवगाहनपूर्वकं माधुर्यविशिष्टमधरमेव प्रार्थयन्ति । तथा च विविधलीलाभावतरङ्गनिमग्नत्वे तदाधारत्वेनैव स्वस्वरूपस्थितिरिति भावः । अत एव तृतीयाध्याये‘प्यधरसीधुनाप्याययस्व न’ इति । अथवा । स्वस्य तदास्यरूपत्वेन प्रतिक्षणं तदधरसुधासंवलितत्वानुकूलकृतिकरणत्वेन चैतयोर्व्यापारसत्त्वादिति सर्वदा तदनुभवेनाधुनापि पूर्वात्परस्पराश्रयानुभूतं स्मृत्वा तासां भावपोषणार्थं सम्प्रत्येकां प्रत्यवदन् **अधरं मधुर**मिति ॥ एवमधरशोभाजनितमाधुर्यं निरूप्य वदनशोभां निरूपयन्ति **वदनं मधुर**मिति ।

पूर्वोक्तभाववतीनां सर्वदा भक्तिरूपभगवन्मुखारविन्ददर्शनेनोत्कटभावजनिततापोपशमनत्वादिदानीं तद्राहित्येन कथं तत्तापशान्तिरिति परस्परं तद्गतमाधुर्यनिरूपणार्थमत्यार्तिपूर्वकं तद्विषयकं दर्शनमेव भावयन्ति । तथा च । तादृगवस्थायां सर्वथा जीवनासम्भावनायां स्वाम्यनुपयोगदशायां तदनुभवः स्वास्थ्ये हेतुरिति तथात्रापीति । अथवा । स्वामिनीनां फलरूपं तावदिदमेव यतः प्रातरागम्य सायमागमनपर्यन्तं तद्भावनपर्यन्तं तद्भावनया तावत्पर्यन्तमपि विधुचकोरवत्स्मरणमात्रेणैव तावत्कालं कथमपि नीयते । पुनस्तत्समयप्रतीक्षयैव तादृगुच्छलितरसस्वभावत्वात्सन्मुखाभिसरणादिकमपि क्रियत एव । तदैव भगवानपि मयूरानुकरणपूर्वकं नृत्यं कुर्वन् तादृशकटाक्षावलोकनादिभिस्तासां सर्वभावपूर्वकमनोरथमापूरयन् गोष्ठं प्राप्नोतीत्यर्थः । अत एव ‘मुदितवक्त्रमुपयाति दुरन्तं मोचयन्व्रजगवां दिनताप’मिति । एतावन्मात्रं सर्वं हृदि धृत्वा **वदनं मधुर**मित्युक्तम् । यद्वा । ‘बर्हापीडे’ति श्लोके गोपिकानामेव भावरूपस्तदर्थमेव कोटिकन्दर्पलावण्यरूपो भगवान् प्रकटः कृष्ण इत्युच्यते । तस्मात्स्वामिनीनां यत्फलितं फलं तदनुभूय समानशीलव्यसनवतीषु तावदिदमेव निश्चीयते । ‘अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदाम’ इति ताभिर्गीतमपि । तथा सति फलसम्बन्धि मधुरत्वमित्युक्तम् । यद्वा । वदनस्य चन्द्रोपमत्वमपि घटत एव । यथा शीतलत्वात्तापहारकत्वाज्जीवनसम्पादकत्वाच्च भगवन्मुखचन्द्रोपि तासां सुखदोस्त्विति भावः । अथवा । स्वास्यं तदास्यरूपत्वेन प्रतिस्वामिनीमाननिराकरणदशायामपि तद्गुणानुवादार्थं मध्यस्थतया प्रत्युपकृतित्वेन च सर्वदोभयरसप्राप्तावपि माधुर्यविशिष्टं कटाक्षादिभावयुक्तं वदनमप्यनुभवयोग्यं करोतीति फलितम् । अत एव ‘मधुरया गिरा वल्गुवाक्यये’त्युक्तम् । एतत्सर्वं हृदि कृत्वा **वदनं मधुर**मित्युक्तम् ॥ एवं वदनशोभाजनितमाधुर्यं निरूप्य नयनशोभाजनितमाधुर्यं निरूपयन्ति **नयनं मधुर**मिति । एतद्भाववतीनां तु भगवदीक्षणमात्रेणैव कामभावजननात्तासामिन्द्रियादिषु तद्व्यापारसत्त्वात् क्षणमात्रमप्येताः स्थातुं न शक्नुवन्तीति, तथावस्थायां तादृगीक्षणापेक्षायां तस्यैव स्वरूपभावनं चक्रुः, नो चेत्तद्विना बलराहित्येन विरहसामयिकं जीवनमेव न

सम्भवेत्, तथा सति तावदीक्षणमात्रेणैव तासां जीवनमुचितमिति भावः । अत एव 'त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणे'त्यभिप्रायेण **नयनं मधुर**मित्युक्तम् । अथवा । नयनमिति जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । तथा सति स्वामिनीनां कटाक्षादीन्यलससंवलितानि भावरूपाणि प्रियावलोकनरूपाणि भगवन्नयने प्रतिबिम्बितानि तद्भावपूर्वककटाक्षावलोकनानुसन्धानेन मधुरत्वप्रतीतिरित्यपि सुष्ठूक्तिः । अत एव 'शश्वत्प्रियासितापाङ्गे'त्यत्र तथैव निरूपणादिति भावः । यद्वा । नयतीति नयनं, तेन सर्वान् लीलासृष्टिस्थान् भजनानन्दानुभवार्थं स्वरूपानन्ददानार्थं च लीलामृतसमुद्रादुद्धृत्य तदनुभवं कारयित्वा नेत्रद्वारेण पुनस्तत्रैव तथा लीनान् करोतीति फलितमित्यर्थः । अत एव 'प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षण'मिति ताभिर्गीतम् । अथवा । **स्वस्य** सन्नियोगशिष्टत्वेन तावन्मात्रं सर्वं हृदि कृत्वा **नयनं मधुर**मित्युक्तम् ॥ एवं नयनशोभाजनितमाधुर्यं निरूप्य हास्यशोभाजनितमाधुर्यं निरूपयन्ति **हसितं मधुर**मिति । एतद्भाववतीनां मानसस्य त्रिगुणात्मकत्वेन निरूपणाद्भगवानपि प्रेमहासावलोकनपूर्वकैस्त्रिभिः कृत्वा तद्धरणं करोतीति तदाक्षिप्तमनाः सत्यः स्वप्रेष्ठमपि नालोकितवत्यस्तावत्कालं कथमपि वहन्त्यस्तद्धसितस्य माधुर्यं स्वस्वास्थ्यहेतुतया सम्प्रति निरूपयन्ति । तथा सति तद्धर्मपुरःसरत्वेन तद्धाससापेक्षकमाधुर्यावलोकनेनैव जीवनसम्भावना, नान्यथेति भावः । अत एव 'उदारहासद्विजकुन्ददीधिति'रिति लीलोपयोगित्वेन निरूपितम् । यद्वा । भगवतः सर्वदा लीलापरवशत्वात्तत्तद्भक्तभावानुकूलत्वेनैव स्थितिश्चोच्यते । तेन तत्तद्भावानुरूपहास्योक्तिरपि निश्चीयते । तस्मादेतासां वियोगभावजनितहास्यप्रार्थनायां तद्धसितस्य जीवनसम्पादकत्वात्सुधारूपमाधुर्यं प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । **स्वस्य** तदास्यरूपत्वाद्धासस्य तदाधारकत्वेन प्रतिक्षणं स्वामिनीविषयकमपि तदनुभूय तत्सम्बन्धेन द्विगुणितमाधुर्यं भावयन्तीति **श्रीमदाचार्यै**स्तावन्मात्रमपि सर्वं हृदि धृत्वा **हसितं मधुर**मित्युक्तम् ॥ एवं हास्यजनितमाधुर्यं निरूप्य हृदयमाधुर्यं निरूपयन्ति **हृदयं मधुर**मिति । तिरोधानदशायामपि भगवानेतासां हृद्येव स्थितः, न त्वन्यत्र, नो चेत्, तासां लीलाभावमेव न सम्भवेदतोऽन्यत्रापि स्थितिः, परं भावरूपेणात्रैव

ज्ञायते । किञ्च, धर्मसहित एव हृदयारूढो जातो, न तु केवलं धर्मः, तस्मिन् समये तद्धृदयसम्बन्धमात्रेणैव तथैवोक्तमित्यभिप्रायो ज्ञापितः । यद्वा । रसोद्बुद्धदशायामपि विपरीतानुकरणत्वोक्त्या तद्धर्मान् स्वस्मिन्नपि स्थापितवत्यः, स्वधर्मास्तास्वेव स्थापयन्ति इति विशेषतः परस्परं हृदयोपगूहनं जातमिति तथैवोक्तम् । तथा सति तद्भावानुकृत्यालिङ्गनपूर्वककृतिमत्त्वादिधर्मसहितत्वेन हृदयं मधुरमेव प्राप्तमिति भावः । अथवा । हृदय एव स्वामिनीभावनिरूपकत्वेन भगवानपि स्वस्मिस्तद्धर्मान् संस्थाप्य तद्भावमङ्गीकरोति । तथा सति सर्वभावप्रपत्तावेताभिस्तद्भावात्मकं हृदयं मधुररूपेणैवानुभूतमिति भावः । अथवा । **स्वस्य** भगवदात्मकत्वेन स्वामिनीभावसन्नियोगशिष्टत्वेन च सर्वदोभयरसात्मकं हृदयं चानुभूय **मधुर**मित्युक्तम् ॥ एवं हृदयमाधुर्यं निरूप्य गमनमाधुर्यं निरूपयन्ति **गमनं मधुर**मिति । भगवतो भावात्मकत्वाद्भावानुकरणकृतिमत्त्वाच्च लीलोपयोगिनीनां हृदयदेशे भावरूपेणैव गमनं करोतीति सर्वत्र गमनशील एव भवति । अत एव तद्भाववतीनां हृदये भावानुकूललीलाविष्करणार्थं मानादिदोषदूरीकरणार्थं च तत्तद्भावरूपेण गमनं, तत्रापि रसानुभावकत्वेन तदनुकूलभजनानन्ददानेन वा गमनं तथैवोक्तमिति भावः । अथवा । यदैतासां परित्यज्यान्यत्र वनान्तरमपि गच्छेत् तदा द्रुमलतादीन् ता एव पृच्छन्ति । अत्रैव समागतोऽयं नन्दसूनुर्भवद्भिर्दृष्टश्चेन्नः सूचनीय इत्यर्थः । नो चेत्, कथं पदपङ्क्तिर्भूमौ दृश्यत इति तद्दर्शनानां मनोनुरञ्जकत्वेन **गमनं मधुर**मित्युक्तम् । तथा सति सर्वथेदानीमयमपि यत्र कुत्र वा हर्षादिपूर्वकं गमनं प्रापयिष्यतीति भावः । यद्वा । तत्सन्नियोगशिष्टत्वव्यतिरेकेणापि विप्रयोगपुष्टीकरणेऽप्यसमर्थः स्यादतो भावनायां साक्षात्स्पर्शाभावादाविर्भूतलीलायां गतिर्गमनमिति तत्प्राप्तिः सूचिता । तथा सति संयोगरसानुभवकर्तॄणां विप्रयोगरसस्य तत्पूर्वाङ्गत्वात्तेन विना तदसम्भवात्तत एवातिप्रियत्वेन माधुर्योक्तिरिति भावः । अथवा । **स्वस्य** भगवत्सहकारिगमनशीलत्वेन यत्र यत्र भगवानागच्छति तत्र तत्रैव अन्तः स्वयमपि स्थितः सन् तादृशीनां हृदि गमनपूर्वकमाधुर्यं चानुभूय **गमनं मधुर**मित्युक्तम् ॥ एवं गमनमाधुर्यं निरूप्य धर्मित्वेन च माधुर्यं निरूपयन्ति

मधुराधिपतेरखिलं मधुरमिति । भगवतो रसात्मकत्वात्तल्लीलाया अपि रसात्मकत्वं, यथा स्वरूपेऽनुभवादीनां भावनापर्यवसायित्वं, तथा लीलायामपि ज्ञापयितुं तास्ता अनुचक्रुरित्युक्तम् । तेन स्वरूपस्य लीलात्मकत्वात्तदधीनत्वाच्च सन्नियोगशिष्टत्वादपि यत्र यत्र लीला भवति तत्र तत्र स्वरूपमप्युद्बुद्धं भवतीति निर्गलितार्थः । यद्वा । यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्तीति न्यायेन गुणानां माधुर्येणैव निरूपणत्वात्तदधिष्ठातर्यपि माधुर्यवाचकत्वे किं वाच्यमिति कैमुतिकन्यायः प्रदर्शितः । तथा सति **मधुराधिपते**र्भगवतो **यदखिलं** लीलात्मकं स्वरूपात्मकं वा तत्सर्वं **मधुर**मेव भावनीयमिति दिक् । अथवा । स्वस्य सन्नियोगशिष्टत्वेनैव स्वरूपात्मकत्वं लीलात्मकत्वं च बोधयन्स्वकीयान्प्रति तादृग्भावपरवशत्वादतिकरुणत्वेन तथैवोक्तवानिति भावः । अत एव ‘तल्लीलाप्रेमपूरित’ इति **सर्वोत्तमे प्रभुभि**र्नाम निरूपितम् ॥१॥

एवं लीलानुभावज्ञाः सात्त्विकादिगुणान्विताः ।
पुनस्तद्गतमाधुर्यभावनं कर्तुमुद्यताः ॥ १ ॥

तथैव **श्रीमदाचार्या**स्तासां भावं विभाव्य च ।
विप्रयोगरसं प्राप्य संगतास्तदधीनताम् ॥ २ ॥

वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥

वचनं मधुरमिति । भगवद्वचनं भक्तानामाकारणार्थं जातमिति यदैव ताभिः श्रुतं तदैव गृहादिकं सर्वं त्यक्त्वा शीघ्रतया तद्भावाधीनत्वेनैव यत्र भगवांस्तिष्ठति तत्रैव ताः समागच्छन्तीति पुनः प्रश्नानुकरणकृतिमत्त्वेन तद्वचनानां मधुरत्वप्रतीतिरिति तथैवोक्तम् । यद्वा । भगवता निषेधव्यतिरेकेणापि यानि वाक्यानि प्रियरूपेणैवोक्तानि तान्येव मधुराणीति वा । तथैव बोधनार्थं तदधिकारसंपत्तावपि तैरेव प्रार्थनं कृतवत्य इत्यपि सूचितम् । तथा सति तद्व्यतिरेकेणासां जीवनसम्भावनैव नास्तीति भावः प्रतिफलितः । अत एव ‘संरम्भगद्गदगिरो ब्रुवतानुरक्ता’ इत्युक्तम् । अथवा । स्वस्य सन्नियोगशिष्टतासम्पादकधर्मवत्त्वेन तासां विलासात्मकं लीलात्मकं हृद्यनुभूय

तथैवोक्तम् ॥ एवं वचनमाधुर्यं निरूप्य चरितमाधुर्यं निरूपयन्ति **चरितं मधुर**मिति । भगवतश्चरित्रमपि पूतनासुपयःपानादिकं तत्तल्लीलानुकरणपूर्वकं भगवति हृद्याविर्भूते तदात्मकत्वात्तदनुकरणं शक्यमिति तद्भावनया तत् कृतवत्यः पश्चात् तेन चरितावगाहकरसात्मकमाधुर्यं भावयन्तीति भावः । यद्वा । ‘दावाग्निं पश्यतोल्बण’मिति वाक्यात्तादृशीनामतिभीतानां तल्लीलावेशवतीनां विरहसामयिकं सर्वं तादृशमेव ज्ञायते । यत एतादृशीनामेव दावाग्निदर्शनं नान्यासामिति तादृशेपि समये जीवनाभावमालक्ष्य तत्प्रतीकाररूपमाधुर्यं प्रार्थयन्तीत्यर्थः । तथा सति जीवनसम्भावनापूर्वकमाधुर्यावगाहकत्वेन लीलानुकरणमिति भावः । अथवा । स्वामिनीनां तान्येवातिप्रियाणि यानि भगवता बाल्यानुकृतिमत्त्वेन रसात्मकानि कृतानि चरितानि तान्यपि मनस्यनुभूय ताभिस्तथैवोक्तमिति भावः । अथवा । स्वस्य तदात्मत्वात्तल्लीलावलोकनत्वाच्चरितानुगतमाधुर्यविलासादिकं विरहरसापन्नत्वेनैव प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं चरितमाधुर्यं निरूप्य वसनमाधुर्यं निरूपयन्ति **वसनं मधुर**मिति । स्वामिनीनां कटाक्षावलोकनादिभावपरिपूर्णस्योद्बुद्धरसात्मकस्य भगवतो लीलामृतसमुद्रत्वेनोच्छलिततरङ्गत्वादाच्छादकशक्तिमत्त्वेन पीताम्बरधारणं त्वावश्यकमिति तद्वेष्टितत्वेनैव रसाधायकत्वं ज्ञायते । अन्यथा तादृशोद्बुद्धरसात्मकस्वरूपं निरीक्ष्य विमोहिता एव स्युः, लीलाऽपि न स्यादतोपि तद्ग्रहणं युक्तमेवेति तत्साहायकत्वेनैव रसप्राप्तिः सूचितेति भावः । तदेव मधुरमिति प्रार्थनायां ताभिस्तथैवोच्यत इत्यर्थः । अत एव, ‘कनककपिशं वासो बिभ्र’दित्युक्तम् । अथवा । स्वस्य तदात्मकत्वेन तादृशोद्बुद्धरसात्मकदशायामपि तदपेक्षणीयत्वात्पूर्वोक्तमपि सर्वं हृदि कृत्वा तथैव प्रार्थनं कृतमिति भावः । अत एव ‘मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषा’विति ॥ एवं वसनमाधुर्यं निरूप्य वलितमाधुर्यं निरूपयन्ति **वलितं मधुर**मिति । भगवतो गोपालैः सह वनगमनं तु प्रत्यहमिति गाश्चारयन्निकुञ्जगह्वरादीन्वीक्ष्य, तान् गोचारणार्थं वनान्तरे प्रेषयित्वा यद्गोवत्सादिकं तु तत्रैवास्तीति तदपि विज्ञापयित्वा स्वयं विश्रामं करोति । तत्रापि सख्यादिप्रेरणया सर्वदा तद्भावाधीनत्वात्तद्विप्रयोगजनितखेददूरीकरणार्थं क्रीडादिकमपि

करोतीति तादृशीनां तत्समय एव दानावसर इति सूचितम् । अलस इति शेषः । तथा सत्यलसवलिताद्धि कटाक्षाणां माधुर्यं स्मृत्वा तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । सर्पमणिनृत्यन्यायेनापि रसवशात्तद्भावपुरःसरो भूत्वा तादृशानुकरणपूर्वकं नृत्यं कुर्वन् वलितरूपं जातमित्यर्थः । तेन त्रिभंगललितस्वरूपविशिष्टमाधुर्यादिकमनुभूय ताभिस्तथैवोक्तमिति भावः । यद्वा । स्वस्य तत्स्वरूपात्मकत्वेन तत्तद्रसानुभवकर्तृत्वेन सर्वदा सन्नियोगशिष्टत्वावगाहकधर्मत्वेन च तादृशमेव माधुर्यं प्रार्थ्यत इति भावः ॥ एवं वलितमाधुर्यं निरूप्य चलितमाधुर्यं निरूपयन्ति **चलितं मधुर**मिति । भगवतश्चलनं, तदपि सायमागमनसमये कुन्ददामकृतकौतुकवेषत्वेन गवां पश्चाद् गोपैः सह हासपूर्वकलीलामाकलयन् नृत्यरसानुकूलकशक्तिमत्त्वेन तथा भावसम्पादकत्वेन च तथा भवतीत्यर्थः । तेन तादृशीनां मनोभिलाषादिकं मन्थरगतिचलनेनैव सिध्यतीति चलनविशिष्टमाधुर्यं प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । स्वामिनीनां भावपूर्णकटाक्षावलोकनेन तादृशोद्बुद्धरसात्मकः सन् तदैव तासां मनोरथादिकमापूरयन् तादृग्दर्शनलाभसंतुष्टतया मुहुर्मुहुस्तादृशमाधुर्यावलोकन कुर्वन् व्रजं प्रविशतीत्यर्थः । तथा सति अन्तरङ्गभक्तानां तादृशानुभवकर्त्रीणामन्योन्यविलासादिकृतमाधुर्यभावनं तु युक्तमेवेति भावः सूचितः । अथवा । स्वस्य तत्सन्नियोगशिष्टत्वापन्नत्वेनोभयरसानुभवकर्तृत्वेन प्रतिक्षणं चलनविशिष्टमाधुर्यं प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं चलितमाधुर्यं निरूप्य भ्रमितमाधुर्यं निरूपयन्ति **भ्रमितं मधुर**मिति । भगवतो बालदशायामपि प्रतिस्वामिनीभावपूरकत्वेन तत्तन्मनोरथपूरणार्थं तासां गृहे क्रीडाव्याजेन स्वयमभिसरणं करोतीति रसशास्त्रे तथैवोक्तत्वादित्यर्थः । तेनालम्बनविभावाधीनत्वेन रसस्योक्तत्वात्पुष्टीकरणार्थं तथाकरणमिति भावः । यद्वा । भगवतोऽनन्तशक्तिमत्त्वान्मातृचरणादीनां निकट एव स्थितः सन् सर्वाज्ञातरूपत्वेन समानशीलव्यसनवतीनां गृहेषु गत्वा यत्नादिकं कुर्वन्नपि हस्तेन शिक्यमवलम्ब्य प्रत्यहं दधिनवनीतादिकं चोरयतीत्यर्थः । तथा सति सार्वदिकरसानुभवकर्त्रीणां तथानुभववत्त्वाद्वैतच्चौर्यविशिष्टमाधुर्यभावनं तु युक्तमेवेति भावः । अत एव 'प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छ'दिति ॥ एवं

धर्मविशिष्टं माधुर्यं निरूप्य धर्मिविशिष्टमाधुर्यं निरूपयन्ति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मिति । न केवलं धर्माणामेव प्रार्थनमुचितं, किन्तु तद्विशिष्टधर्मिण एवेति तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहित्वेन लम्बकर्णमानयेत्यत्र तथैवानुभवसत्त्वात् तथैवोच्यत इत्यर्थः । तथा सति माधुर्यविशिष्टषड्गुणैश्वर्यात्मकस्य भगवतो मधुराधिपतेर्यदखिलं तत्सर्वं तत्स्वरूपमाधुर्यवद्भावनीयमिति भावः । अत एव 'नवीनमधुरस्नेहः प्रेयसीप्रेमसञ्चय' इति ॥ २ ॥

एवं लीलात्मकास्तास्ताः पुनस्तास्ता विचेतसः ।
कुर्वन्तीति रसावेशात् कालक्षेपाय सर्वथा ॥ १ ॥
तद्वदेव सदा **श्रीमदाचार्या** भावतत्पराः ।
माधुर्यानुभवज्ञास्ते तल्लीलां वर्णयन्ति हि ॥ २ ॥

वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥

वेणुर्मधुर इति। भगवताधरसुधाभोगोपभोगित्वेन स अधर एव स्थापितस्तत्रापि हस्तयुगलचालनेन तत्साहाय्यकतया स्वयं रसाविष्टो जात इत्यर्थः । तेन मयूरानुकरणपूर्वकनृत्यकरणतदधीनत्वेनैवेति ज्ञापनायापि माधुर्यानुभवपूर्वकं तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरय'न्नित्युक्तम् । अथवा । गोचारणक्रीडायामपि वेणोरावश्यकत्वाद्गवामाह्वानादिकं तु तेन विना न संभवतीत्यर्थः । किञ्च, संकेतस्थले सखीनामाकारणार्थं नादमयस्पष्टीकरणार्थं च तासां हृदि प्रविश्य वेणुरेव सर्वं सूचयतीत्यर्थः । तथा सति भगवान्वेणुव्यतिरेकेण रासमेकं विहाय किमपि कर्तुं न शक्नोतीति लीलायां वेणुकर्तृकमाधुर्यं भावयन्तीति भावः । अत एव वेणुरपि सहायतां प्राप्स्यतीत्युक्तमप्**याचार्यवर्यैः** फलप्रकरणोपक्रमे । यद्वा । स्वस्य भगवद्दास्यस्वरूपत्वेन तदाधारकवेणुरूपत्वेन च तयोः सन्नियोगशिष्टत्वात्तत्कृतमाधुर्यानुभवं कुर्वन्तीति भावः ॥ एवं वेणुमाधुर्यं निरूप्य रेणुमाधुर्यं निरूपयन्ति **रेणुर्मधुर** इति । यच्चरणरजो ब्रह्मादीनामपि दुर्लभं, तदर्थं तपः कुर्वन्ति, परन्तु नाद्यापि प्राप्तम् । किञ्च, लक्ष्मीरपि तद्रजःकामनयान्यसुरप्रयासशङ्कया

वा तत्प्राप्त्यर्थमेव माहात्म्यज्ञानपूर्वकभक्तिभावात्तच्चरणमेवाश्रयतीत्यर्थः । तथा सति भगवच्चरणानामरविन्दपदोपादानत्वात्परागोपलक्षकरजोमाधुर्यं प्रार्थयन्तीति भावः अत एव 'गोविन्दांघ्र्यब्जरेणव' इत्युक्तम् । अथवा । भगवतः स्वामिनीभावाधीनकृतिमत्त्वेन तच्चरणरजःकामना तु सर्वदैव तिष्ठतीति तद्भावोपलब्धौ तादृशीभिस्तथैवोक्तमित्यर्थः । तेनोभयचरणरजःकामनयैव तादृशीनां जीवनसंभावनम्, नान्यथेति भावः । यद्वा । स्वस्य तदात्मकत्वादुभयसंबन्धसंपादकत्वेनोभयत्रापि परस्परं चरणरजःकामनापूर्वकमाधुर्यं निरूपयन्तीति भावः ॥ एवं रेणुमाधुर्यं निरूप्य पाणिमाधुर्यं निरूपयन्ति **पाणिर्मधुर** इति । भगवता गोवर्धनधारणं तु गोकुलरक्षायै कृतं, गोकुलरक्षणं तावदनन्यस्वामित्वेनेत्यर्थः । तेन भक्तवात्सल्यानुग्राहकशक्तिमत्त्वेन गोपगोपीगवामपि तदन्तःस्थापयित्वा छत्राकमिव तदुद्धरणं करोतीति भावः । तदा जीवनसंपादकत्वेन च तन्मुखावलोनकपूर्वकमाधुर्यं पाणावेवेति ज्ञापनायापि तथैव प्रार्थयन्तीत्यर्थः । अनेन भगवतोऽनन्यगोकुलस्वामित्वं सूचितमिति भावः । यद्वा । स्वामिनीनां चूडाबन्धनादिकृतिमत्त्वेन केशप्रसाधनं तु पाणिकृतमेवेति तत्र अग्रे पुष्पाणि संस्थाप्य स्वयमेव सर्वं करोतीत्यर्थः । तथा सति तादृशीनां तादृक्पाणिकृतमाधुर्यावलोकनं तु युक्तमेवेति भावः । अथवा । स्वस्य भगवत्सन्नियोगशिष्टतानुकूलशक्तिमत्त्वेन तत्सख्याधिकरणत्वात्तत्सामयिकं पाणिकृतमाधुर्यं प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं पाणिमाधुर्यं निरूप्य पादमाधुर्यं निरूपयन्ति **पादो मधुर** इति । भगवति जीवैर्नमनातिरिक्तं कर्तुं न शक्यमिति तादृशनमनाधिकारशक्तिमत्त्वेन तादृशभावोपलब्धौ तदात्मकाः सत्यः स्वशिरसा माधुर्यविशिष्टपादतलस्पर्शनं कुर्वन्तीत्यर्थः । अत एव 'सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूल'मित्याद्युक्तयः । तेन तत्संबन्धव्यतिरेकेणासां जीवनसंभावनाभाव इति भावः । यद्वा । अविचार्य प्रियत्वकरणं तु दासानामेव धर्मों, नान्येषां, तेन तादृशवनविहारजनितश्रमनिराकरणार्थं भगवतः पादसेवनं त्वावश्यकमिति तथव प्रार्थयन्ति इत्यर्थः । तथा च स्वधर्मावबोधकशक्तिमत्त्वेन दास्यानुकरणपूर्वकं माधुर्यविशिष्टपादसेवनं कुर्वन्तीति भावः । अथवा । स्वस्य तदास्यरूपत्वेन तदात्मकत्वात्तादृक्श्रमादिकं सर्वं विज्ञाय तादृशीभिः सह तथैव सेवनं भावयन्ति इति भावः ॥ एवं पादमाधुर्यं निरूप्य नृत्यमाधुर्यं निरूपयन्ति **नृत्यं मधुर**मिति । यदि ताः सर्वथा भगवद्व्यतिरेकेण स्थातुं न शक्नुवन्ति तदा भगवांस्तासां तादृशोत्कटभवं वीक्ष्य तादृशीभिः सहोद्बुसहोद्बुद्धशृङ्गाररसात्मकस्वरूपेण तासां स्वरूपानन्ददानार्थं तन्मण्डलेन वेष्टितत्वेन नृत्यं कुर्वन् रासलीलां करीतीत्यर्थः । तथा सत्यन्योन्यमुखावलोकनं गानपूर्वकमाधुर्यविशिष्टनृत्यानुकरणं प्रार्थयन्ति इति भावः । अथवा रसावेशदशायामपि यथा यथा हस्तकादिभावं प्रदर्श्य भगवान् नृत्यं करोति तथैता अपि पार्श्वभाग एव स्थिताः सत्यः पूर्णरसात्मकं नृत्यं कुर्वन्तीत्यर्थः । तेन मध्ये रसावेशभरेण काश्चिद् हृष्टरोमाः सत्यः भगवतश्चुम्बनादिकं कुर्वन्तीति भावः । यद्वा । रस एव रासस्तल्लीलाया एव फलदाननिश्चयात्स्वस्य तादृग्लीलानुभवपूर्वकरसात्मकत्वेन माधुर्यविशिष्टतादृशं नृत्यं भावयन्तीति भावः ॥ एवं नृत्यमाधुर्यं निरूप्य सख्यमाधुर्यं निरूपयन्ति **सख्यं मधुर**मिति । सख्यं तु समानशीलव्यसनेष्वेव, नान्यत्रेति, अत एवार्जुनादयो भगवदभिप्रेतकार्यकरणादविचार्य प्रियत्वकरणाद्वा त एवान्तरङ्गसखाय इत्युच्यन्ते । भगवानपि तदभिप्रेतकार्यकरणत्वात् स्वस्मिन् तादृशसखित्वं मन्यते । तथा सति परस्परमनोरथाभिपूरकत्वेनैता अपि तद्भावानुकूलकमाधुर्यविशिष्टसख्यभावं प्रार्थयन्तीत्यर्थः । अत एव 'सखे दर्शय संनिधि'मित्येव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । वयं तु ते प्रियाः, अस्मद्रक्षणं तु त्वया कर्तव्यमेव, नो चेन्नाथत्वमेव न संभवतीति तथैव संपादयेति प्रार्थना । अतोऽस्मदङ्गीकारार्थमेव व्रज एवाविभूत इति प्रयोजनवशात् सखिरूपेणास्मान्पालयतीत्यर्थः । किञ्च । यदि चेत् पालनं न करिष्यसि तदास्माकं प्राणा अपि स्थिरा न भविष्यन्तीति त्वदवतारप्रयोजनं व्यर्थमेव भविष्यतीत्येतावत्सर्वं विचार्यैव करणीयमित्यर्थः । तथा सति 'वीर योषितां सख उदेयिवान्सात्वतां कुल' इत्याद्युक्तयस्तथैवार्थं द्योतयन्तीति भावः । यद्वा । स्वस्य साक्षात्स्वरूपात्मकत्वेन समानशीलव्यसनत्वेन च तादृशीनां प्रार्थनादिकं संवीक्ष्य स्वयमपि तादृशमाधुर्यविशिष्टसख्यं प्रार्थयन्ति इति भावः ॥ एवं धर्मविशिष्टमाधुर्यं निरूप्य धर्मिविशिष्टमाधुर्यं निरूपयन्ति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मिति ।

लीलानां धर्मात्मकत्वात्तदात्मकाः सत्यस्तदानन्दानुभवं कृत्वा ताभिरेव भगवत्स्फूर्तिर्जायत इति निश्चित्य तास्ता माधुर्यरूपेणैवानुभूय यत्रैतादृशं माधुर्यं यस्य तस्य मधुराधिपतेर्यदखिलं लीलाचरित्रावयवादिकं तत्सर्वं मधुरमेव भावयन्तीति भावः । **आचार्या** अपि तादृशानुकरणकृतिमत्त्वेन विप्रयोगदशायां तथैव विभावयन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥

एवं पुनः प्रियाः सर्वा मिलित्वा यमुनातटे ।
भगवद्गीतमाश्रित्य तदेवाद्यानुवर्णयन् ॥ १ ॥
तथैव **श्रीमदाचार्या** विप्रयोगनिरूपणात् ।
तत्पुष्टीकरणाच्चात्र तत्स्वयं चानुवर्णयन् ॥ २ ॥

गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४॥

गीतं मधुरमिति । गीतादि कामरसोद्बोधकं, तच्च स्त्रीणां विशेषत इति कामभाववतीनां तु ततोधिकं तदुद्बोधकं भवतीत्यर्थः । तथा सति स्वयमपि गानं कुर्वन्त्यः परस्परं माधुर्यरसात्मकं वेणुकूजितगानं प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव ‘निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धन’मित्याद्युक्तम् । अथवा । गानं तु भगवत्कृतमेवेति तत्कर्तृकस्वरूपस्फूर्तौ तदालम्बनविभावत्वेन कामभावत्वेन च भगवन्तमेव प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव ‘गायन्तं स्त्रियः कामयन्त’ इति श्रुतेः । यद्वा । सायमागमनसमयेपि स्वामिन्यो व्रजाद्बहिरेवागत्य तत्प्रतीक्षां कुर्वन्त्यस्तिष्ठन्तीति यदा पुनर्दूरत एव यथा यथा वेणुकूजितगीतं शृण्वन्त्यस्तथा तथोद्बुद्धशृङ्गाररसात्मकस्वरूपनिरीक्षणार्थं निकट एव समागच्छन्तीत्यर्थः । तदा भगवानपि तद्भावात्मकस्वरूपनिरीक्षणार्थत्वेन तत्तन्मनोरथानुकूलकनृत्यं कुर्वन् गोपैः सह सांकेतिकं सर्वमेव सूचनार्थं तथा गीतं श्रावयतीत्यर्थः । तथा सति गीतकर्तृकसर्वव्यापारेणैव तादृशीनां फलानुभूतिर्भवतीति भावः । अथवा । स्वस्य तदात्मकत्वात्तदनुभवयोग्यतासंपन्नत्वेन मध्यस्थतया तदनुगुणकार्यकर्तृत्वेन च प्रतिक्षणं तत्तल्लीलायां माधुर्यविशिष्टगीतं प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं गीतमाधुर्यं निरूप्य पीतमाधुर्यं निरूपयन्ति **पीतं मधुर**मिति । भगवतः पानं हि तत् । गोष्ठ एव स्वयं स्थितः सन्

गोपवेषदुग्धादि दोहनं कारयित्वा गोचारणात्पूर्वमेव तान्पाययित्वा स्वयमपि पीत्वा पश्चाद् वनगमनादिकं करोतीत्यर्थः । किञ्च, ये तृणादिकं न भक्षयन्ति, सर्वथा तदाधारत्वेनैव स्थिता भवन्तीति तान्वत्सानपि स्वहस्तेनैव पयः पाययतीत्यर्थः । तथा सति बाल्यानुकृतिमत्त्वेन भगवता यत्कृतं दुग्धपानादिकं तदेव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । संकेतस्थले स्वामिनीभिः सह विहारादिकं कुर्वन् तादृशोद्बुद्धरसात्मकत्वेन परस्परकटाक्षाद्यवलोकनेनोत्कटरसपानं करोतीत्यर्थः । तेनेदानीं भगवद्व्यतिरेकेण स्थातुमशक्यत्वात्तदेव माधुयविशिष्टपानं भावयन्तीति भावः । अत एव ‘त्वदधरमधुरमधूनि पिबन्तं दृश्यसे पुरतो गतागत’मित्यादि **जयदेवो**क्तिरपि । अथवा । स्वस्य तदास्यरूपत्वेन तदाधारत्वात्तत्तल्लीलोपयोगितन्माधुर्यादिकं तत्सामयिकं प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं पीतमाधुर्यं निरूप्य भुक्तमाधुर्यं निरूपयन्ति **भुक्तं मधुर**मिति । भगवान् पुष्टिमार्गीयपदार्थानां भोगकरणार्थमेव प्रकटीभूतस्तस्माद्बाललीलायां क्रीडाव्याजेन स्वामिनीनां गृहे गत्वा तादृग्भावपरवशत्वेन तदाज्ञापूर्वकं यथा भवति तथा शिक्यस्थितानां पदार्थानां भोगं करोतीत्यर्थः । अन्यथा तदङ्गीकारं विना तेषां साफल्यमेव नास्तीति तास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव ‘अस्मदीयपदार्थानां भोगः कार्यस्तथैव ही’ति सर्वथा प्रपत्तिभावपूर्वकं निरूपितमित्यर्थः । अथवा । यज्ञपत्नीनां फलदानार्थमेव तत्र गत्वाग्रे बालकान् संप्रेष्य याचनरूपत्वेन तद्भावात्मकं तत्रत्यं सर्वमङ्गीकरोतीत्यर्थः । तत्रापि मुख्यायास्तदपेक्षयोत्कृष्टत्वेन साक्षादङ्गसंगत्वेन च तत्समर्पितभोजनादिकं भगवान्पुष्टिमार्गरीत्यैवाङ्गीकरोतीत्यर्थः । तथा सति सर्वात्मभाववतीनां तदुच्छिष्टोपभोगित्वेनैव जीवनसंभावना नान्यथैतदभिप्रायं ज्ञात्वा तास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । श्रीगोवर्धनसान्वादिषु स्थित्वा गोपबालैः सह क्रीडां कुर्वन् तत्प्रतीक्षापूर्वकं यथा भवति तथा मात्रा प्रेषितसख्यानीतभोजनादिकं तद्भावाधीनत्वेन सर्वान् भोजयित्वा रामेण सह स्वयमपि भोजनं करोतीत्यर्थः । किञ्च । महेन्द्रयागनिराकरणत्वेन निजानां निरोधकरणार्थमेव स्वाज्ञया नन्दादीन्प्रबोध्यानेकविधान्पाकान्कारयित्वा स्वयं तद्रूपीभूत्वा तत्समर्पितं सर्वं भुनक्तीत्यर्थः। तेन सर्वात्मभाववत्यस्तास्तादृशरसात्मकस्वरूपानुभवकरणत्वेन

तत्तल्लीलात्मकमाधुर्यविशिष्टभुक्तं भोजनमिति प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । स्वस्य तदास्यरूपत्वात्तद्भोक्तृत्वं स्वस्मिन्नेव प्रतिफलतीति विप्रयोगानुभवकरणत्वेन पूर्वानुभूतभुक्तं स्वयमपि भावयन्तीति भावः । अत एव 'श्रीकृष्णास्यं यज्ञभोक्ते'ति **सर्वोत्तमे** नामद्वयमुक्तम् ॥ एवं भुक्तमाधुर्यं निरूप्य सुप्तमाधुर्यं निरूपयन्ति **सुप्तं मधुर**मिति। यशोदोत्संगलालितस्य भगवतस्तद्धस्तलालनेनैव सर्वदा शयनमुचितं, तत्रापि स्तनपानदानापेक्षितत्वात्तद्व्यतिरेकेण शयनादिकं न करोतीत्यर्थः । अत एव 'तमङ्कमारूढमपाययत् स्तन'मित्याद्युक्तम् । अथवा । प्रातरारभ्य सायमागमनपर्यंतं गोचारणादिकं कृत्वा तत्तल्लीलाविहारजनितश्रमनिराकरणार्थं स्वामिनीनां भवन एव गत्वा तादृशभावात्मकत्वेन तल्लालनपूर्वकं शयनं करोतीत्यर्थः । तथा सति तासां दिवाविरहखिन्नमानसानां भगवच्चरणारविन्दसंबन्धेनैव तापशान्तिर्नान्यथेति तास्तथैव शयनं प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । वन एव विहारादिकं कुर्वन् बालान्प्रति तथैवोक्तवान्, गोचारणादिकं भवद्भिरेव कर्तव्यं, मया तु श्रमवशात् कुञ्जान्तरे यत्किंचित् विश्राममात्रं क्रियत इति तदनुज्ञया तेपि तथैव कुर्वन्तीत्यर्थः । ततः संकेतस्थले स्वानुगुणत्वेनैव ता अपि समागच्छन्तीति तत्कृतभावपूर्वककटाक्षावलोकनादिभिः सर्वाङ्गजनितश्रमं निवार्य भगवान् शयनं करोतीत्यर्थः । तथा च सति तालवृत्तादिकं कुर्वत्यः स्वाभिलषितमनोरथादिकं यथा भवति तथा तल्लीलानुस्मरणवशात्तद्भावयन्तीति भावः । अथवा । प्रातरेव किंचिदुन्मीलदुन्नतभ्रूभङ्गकटाक्षावलोकनादिना स्वामिनीनामथ च तथाभाववतीनामतीवसुखजनकत्वात्तत्तद्रसानुभवकत्वेन तदेव प्रार्थयन्तीति भावः । तेन तादृगुन्मीलितनयननलिनदर्शनव्यतिरेकेण तासां जीवनासंभवात् नेष्टापत्तिरिति भावः । यद्वा । स्वस्य साक्षाद्रसात्मकसन्नियोगशिष्टत्वेन तत्र सानुभवकत्वेन वाधुना विप्रयोगदशापन्नत्वेन पूर्वानुभूतं स्मारंस्मारं तथैव प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं सुप्तमाधुर्यं निरूप्य रूपमाधुर्यं निरूपयन्ति **रूपं मधुर**मिति । भगवतो रूपं रसात्मकं, 'रसघन' इति श्रुतेः । तत्रापि तत्तद्रसानुभवकर्तृत्वेन स्वयं तत्तद्रूपो भवतीति 'रङ्गं गतः साग्रज' इत्यत्र तथैव निरूपणात् । तथा सति स्वयं शृङ्गाररस एव स्थितः सन् तेषु तेषु तत्तद्रसानुभवं कारयतीति भावः ।

अत एव 'गोप्यः कामा'दित्याद्युक्तम् । अथवा । शृङ्गारो हि द्विविधः, संयोगविप्रयोगाभ्याम्, रसशास्त्रे तथैव निरूपणात् । तथा सत्यानन्दमात्रकरपादमुखोदरादिमत्त्वेनोभयरसात्मको भगवान् प्रतिपाद्यते । किंच । व्रजसीमन्तिनीनां उद्बुद्धशृङ्गाररसात्मकस्वरूपेणैवानन्दानुभवं प्रयच्छतीत्यर्थः । अत एव 'रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवती'ति श्रुतेस्तथैवोक्तत्वात् । अथवा । भगवान् शृङ्गारोद्बुद्धदशायां तदधीनत्वान्नृत्यादिकरणत्वेन भक्तानां रसोद्दीपनं कुर्वन् अधरस्थितवेणुकूजनं करोतीत्यर्थः । तथा सति व्रजदेवीनां भावपूरणार्थमेव तादृग्रसानुभवजनकत्वेन त्रिभङ्गललितरूपः स्वयमेव भवतीति भावः । एता अपि तादृक्स्वरूपदर्शनापेक्षायां विरहदशापन्नत्वेन सर्वथा जीवनसंभावनारहितत्वेन च माधुर्यविशिष्टत्रिभङ्गललितरूपं प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'दर्शनीयतिलको वनमाले'त्यत्र तथैव निरूपित**माचार्यैः**। यद्वा, रासलीलायां भक्तकण्ठावलम्बितनृत्यकरणत्वेन रसात्मकस्वरूपनिरूपणत्वात्तादृशीनां भावपूरणार्थं प्रभुस्तथैव करोतीत्यर्थः । तथा सत्येतासां तादृशमण्डलानुकरणकनृत्यकर्तृत्वेनाधुनापि साधनासाध्यत्वेन ताश्च मुहुर्मुहुर्माधुर्यात्मकं तद्रूपमेव भावयन्तीति भावः । अत एव 'तासां मध्ये द्वयोर्द्वयो'रित्युक्तम् । अथवा । स्वस्य सर्वदा सन्नियोगशिष्टत्वेन निरूपणत्वाद् भगवत्सहक्रीडाकरणत्वेनाधुना तादृग्भाववतीभिः सह विप्रयोगरसानुभवार्थं स्वयमपि तथा प्रार्थनं कुर्वन्तीति भावः ॥ एवं रूपमाधुर्यं निरूप्य तिलकमाधुर्यं निरूपयन्ति **तिलकं मधुर**मिति । भगवतो बाललीलायां मातृचरणादिभिर्लालनवशान्नेत्राञ्जनं कृत्वा भाग्यविशाले भाले रक्षार्थं वात्सल्यानुपूर्वकं यथा भवति तथा गोरोचनेन तिलकं क्रियत इत्यर्थः । तथा सति दर्शनोत्कण्ठितबुद्धीनां तेन विना प्राणधारणं न संभवतीति तास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । बाललीलायां भगवतः शृङ्गारादिकं तु गोपीजनैः क्रियत इति स्थलान्तरे नीत्वा स्वामिनीसाहित्येनैव यथा तथा भवति नान्यथेत्यर्थः । तस्माद्वस्त्रालंकारभूषितकरणानन्तरं स्वामिनीभिरेव भावपूर्वकं कटाक्षावलोकनं यथा भवति तथा नवकुङ्कुमेन कस्तूरिकया वा मकरपत्रिकातिलकं क्रियत इति भावः । एतासामपि तद्भावाधीनकृतिमत्त्वात्

तादृशकृतिव्यतिरेकेण जीवनं व्यर्थमिति ज्ञात्वा तास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा। स्वस्य भगवदात्मकत्वेन तद्भावात्मकत्वेन च तादृशलीलोपयोगित्वात्तत्सामयिकं सर्वं स्मृत्वैव तादृशीभिः सह मनसि भावयन्तीति भावः॥ एवं धर्मविशिष्टमाधुर्यं निरूप्य धर्मिविशिष्टमाधुर्यं निरूपयन्ति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मिति। यत्र धर्माणां माधुर्यमीदृग् भावपूर्वकं निरूपितम्, तत्र धर्मिमाधुर्ये किं वाच्यमिति कैमुतिकन्यायः प्रदर्शित इत्यर्थः । एतदेव सर्वं मनसि धृत्वा मधुराधिपतेरखिलं मधुरमित्येवोक्तं **श्रीमदाचार्यैः** ॥ ४ ॥

एवं स्वान्तःस्थितं भावं ताः पुष्टं कर्तुमुद्यताः ।
तास्ता लीलाः प्रकुर्वन्त्यः पुनर्गानं मुखे जगुः ॥ १ ॥
तथैव **श्रीमदाचार्या**स्तं पुष्टं कर्तुमुद्यताः ।
पुनः स्वान्तर्गतं भावं भगवद्भावसंश्रिताः ॥ २ ॥

करणं मधुरं हरणं मधुरं तरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥

करणं मधुरमिति । यदि भगवानेव तासां हृदि स्वयमेव तिष्ठन् बाह्यतिरोधानाकृतिकरणत्वेन लीलात्मकस्वरूपानन्ददानं न प्रयच्छेत्तदा ताभिः संयोगरस एवानुभूतो भवति, न तु विप्रयोगः, तदपेक्षया विना सोपि न पुष्टो भवतीत्यर्थः । तेनैतासां पूर्वं संयोगरसानुभवं कारयित्वैतत्स्वरूपानभिज्ञत्वेन पश्चात् तत्पुष्टीकरणार्थं तिरोधानलीलया विप्रयोगरसानुभवं कारयित्वापि पुनः संयोगरसाभिनिवेशे स्वयं तथा करोतीति भावः । अथवा । पुनराविर्भूय रासलीलाकरणत्वेन तासां तादृग्भावसंपादकत्वादलौकिककामप्राकट्येन कामरूपः स्वयमेवाविर्भवतीत्यर्थः। अन्यथा गानप्रलापादिराहित्येन रोदनप्राप्तानां जीवनसंभावनया तत्संभावनैव नास्तीति भावः । यद्वा । तास्वभिमानादिदोषकरणं तु भगवतैव कृतमिति, परन्तु दासधर्मत्वात्तास्तु स्वापराधमेव मन्यन्ते, न तु भगवत्कृतं, तथापि भगवत्कृतमेवेत्यर्थः । किञ्च । दैन्यानुकरणत्वेन साधनासाध्यत्वात् रोदनमेव तासां निरीक्ष्य स्वयमतिदयालुत्वेन संतुष्टः सन् तत्पूर्वोक्तदोषं स्वयं निवार्य पश्चात्तन्मध्य एवाविर्भावं करोतीति तदपि तत्कृतमेवेत्यर्थः । तथा सत्येतासां दैन्यभावसाधनत्वेनैव साक्षात्स्वरूपसम्बन्धानुभवो भवतीति नान्यथेति भावः । अत एव 'भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधन'मित्युक्त**माचार्यवर्यैः**। अथवा। स्वस्य साक्षाद्भगवत्स्वरूपात्मकत्वेन सर्वदा तद्रसपूर्णत्वेन च स्वस्मिन्विप्रयोगरसपोषणार्थमेव तदनुकरणत्वेन दैन्यं यथा भवति तथा करणविशिष्टमाधुर्यं प्रार्थयन्तीति भावः॥ एवं करणमाधुर्यं निरूप्य हरणमाधुर्यं निरूपयन्ति **हरणं मधुर**मिति । कुमारीणां वरदानप्रस्तावे जलक्रीडादिदोषनिवारणार्थमन्यभजननिवारकत्वेन स्वांगीकारपूर्वकशुद्धभावोत्पादनार्थं तासां वासांसि गृहीत्वा सत्वरमेव स्वयं नीपमारुह्य तथोक्तवान्, यदि भवत्यो दास्यश्चेत्तदा मदुक्तमेव करणीयं, अन्यथा तु न दास्य एव । तत्रापि जलाद्बहिरागत्य नमनपूर्वकं यथा भवति तथा यदि याचनं करिष्यथ तदाहमपि भवतीनां शुद्धभावं दृष्ट्वा दास्यामीत्यर्थः । तथा सति लौकिकानुरोधं परित्यज्य भगवदाज्ञाकरणत्वेन तास्तथैव कुर्वन्तीति भावः । तादृशानुकरणकृतिमत्त्वेन तल्लीलावलोकनत्वेन च तादृग्भावसंपादनार्थं विरहदशायां वस्त्राननुसंधानादेता अपि तथा प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । भगवतो गुणाः षड् व्यामोहका अपि सन्ति, तैरेव मनोहरणादिकं कृत्वा तत्र स्थित एव व्यामोहकरूपो भवतीत्यर्थः । तथा सति मनःक्षोभजनकत्वेन जीवनासंभावनत्वेन च तत्कृतप्रार्थनायां तथैव निरूपणादिति भावः । अत एव 'प्रणतकामदं पद्मजार्चित'मित्याद्युक्तम् । अथवा । स्वामिनीनां मानदशायामपि तद्विना स्थातुं न शक्यत इति तन्निराकरणार्थमेव तादृशकटाक्षावलोकनादिभिस्तद्धरणं करोतीत्यर्थः । तादृशशृंगारात्मकस्वरूपावलोकनत्वेन ता अपि मानादिकं त्यजन्तीति भावः । अत एव 'दृशि तु मदमानिनीमानहरण'मित्युक्तम् । अथवा । स्वस्य रसात्मकभगवत्स्वरूपसन्नियोगशिष्टत्वेन तत्तत्कार्यदर्शनानुकरणत्वेन च विरहानुभवकरणार्थं तादृशीनां भावं मनसि धृत्वा तथैव प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं हरणमाधुर्यं निरूप्य तरणमाधुर्यं निरूपयन्ति **तरणं मधुर**मिति। भगवान् भक्तानां ब्रह्मानन्दानुभवकरणार्थं वैकुण्ठदर्शनार्थं च पूर्वं तथैव तेषां मज्जनं करोतीति। पुनः स्वभजनानन्दप्रापणार्थमेव लीलासमुद्रे

निमज्य स्वेच्छया पुनस्तत्क्रीडाकरणार्थं तान् तारयतीत्यर्थः । तथा सति विप्रयोगलीलामृतसमुद्रमज्जनत्वेन भगवतस्तारकरूपत्वात्तास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । तॄ प्लवनतरणयोरिति धातोरुभयार्थकत्वात्संयोगविप्रयोगरसानुभवकर्तृत्वेन तादृशलीलामृतसमुद्रे पुनः पुनस्तन्मज्जनोन्मज्जनादिकं करोतीत्यर्थः । किंच । स्वयमपि तदधीनत्वादाधाराधेयभाववत्त्वाच्चानन्तशक्तिमत्त्वेन तथैव करोतीत्यर्थः । अत एव **प्रभुभिः** तथैवोक्तं **श्रीमद्गोकुलाष्टके** 'श्रीमद्गोकुलतारक' इति । क्रीडास्थानत्वात्तथैवोचितमिति भावः । अथवा । श्रीयमुनायां स्थितः सन् जलदोषात्मकमुरदूरीकरणत्वेन भक्तानां स्वस्यापि वा प्रतिबन्धनिराकरणत्वेन च तत्संबंधसंपादकत्वात्स्वयं तरति ता अपि तारयतीत्यर्थः । तथा सति मज्जनसमयानुकूलव्यापारकृतिमत्त्वेन भगवति निश्चयत्वात्तरणविशिष्टमाधुर्यं प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'यमुनानाविको गोपीपारावारकृतोद्यम' इत्युक्तम् । अथवा । स्वस्य साक्षात्तत्स्वरूपात्मकत्वात्तत्तल्लीलामृतसमुद्रमज्जनोन्मज्जनेन विप्रयोगरसानुभवं कुर्वन्तः **श्रीमदाचार्यवर्या**स्तदनुकरणत्वेन तथैव मनसि विभावयन्तीति भावः ॥ एवं तरणमाधुर्यं निरूप्य रमणमाधुर्यं निरूपयन्ति **रमणं मधुर**मिति । भगवान् गोचारणादिक्रीडाकरणार्थं गोपबालैः समानवयस्कैः सह लीलापरवशत्वेन प्रत्यहं वनगमनं करोतीत्यर्थः । तत्रापि सखामंडलीकरणत्वेन बाल्यरसानुभवं कर्तुं तत्तच्चरितानुसारेण तैः साकं रमणं करोतीति तत्तल्लीलास्मरणत्वेन विप्रयोगं कालक्षेपार्थं ता अपि माधुर्यविशिष्टरमणं प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । श्रीगोवर्धनसान्वादिषु स्थितः सन् भोजनानुकूलबाल्यचरितानुकरणत्वेन तथा भोजनादिकं करोतीत्यर्थः । तथा सति केषाञ्चिद् भोजनं दत्तं केषाञ्चिद् वाक्यमात्रेणैव केषाञ्चिद्भक्तभांडादिकं तथा रमणं करोतति भावः । यद्वा । भगवतः स्वामिनीभावात्मकत्वान्निकुंजगह्वरांतरेषु तादृशविहारकर्त्रीभिः सह तत्तद्भोगकरणार्थं रमणादिकं करोतीत्यर्थः । तास्तादृग्विलाससंपत्तावपि भावात्मकत्वात्तथैव भगवन्तं प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । रासलीलाकरणत्वेन यावतीर्गोपीर्व्रजयोषितस्तावंतमात्मानं कृत्वा तासां साक्षात्स्वरूपानन्ददानार्थं ताभिः सह रमणं करोतीत्यर्थः । तथा सति भगवद्भावात्मिकाः सत्यः शक्तिविशिष्टरमणं प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'एकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छ'दिति श्रुतेः । अथवा । स्वस्य सन्नियोगशिष्टत्वेन यावन्तो भगवद्धर्मास्तावन्त एवात्रापि स्थिताः सन्तीति तासु तद्धर्मान् ख्यापयन्तस्तादृशीनां जीवनसंपादकत्वेन परस्परं मिलित्वा रमणमाधुर्यं भावयन्तीति भावः ॥ एवं रमणमाधुर्यं निरूप्य वमितमाधुर्यं निरूपयन्ति **वमितं मधुर**मिति । भगवतो भावात्मकत्वात्तद्वीक्षणादीनि तथैव सन्तीति क्रीडासक्तत्वेन प्रत्यंगेषु रात्रिजागरजनितविलाससूचकत्वाद् भक्तानामतिसंतोषदायकत्वेन भावोद्गारिणीदृष्टिपातत्वाद्वमितं तथैव भातीत्यर्थः । तथा सति तादृग्दर्शनाभिलाषपूरितविग्रहत्वेन तेन विना स्थातुं न शक्नुवन्तीति जीवनसंपादनार्थमेव तदेव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । भगवतः शृंगारोद्बुद्धरसात्मकस्वरूपत्वेन स्वामिनीभावाधीनकृतिकरणत्वात्सर्वदा तद्ध्यानात्मको भूत्वा तद्विलासादीन् भक्तानामनुभावयतीत्यर्थः । अत एव केशप्रसाधनत्वे तथैव निरूपित**माचार्यवर्यैः** । तथा सति भावरूपेण यत्कृतं भगवता तद्वमितं, तत्प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । स्वामिनीनां स्वान्तर्गतभावज्ञापनार्थं वेणुकूजनादिकं कुर्वन् तत्रैव भावपूरकत्वेन तासां भावोच्छलनादिकं सर्वं ज्ञापयतीत्यर्थः । तेनैतद्भाववतीनां जीवनसंभावनारहितानां भगवन्मुखोद्गतामृतस्रावि वेणुश्रवणं तथैव भवतीति भावः । अथवा । स्वस्य साक्षाद्भगवदास्यरूपत्वेन सर्वदा तदुपभोगित्वेन चांतर्निष्ठभावं बहिः प्रकटीकरणार्थं तथैव भावयन्तीति भावः ॥ एवं वमितमाधुर्यं निरूप्य शमितमाधुर्यं निरूपयन्ति **शमितं मधुर**मिति । भगवान् क्रीडां करोतीत्यर्थः । अन्यथा महदुपद्रवसहितं दुष्टदैत्यादिनिवारणं कथं स्यादिति भावः । अथवा । शमु उपशम इति धातावुपदेशकाल एवोपसर्गस्य पतितत्वात्तेन भक्तवात्सल्यानुग्राहकधर्मवत्त्वेन पूतनादीनां शमनं करोतीत्यर्थः । अत एव 'गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमा' इति **श्रीशुकै**रुक्तम् । तथा सति पूर्वोक्तानुस्मरणकृतिमत्त्वेनाधुनापि तास्तद्वदेव रक्षार्थं द्रष्टुकामाः शमनं प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थत्वेन पूर्वं स्वरूपानन्ददानं कृत्वा पश्चात् तदकर्तुं विप्रयोगं विधाय पुनरन्यथाकर्तृत्वेन दैन्यप्रादुर्भावानन्तरं तासां यथा पूर्ववत् करोतीत्यर्थः ।

तेन स्वस्यैव सर्वकर्तृत्वेनैतासां जीवनसंपादकत्वात्तन्निराकरणं न युक्तमिति भावः । अत एव ‘साक्षान्मन्मथमन्मथ’ इत्युक्तम् । अथवा । स्वस्य साक्षाद्रसात्मकसन्नियोगशिष्टत्वेनोभयरसानुभवकरणार्थं तादृशीभिः सह शमनविशिष्टमाधुर्यं प्रार्थयन्तीति भावोपि सूचितः ॥ एवं धर्मविशिष्टमाधुर्यं निरूप्य धर्मिविशिष्टमाधुर्यं निरूपयन्ति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मिति । यत्र भक्तानां विप्रयोगदशापन्नत्वेन लीलायां मधुरत्वस्यैव प्रतीतिस्तत्र साक्षात्स्वरूपानन्दानुभवे का वार्तेति संशयनिराकरणपूर्वकज्ञापनार्थं मधुरा या भगवल्लीलास्तासां योऽधिपो भगवान् षड्गुणैश्वर्यसंपन्नः सर्वकरणसमर्थः फलदाता तस्य यत्सर्वं निरूपितं तन्मधुरमेवेत्यर्थः । अखिलमित्यव्ययेनाविकृतत्वं निरूपितम् ॥ ५ ॥

एवं पुलिनमागत्य कालिन्द्याः तस्य भावनाः ।
स्तुतिं चक्रुरुदारां च स्वप्रियालापपूर्विकाम् ॥ १ ॥
तथैव **श्रीमदाचार्या** भावनां भावपूर्विकाम् ।
यमुनासहितां चक्रुर्महतीं स्तुतिमुत्तमाम् ॥ २ ॥

गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीचो मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥

गुञ्जा मधुरेति । भगगान् रसात्मकः शृंगारात्मा गोचारणादिक्रीडाकरणार्थं शिरसि मयूरमुकुटं कंठे गुञ्जां कटितटे सुवर्णमेखलामंसे पीतवस्त्रं बिभर्ति । ततस्तद्भूषणयुक्तसौंदर्यावलोकनत्वेन किंचित्स्वास्थ्यकरणत्वादेतास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव ‘गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाये’ति **ब्रह्मणो**क्तम् । अथवा । भगवतः स्वामिनीभावात्मकत्वात् गुञ्जादिधारणं तु युक्तमेवेति वने विहारादिकं कुर्वन् तत्स्मरणकर्तृत्वेन तद्व्यतिरेकेण स्थातुमशक्यत्वाद्यत्किंचित्स्थैर्यकरणार्थं तदंगीकृतत्वेन स्वयमपि धारणं करोतीत्यर्थः । तथा सति गुंजाया वनस्थितत्वात्तद्दर्शनेन तत्स्मृतिजननात् भावपूर्वकालिंगनकरणत्वेन तां दधातीति भावः । अथवा । स्वामिनीनां वनगमनाभावादेतस्या वनस्थितत्वाच्च ताभिः कथं ग्रहीतुं शक्येति तासामतीव तुष्टिकरणार्थं

तदर्थं वा स्वयमेव धारयतीत्यर्थः । तेन यावद् दर्शनादिकं न भवति तावदेव स्वयं धीयते पश्चात्साक्षात्स्वरूपमिलनानन्तरं तु पूर्णांगीकरणत्वेनैव ता एव धारयन्तीति भावः । अथवा । स्वस्य सन्नियोगशिष्टत्वेनोभयसम्बन्धित्वादत्र ता गृहीत्वा स्वयमेव तत्र गत्वा तत्पुरत एव हस्ते संस्थाप्य प्रार्थनापूर्वकं यथा भवति तथांगीकारयन्तीति पूर्वावस्थानिरूपकत्वेनैवाधुना पुनस्तदनुभवकरणार्थं तादृशीभिः सह गुंजामाधुर्यं प्रार्थयन्तीति भावः । एवं गुंजामाधुर्यं निरूप्य मालामाधुर्यं निरूपयन्ति **माला मधुरे**ति । माला वैजयन्ती सर्वजयप्रकाशिका कीर्तिमयी च सर्वदोद्बुद्धशृंगाररसार्थमेवाच्छादकत्वेन तां विभावयन्तीत्यर्थः । नो चेद्रसोच्छलितत्वात्सर्वा एव विमोहिता भवेयुः, तर्हि किमपि कार्यं स्वतः परतो न भविष्यतीत्याशंक्य तासां फलानुभवकरणार्थं सर्वसाधिकां तां दधातीत्यर्थः । तथा सति सन्मुखस्थितस्वरूपावलोकनकटाक्षादिपूरितत्वेन स्वानुभूतरसानन्दानुभवं सर्वाः प्रतिक्षणं कुर्वन्तीति भावः । अत एव तादृशोद्बुद्धशृंगाररसात्मकस्वरूपप्राकट्यो वनवैजयन्तीं च मालां बिभ्रदित्युक्तम् । अथवा । माला वनमाला, नानाप्रकाराणि पुष्पाणि यस्यामिति तादृशशृंगाररसोद्बोधनाय पुष्पाणां रसोद्दीपकत्वात्तत्प्रकारिकां दधातीत्यर्थः । यद्वा । वनमालाया द्विरूपत्वात् ‘पादावलंबिता माला वनमाला प्रकीर्तिते’ति मालेत्युपलक्षणमात्रं, किंतु कंठाभरणमारभ्य यावंतो मुक्ताहारास्तावंत एव सर्वान् धृत्वा पश्चात्तदधो मालामेतां धारितवानित्यर्थः । तथा सति सर्वालंकारभूषितत्वेनापि वनगतशोभाया आवश्यकत्वात्कामोद्दीपनार्थं तादृशभाववत्यो माधुर्यविशिष्टमालां प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव ‘मुक्ताहारोल्लसद्वक्ष’ इति । अथवा । स्वस्य साक्षाद्भगवन्मुखारविन्दत्वेन तदात्मकत्वाद्विप्रयोगदशापन्नत्वेन तद्विना स्थातुं अशक्यत्वाच्च तत्तत्सामयिकं सर्वं स्मृत्वा तादृशभाववतीभिः सह तथैव विभावयन्तीतिः भावः ॥ एवं मालामधुर्यं निरूप्य यमुनामाधुर्यं निरूपयन्ति **यमुना मधुरे**ति । श्रीयमुनाया भगवत्समानधर्मत्वाद्यथा भगवांल्लीलात्मकस्तथेयमपि लीला सृष्टिस्थानां स्वरूपानन्ददानादिकं करोतीत्यर्थः । किंच । भगवानप्येतदधीनत्वेनैव सर्वं करोतीति स्वैश्वर्यादिकं तत्रैव स्थाप्य तद्द्वारेणैव

फलं प्रयच्छतीति सन्नियोगशिष्टत्वेनैव सर्वं करोतीति सन्नियोगशिष्टत्वेनैव सर्वदा तिष्ठतीत्यर्थः । अथवा । जलविहारादिकं तावदत्रैव भवतीति प्रेष्ठानुकूलकरणत्वेन तासामाकारणं स्वयमेव करोतीति भगवता स्तुतेत्यर्थः । स्वामिन्य अपि सर्वदैतदधीनस्थितिकरणत्वेन स्वानुभूतसुखसंदर्शनादेतामेव स्तुवन्तीत्यर्थः । तथा सत्येतावद्धर्मसामर्थ्यवत्त्वमेतस्यामेव दृष्ट्वा तस्य साधनत्वेन तादृक्प्रियसंगमाभिलाषवत्यस्तामेव माधुर्यविशिष्टां प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । स्वामिनीनां विप्रयोगदशायामपि तादृशप्रियविश्लेषपीडनादिकं वीक्ष्य कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थत्वेन तद्धर्मात्मकत्वात्साक्षात्स्वरूपानुभवं कारयतीत्यर्थः । किंच । गोचारणादिक्रीडां कुर्वतो भगवतः प्रियाविप्रयोगभावात्मकस्य सर्वथा क्षणमपि तद्विना स्थातुमशक्यस्यार्तिं मत्वा स्वपुलिन एव तत्संबंधं रचयतीत्यर्थः । तथा चैतावन्मात्रकृतिकरणत्वेन तादृशोपकृतित्वाभावान्मूर्छिताः सत्यो माधुर्यविशिष्टयमुनां प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । यमुना यमभगिनी । यमोपि भगिनीसम्बन्धव्यतिरिक्तानां पीडयति, न तु तदीयानां, वयं तु तदंगीकृता एवेति तत्सदृशकामपीडनादस्माकं रक्षिष्यतीति विश्वासतो यमुनां प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । कालिन्दीरूपत्वेनाविर्भूतत्वात्कलिं द्यतीति कलिन्दस्तस्य कन्येति भगवत्प्रतिबन्धकादिदोषदूरीकरणत्वेनास्माकमंगीकारं करोत्विति प्रार्थनेत्यर्थः । तथा सति सर्वकरणसमर्थत्वे जाते यदि तादृक्प्रभुसम्बन्धं करिष्यति तदैव जीवनसंभावना, नो चेदसमञ्जसमिति भावः । अथवा । स्वस्य साक्षाद्भगवत्स्वरूपात्मकत्वेन समानशीलव्यसनवत्त्वेन चैतदवस्थापन्नत्वात्तद्द्वारेणैव तादृशीनां मनोभिलाषपूरणार्थं स्वयमपि तथा प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं यमुनामाधुर्यं निरूप्य वीचीमाधुर्यं निरूपयन्ति **वीची मधुरे**ति । वीचीति जात्येकवचनाभिप्रायेण, किन्तु तरंगा बहव एवाऽसंख्याताः, तेषां शोभादिकरणत्वेन शीतलत्वादिधर्मदायकत्वेनाप्यायकत्वाद् भगवदुपयोगिन एव भवन्तीत्यर्थः । तथा सति क्रीडोपयोगित्वात्तापनिवारकत्वादिधर्मवत्त्वेन स्वगतविप्रयोगदुःखनिवारणार्थं तास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । तरंगाणां भुजनिरूपकत्वेनैव सर्वोपकरणत्वं, नहि कोपि हस्तव्यतिरेकेण किमपि कार्यं कर्तुं शक्नोति, तस्मात्पुलिनस्थवालुकासमीचीनकरणादिकं तु तरलतरंगप्रसारणेनैव भवति, नान्यथेत्यर्थः । तेनैतद्दर्शनमनोरथपूरकत्वेन कामजनिततापनिवृत्तित्वान्माधुर्यविशिष्टतरंगान्प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । पुलिनं तावत्क्रीडास्थलं, तत्र जलापेक्षया सिञ्चनादिकं युक्तमेवेति, नो चेद् भगवच्चरणारविन्दानामतीवकोमलत्वाद्रमणादिकं कथं संभवतीति तैस्तथैव क्रियत इत्यर्थ । तथा सति तद्वस्तुकृतव्यापारसामग्रीदर्शनात्प्रियमिलनादिकं तावदत्रैव भविष्यतीति तन्निकटस्थिता एव तद्रूपां तां प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुक'मित्यत्र तथैव निरूपितमाचार्यवर्यैः । यद्वा । स्वस्य साक्षाद्रसात्मकसन्नियोगशिष्टत्वेनैतत्सजातीयत्वेनापि समानशीलव्यसनवत्त्वादिधर्मदर्शनात्प्रियप्रतिबन्धनिवारकशक्तिविशिष्टत्वेन तत्करग्रहणपूर्वकं यथा भवति तथा प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं वीचीमाधुर्यं निरूप्य सलिलमाधुर्यं निरूपयन्ति **सलिलं मधुर**मिति । यमुनासाहित्यात्सलिलं तज्जलमेव निरूप्यते । क्रीडार्थं जलं तावदवश्यमपेक्ष्यं श्रमनिवारकत्वेनैव, पुनस्तत्संभावना नान्यथेत्यर्थः । तथा सति तादृशीनां तद्गतलीलावगाहकशक्तिसत्त्वेनाधुनापि तत्तत्क्रीडाकरणार्थं स्मरणमात्रेणैव तापनिवारकत्वान्नोपकृतिं ज्ञात्वा तादृग् जलं प्रार्थयन्तीतिः भावः । अथवा राजकुमारीणां वरदानप्रस्तावे पूर्वमन्यदेवोपासनया फलप्रतिबन्धकत्वेन तावत्कालं व्यर्थमेव जातमिति पश्चाद् व्रतान्तरारम्भकत्वेन उपोषणविधिप्राप्तत्वाद् देवहेलनक्रीडादिदोषनिवारकत्वेन तज्जलमेव फलप्रतिपादकं भवतीत्यर्थः । अत एव 'कालिन्द्यां स्नातुमन्वह'मित्युक्तम् । तथा सत्येतज्जलसम्बन्धमात्रेणैवानिष्टनिवृत्तीष्टप्राप्तित्वाद् भगवद्भावसम्पादकत्वेन तज्जलं प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । भगवान् गोचारणादिक्रीडां कुर्वन्मात्रा प्रेषितभोजनादिकं कृत्वा पुनर्गृहगमनशंकाभावत्वेन तृषार्तान्वीक्ष्य यमुनाकूलमेवागतस्तत्र सर्वान् जलं पाययित्वा स्वयमपि पश्चात्पिबतीत्यर्थः । तेन जल एव मधुररस इतिन्यायात्तत्रापि श्रीयमुनासम्बन्धित्वेन शीतलत्वसुमृष्टत्वादिगुणवज्जलं प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'सुमृष्टाः शीतलाः शिवा' इत्युक्तम् । अथवा । भगवतः क्रीडाकरणत्वेन तत्रैव रसाविर्भावत्वात्तादृशीभिः सह रमणकर्तृत्वेन

श्रमजनितखेददूरीकरणार्थं जलोत्क्षेपणादिकर्तृत्वेन विहारादिकं करोतीत्यर्थः । तथा सति साक्षात्स्वरूपावलोकनकटाक्षादिभावपूर्वकस्पर्शनाभिप्रायेण माधुर्यविशिष्टजलं प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । स्वस्य भगवदास्यरूपत्वेन रसात्मकत्वात्तज्जलपानादिकरणत्वेनाधुना विप्रयोगरसानुभवकत्वात्कथमपि इष्टप्राप्तिसिद्ध्यर्थं दोषनिराकरणत्वेन तादृशीभिः सह तथैव प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं सलिलमाधुर्यं निरूप्य कमलमाधुर्यं निरूपयन्ति **कमलं मधुर**मिति । भगवान्वनादागमनसमये गाः पुरस्कृत्य पश्चात्स्वयमपि हस्ते कमलं भ्रामयन् नूपुरशब्दानुकरणत्वेन शनैः शनैरागच्छतीत्यर्थः । किंच । स्वामिनीमिलनानुकूलकृतिकरणत्वेन तादृग्भावसम्पादकत्वादत्यार्तिनिरूपकत्वेन यावद् दर्शनादिकं न भवति तावत्कोमलत्वशीतलत्वतापहारकत्वादिगुणयुक्तत्वेन स्वोपकारकृतिमत्त्वात्कमलं धारितवानित्यर्थः । तथा सति तादृग्दर्शनापेक्षापूर्वकत्वेन तद्विना स्थातुमशक्यत्वादेताः कमलविशिष्टमाधुर्यं प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । भक्तानामखिलप्रकाशानुकूलकृतिकरणत्वेन तद्रसलभ्यत्वात्सुखसेव्यत्वबोधनाय तेषां रसात्मके हृदि चक्षुषि वा स्थापयितुं तद्योग्यतासूचनत्वेन चरणे कमलाभिधं चिह्नं दधातीत्यर्थः । तेन मनःपूर्वककटाक्षावलोकनादिव्यारसत्त्वेन चरणपंकजानुरंजकत्वाद्रसाधायकत्वेनैतास्तत्कमलं प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'जीवैर्नमनातिरिक्तं कर्तुं न शक्य'मिति शिक्षयानाभिस्तथैवोक्तं 'प्रणतदेहिना'मिति । यद्वा । भगवन्मुखस्यैव कमलत्वेन निरूपणत्वाच्चन्द्रवत्तापहारकत्वेन नेत्रद्वारेणैव लावण्यामृतपानकरणत्वेन च ताभिः तथैवोच्यत इत्यर्थः । तेन मुखांबुजदर्शनादेव तासां तापशान्तिर्नान्यथेति मरणसंभावनैव निश्चीयत इति भावः । अत एव 'जलरुहाननं चारु दर्शये'त्युक्तम् । अथवा । कमलगतकमलनिरूपकत्वेन तादृग्रागविशिष्टत्वेन तद्वद्विकासित्वेन च सौरभादिगुणदायकत्वान्नेत्रयोः कमलत्वोपमयोस्तत्सादृश्यं घटत एवेत्यर्थः । अत एव कमले कमलोत्पत्तिरिति विरोधालंकारत्वेन भगवति तथोच्यत इत्यर्थः । यद्वा । स्वस्य साक्षाद्भगवदास्यरूपत्वेन मुखारविन्दरसभोक्तृत्वं नेत्राम्बुजे स्यादपि तथैव रसपानकरणादधुना वैसादृश्यनिरूपकत्वेन पूर्वानुभूतं सर्वं स्मृत्वा ताभिः सह तथैव

भावयन्तीति भावः ॥ एवं धर्मविशिष्टमाधुर्यं निरूप्य धर्मिविशिष्टमाधुर्यं निरूपयन्ति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मिति । यत्र यत्सम्बन्धेन लीलौपयिकपदार्थानां प्रतिक्षणं माधुर्यं नवं नवं जायत इति तदधिष्ठातरि किमिति न, किंतु वर्तत इति काकूक्तिनिश्चयोपक्रमत्वाद्भगवतो मधुराधिपतेः सर्वसामग्रीसहितस्य यदखिलं तत्सर्वं मधुरमेवेति प्रार्थना विषयीक्रियत इत्यर्थः ॥६॥

एवं स्वदुःखं विस्मृत्य तद्दुःखं वीक्ष्य वा पुनः ।
तत्कथां शुश्रुवुः सर्वाः स्वदुःखालापनाशिकाम् ॥ १ ॥
तथैव **श्रीमदाचार्याः** समाधाय मनः स्वयम् ।
तथैव सहसा स्थित्वा दौर्मनस्यं त्यजन्ति वै ॥ २ ॥

गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७॥

गोपी मधुरेति । क्रीडार्थमेव यामेकां गृहीत्वा रहस्येतद्व्यतिरिक्तास्त्यक्त्वा तदनुगुणत्वेनैव तादृग्वनान्तरं प्राप्य तत्तत्सामग्रीसम्पादनत्वात् केशप्रसाधनादिकं कृत्वा नृत्यादिकं करोतीति भगवानेतयैवोपभुक्त इत्यर्थः । एवं सति तदनुकरणत्वेनैव कदाचित् युष्माकमपि तदाज्ञया वा जीवनसम्पादनं करिष्यतीति तामेव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । तामपि त्यक्त्वा ततोऽपि वनान्तरं गत्वा स्वयमेव तिष्ठति न तु तत्सहित इति तर्हि तामेव दृष्ट्वा सर्वास्तत्रैव स्थिता भवन्तीति, यद्येतन्मिलनार्थं भगवानागमिष्यति तदाऽस्माकमपि दर्शनं भविष्यतीत्येतत्साहाय्यकर्तृत्वेन ता मिलनोत्साहकतया माधुर्यविशिष्टां तां प्रार्थयन्तीति तदर्थमेव सर्वं कुर्वन्तीत्यर्थः । तथा सत्येतद्गत्यनुसारेणास्माकमपि गतिर्भविष्यतीति नातः परमेनां त्यक्त्वा गन्तुं शक्नुवन्तीति सहसा प्रवृत्तिरिति भावः । यद्वा । पुलिनस्थत्वात्पुनर्दर्शनमेतत्कृतोपकारत्वेनैव ज्ञायत इति नो चेत्पूर्वमेव कथं न जातमिति तात्कालिकानुभवजन्यज्ञानवत्त्वेन तद्भावात्मकत्वादेवास्माकं कार्यसिद्धिर्भविष्यतीति निश्चित्य तादृग्गुणविशिष्टां प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । गुणगानादिककृतिकरणत्वेन चैतदर्थमेवाविर्भूतो भगवान्, नास्मदर्थम्, नो चेद्-गुणगानं तावदस्माभिः पूर्वमेव कृतं परन्तु नाविर्भूत एव, ततोऽनुमीयते, किं चित्रं

यो यस्याधीनः स तु तदनुकूलं करोत्येवेत्यर्थः । तथा सति तादृग्दर्शनाभिलाषयुक्तत्वेन तत्फलप्राप्त्यर्थं तावदेतस्या एवाश्रयकरणं युक्तमिति भावः । यद्वा । स्वस्य साक्षाद्भगवत्स्वरूपसन्नियोगशिष्टत्वेन तत्तत्कृतिकरणत्वेनाधुना विप्रयोगरसानुभवकरणार्थं तत्तदवस्थापन्नत्वेन तादृशीभिः सह तथैव प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं गोपीमाधुर्यं निरूप्य लीलामाधुर्यं निरूपयन्ति **लीला मधुरे**ति । जात्येकवचनाभिप्रायेण भगवतो लीला मधुरेत्येतावदुक्तम् । किन्तु ता असंख्याता एव । यत्र यथापेक्षितरूपाणि तथा निरूपणार्थं च दशविधलीलासु तासां प्रविष्टत्वादित्यर्थः । यतो भगवदवतारा असंख्याताः सन्तीति तथा लीलायाः साक्षात्स्वरूपात्मकत्वात्ता अप्यसंख्याता इत्यर्थः । किंच । यथाऽवतारिण्येव सर्वेऽवतारास्तिष्ठन्ति तथा दशविधलीलास्वेव सर्वा एव संविशन्तीत्यर्थः । तत्र बाल्यानुकृतिकरणत्वेनैव भगवतः सर्वलीलाकरणत्वात्तत्तद्भावपूरकत्वेन भक्तानामभिलषितार्थदानकरणत्वेन च तास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । गोचारणादिलीलायामेव सर्वरसानुभवकर्तृत्वात्तादृग्भक्तमनोरथादिपूरकत्वेन कुंजान्तरीयरसदातृत्वेन च भावपूर्वककटाक्षावलोकनादिकं यथा भवति तथा रमणं करोतीत्यर्थः । तथा सति बाल्यानुकरणत्वेनैव सर्वाज्ञातलीलाया रसदातृत्वेन तादृशानुग्रहं करोतीति पूर्वानुभूतं स्मृत्वैव विप्रयोगकालक्षेपार्थं लीला मधुरेति तां प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । नृत्यविशिष्टरासलीलाकरणत्वेन तासां हृदि रसाविर्भावत्वादैश्वर्यादिगुणविधायकत्वं, नो चेद्बहुनर्तकीयुक्तो नृत्यविशेषो रास इति लक्षणानुपपत्तेः । तस्मादेतदनुरोधित्वेनैव रासकरणं नान्यथेत्यर्थः । तथा सति संयोगविशिष्टरसानुभवजनकत्वेन जीवनसंभावनत्वादिति भ्रमरकीटन्यायेन लीलात्मकाः सत्यस्तामेव प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'रासलीलैकतात्पर्य' इति **श्रीमत्प्रभुभिः सर्वोत्तम** एवोक्तम् ॥ एवं लीलामाधुर्यं निरूप्य युक्तमाधुर्यं निरूपयन्ति **युक्तं मधुर**मिति । युक्तं योजनं, तेन भक्तानां तत्तल्लीलारसानुभवकरणार्थं तत्तत्क्रियाव्यापारसत्त्वेन यथाऽधिकारप्राप्तानां लीलासमुद्रे योजितवानित्यर्थः । अन्यथाऽक्षरात्मकानन्दमध्यपातित्वेन भक्तानां लीलान्तराप्रवेश एव न संभवतीति कथं साक्षाद्भजनानन्दव्यतिरेकेण फलानुभव इति तत्प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'भजनानन्दयोजन' इत्युक्तम । अथवा । बाललीलायामेव भक्तानां तथाकरणाद्यशोदोत्संगलालितः सन् तासामन्तर्भावं ज्ञात्वा भगवान्सर्वकरणसमर्थत्वेन तादृशगोपनरीत्या तदनुकूलकृतिमत्त्वेन च सर्वाभीष्टदातृत्वात्साक्षात्स्वरूपानन्द एव तान् योजयतीत्यर्थः । तथा सति तत्स्वरूपानन्ददानकरणत्वेनैव तत्तद्भाववतीनां जीवनसम्भावना, नान्यथा । केवलशैशवानुकरणत्वेन तादृशीनां जीवनं संभवतीति भावः । अत एव 'आत्मानं भूषयांचक्रु'रित्युक्तम् । यद्वा । भगवान्वनविहारादिकमपि कुर्वन् भक्तानां तत्तत्संकेतस्थलादिसूचकत्वेन तत्तद्रसानुभवकरणार्थं क्रीडाव्याजेन गोचारणादिक्रियाज्ञप्तत्वादेतासां हितकरणत्वेन तांस्तथैव योजितवानित्यर्थः । तथा सति योजनक्रियानुकूलव्यापारकृतिमत्त्वेन सर्वासामभिलाषपूरकत्वात्तादृग्माधुर्यविशिष्टयोजनं ताः प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । स्वस्य साक्षाद्भगवत्स्वरूपात्मकत्वेन योजनक्रियाद्यनुसन्धानेन पूर्वानुभूतलीलानुस्मरणात्तापभावजननात्कथमपि तन्निर्वाहार्थं तादृग्भावविशिष्टं योजनमेव विभावयन्तीति भावः ॥ एवं युक्तमाधुर्यं निरूप्य मुक्तमाधुर्यं निरूपयन्ति **मुक्तं मधुर**मिति । मुक्तं मोचनं, तदपि भक्तानां हितकरणार्थमेव, न त्वन्यथा, नो चेद्विप्रयोगरसः कथं संभविष्यतीति संयोगरसपुष्टीकरणार्थमेव त्यागकरणमुचितमित्यर्थः । किंच । न हि भगवांस्तासां त्यक्त्वा गतः, किन्तु परोक्षस्थित एव, तदनुकूलकृतिकरणत्वेन मानादिदोषनिवारकत्वेन च शुद्धभावसम्पादकत्वात्स्वरूपानन्ददानकरणत्वाच्च तथा करोतीत्यर्थः । तथा सति त्यागकरणादिकृतिमत्त्वेन तादृशरसोपलब्धित्वात्तदधिकरसाधायकत्वेन जीवनसम्भवत्वात्तास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव **भगवता गीता**यामित्युक्तम् । 'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपम'मित्यत्रापि तथैवोक्तमिति निश्चयादित्यर्थः । अथवा । श्रीमन्नन्दराजस्यान्याश्रयकरणत्वेन मर्यादामार्गीयदोषातिग्रस्तत्वात्तद्धितकरणत्वेन भक्तिमार्गीयत्वसम्पादनार्थं सर्वथा निरोधकरणार्थमेव च वरुणनीतत्वे तत्रापि मोचितवान् । किंच । पुनस्तद्देवानुग्रहकरणार्थमेव मर्यादाग्रहणस्य दोषावहत्वादिति ज्ञापनाय कश्चिन्महाहिना ग्रस्तत्वेन स्वाश्रयकरणार्थमेव स्वनामोच्चारणमात्रेणैव मोचनं यथा भवति तथैव रक्षितवानित्यर्थः । तथा सति आश्रयानुकूलकृतिकरण-

त्वेनैव दोषनिवृत्तिर्नान्यथेति ज्ञात्वा कृष्ण कृष्णेति पूर्वं चरितं स्मारं स्मारं तदाश्रयप्रापकत्वेन तदेव प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव चे'त्युक्त**माचार्यवर्यैः** । यद्वा । मुक्तमित्यत्र भावे क्तस्तेन रासादिकृतिकरणत्वेन मण्डलीकृतभक्तानां हस्तग्रन्थ्यवलम्बितत्वेन तत्तद्भावानुसारिनृत्यकरणत्वेन च कदाचित् हस्तग्रहणमपि संभवतीति पुनस्तथैव जात इत्यर्थः । तथा सति त्यागकरणरसाधायकत्वेन तादृशकटाक्षावलोकनादिभिः क्रीडाकरणत्वेनाधुना तद्विना स्थातुमशक्यत्वात्कथमपि तदेव माधुर्यविशिष्टं प्रार्थयन्तीत्यर्थः । अथवा । स्वस्य भगवत्स्वरूपसन्नियोगशिष्टत्वेन तद्भावनिरीक्षणत्वात्तदनुभवेन जीवनसंभावनं नान्यथेति विचार्य विप्रयोगरसानुभवकरणत्वेन तादृग्भाववतीभिः सह तदेव प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं मुक्तमाधुर्यं निरूप्य दृष्टमाधुर्यं निरूपयन्ति **दृष्टं मधुर**मिति । भगवतो लीलात्मकत्वात्तद्रसपूरणत्वेन भक्तानामानन्ददानार्थं च गोचारणादिसमय एव तादृगीक्षणैः प्रणयपूर्वकावलोकनं यथा भवति तथा भगवान् करोतीत्यर्थः । नो चेद्वनविहारादिकं तावत्किमर्थं, गोचारणकरणं तु गोपैरपि भविष्यतीति तत्रस्थानामपि स्थावरजंगमानां लीलास्थानां भावपूर्वककटाक्षावलोकनार्थं गमनादिकं करोतीति तद्भावापन्नत्वेन तास्तादृग्दर्शनमेव प्रार्थयन्तीति भावः । तथा सति यत्र बाल्यदशायामपि तादृग्दर्शनापेक्षत्वं तत्र साक्षाद्रसात्मकसंयोगदशायां भगवतः किमु वाच्यमिति कैमुतिकन्याय उक्तो भवतीत्यर्थः । अथवा । दिवा वनगतत्वात्सायमागमनसमये तादृग्विप्रयोगासहमानतया तद्भावपूर्वकत्वेन तथार्तिवशात्स्वप्रियाणां प्रत्यंगावलोकनादिकं तथैव करोतीत्यर्थः । तथा सति तादृग्भाववतीनां साक्षात्फलानुभवकर्त्रीणां तद्दर्शनमेव जीवनसम्पादकं नान्यदित्यन्यथाभावनमुररीकृत्य सर्वास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । स्वस्य साक्षाद्रसात्मकस्वरूपत्वेन तत्तद्दर्शनानुकूलकृतिकरणत्वज्ञानेन तादृशसुखोपलब्धित्वाद्विप्रयोगरसाक्रान्तदेहत्वेन तादृशीभिः सह माधुर्यविशिष्टं तदेव भावयन्तीति भावः । एवं दृष्टमाधुर्यं निरूप्य शिष्टमाधुर्यं निरूपयन्ति **शिष्टं मधुर**मिति । शिष्टमवशिष्टं, तत्तु सैव, यावद् भूमौ स्वचरणांकिता भक्तिर्न स्थाप्यते तावदवशिष्टपुरुषार्थत्वमेव, तस्मात् वृन्दावनप्रवेशकरणत्वेन

तत्रैव भक्तिः स्थापितेति भगवदीयानां हृदि भक्तिस्थापनकरणं तु युक्तमेवेत्यर्थः । अत एव 'वैष्णवा वनस्पतय'इति श्रुतेः । एवं सति वृन्दाया भक्तिरूपत्वात्तदंगीकारेणैव तत्रस्थानां सर्वेषामप्यंगीकारो भावनीय इति भावः । अथवा । यदि भक्तानां हृदि चरणस्थापनं न कुर्यात्तदा भक्तिराहित्याद् गुणगानादिकमपि ते कथं करिष्यन्तीति विचार्य स्वस्यावशिष्टपुरुषार्थस्थापकत्वेन तथैव कीर्तिवर्णनं कारयित्वा तद्धृदि चरणस्थापनेनैव भक्तिः स्थापितेत्यर्थः । अत एव अवशिष्टपुरुषार्थस्थापनार्थमेव 'प्राविशत् गीतकीर्ति'रित्युक्त**माचार्यवर्यैः** । यद्वा । स्वस्य हरित्वोपपादितभक्तानुग्रहकार्यकर्तृत्वेन भक्तवत्सलत्वात्तत्प्रार्थनायाः पूर्वमेव तत्रापि भूयोदर्शनमात्रेणावशिष्टपुरुषार्थत्वख्यापनार्थं तद्दुःखहरणं भक्तिस्थापनं च करोतीत्यर्थः । कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थत्वेनैतद्भावस्य गजराजोद्धृतावेव स्पष्टीकृतत्वात्तत एव भावनीयमित्यर्थः । तथा सत्येतावन्मात्रनिश्चयकरणत्वेनैव भगवानस्माकमपि प्रार्थनाव्यतिकरेण साहाय्यं भविष्यतीति ज्ञात्वा तादृक् शिष्टमेव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । स्वस्य साक्षाद्भगवत्स्वरूपसन्नियोगशिष्टत्वात्तत्समानधर्मकरणत्वेन यदि स्वेनैव दैवजीवानामुद्धृतिर्न क्रियत इति तदा स्वस्याप्यवशिष्टपुरुषार्थत्वात्तत्स्थापनकरणार्थं तदेवानुकूलकृतिकरणत्वेन तदाज्ञया प्रादुर्भूतत्वेन च तदुपकरणात्तादृग्भाववतीभिः सह माधुर्यविशिष्टमेव प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'दैवीसृष्टिर्व्यर्था च मा स्या'दिति **वल्लभाष्टके प्रभुभिः** स्तुतिः क्रियत इत्यर्थः ॥ एवं धर्मविशिष्टमाधुर्यं निरूप्य धर्मिविशिष्टमाधुर्यं निरूपयन्ति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मति । साक्षात्स्वरूपानुभवकरणत्वे प्रमाणप्रयोजनाभावाद्यत्र धर्मधर्मिणोरेकजातीयत्वादिति न्यायाल्लीलानां भगवद्धर्मात्मकत्वादेव मधुरत्वप्रतीतिस्तत्र तदधिपतौ किं वाच्यमिति निश्चयेन भगवतो मधुराधिपतेर्यदखिलमवशिष्टं तत्सर्वं मधुरमेवेति प्रार्थनापूर्वकं मधुराधिपतेरखिलं मधुरमित्युक्तम् ॥ ७ ॥

एवं प्रापंचिकं त्यक्त्वा भगवद्बोधसिद्धये ।
लीलात्मिकास्तास्ताः सर्वा जाता एव न संशयः ॥१॥

तथैव **श्रीमदाचार्याः** स्वकीयानां हिताय च ।
लीलात्मकं फलं ज्ञात्वा निरोधं साधयन्ति हि ॥२॥

गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

गोपा मधुरा इति । गा पान्तीति गोपास्तद्रक्षाकरणत्वेन भगवतोपि वल्लभास्तैः साकं भगवान् क्रीडतीति, यतः स्वयमपि गोपालस्तस्मात्समानशीलव्यसनवत्त्वेनैतत्सामानाधिकरण्यात्परस्पररसानुभवजनकत्वेन तादृशमण्डलीमध्यस्थित एव सर्वदा वर्तत इत्यर्थः । किंच । वने भोजनादिकमपि तत्रैव करोति यदा ते सर्वे गोपालाः स्वस्वभोजनपात्रं गृहीत्वा स्वसन्मुखमेव तिष्ठन्तीति तादृशप्रीतिजनकत्वेन तथा विलासं करोतीत्यर्थः । तथा सति गीतहास्यकटाक्षाद्यवलोकनादिकरणत्वेन तादृशान्तरंगभावसूचकत्वाद् भगवतः सुखाधायका इति माधुर्यविशिष्टांस्तान्प्रार्थयन्तीतिः । अथवा । स्वकीया अन्तरंगा ये गोपालाः कृष्णादयस्ते भगवदाज्ञया वनक्रीडायां तदनुकूलकृतिकरणत्वेन यद्यत् कुर्वन्ति तत्पुनः सायमागमनानन्तरं गृहगमनव्यतिरेकेण रसवशात् स्वामिनीनामग्रे सर्वं सूचयन्तीत्यर्थः । तेन विप्रयोगजनिततापनिवर्तकत्वेन तद्वचनश्रवणमात्रोपजीवकत्वात्तत्समय एव तान् दृष्ट्वा तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । भगवतो विप्रयोगदशायामपि स्वस्यान्तरंगत्वाद्यत्किंचित्स्वास्थ्यकरणार्थमविचार्य प्रियत्वकरणेन स्वामिनीकथितवृत्तान्तप्रार्थनाकरणत्वेन प्रभावपि प्रिया भवन्तीत्यर्थः । तथा सति प्रणयरसावबोधककार्यकर्तृत्वेन भावोद्दीपकत्वात्तादृशोपकृतिकरणभाववत्त्वेन ताभिस्तथैव प्रार्थितास्त इति भावः । अथवा । स्वस्य साक्षाद्रसात्मकसन्नियोगशिष्टत्वेन कृपाकटाक्षादिसूचकत्वेन च स्वस्याप्यन्तरंगकार्यकर्तृत्वात्तत्प्रियतमकृतिमत्त्वं ज्ञात्वा स्वसंतोषाधायकत्वेन तान् प्रति तथैव प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं गोपमाधुर्यं निरूप्य गवां माधुर्यं निरूपयन्ति **गावो मधुरा** इति । गावो लीलात्मिका भगवदनुभावज्ञा वेणुगानश्रवणमात्रेण यत्र तृणादिकं चरन्ति तत्र सर्वं त्यक्त्वा भगवन्निकट एव शीघ्रमागत्य मुखावलोकनपूर्वकं यथा भवति तथा कर्णपुटोत्तभितत्वेन मुहुर्मुहुस्तदधरामृतपानं सादरपूर्वकं कुर्वन्तीत्यर्थः । किंच । आगमनसमये साक्षान्नादानन्दप्रविष्टत्वात्तदनुभवेनानन्दभराद् भूमावपि पयःसिञ्चनादिकं कुर्वन्त्यः शनैः शनैरागच्छन्तीति वा । तथा सति भावपूर्वकागमनकरणत्वेन साक्षात्स्वरूपानुभवं यथा कुर्वन्ति तथा वयमपि करिष्याम इति ज्ञापनाय तथा प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीते'त्यत्र तथैव निरूपित**माचार्यवर्यैः** । अथवा । यत्र यत्र गावः स्वेच्छया पशुजातीयत्वादविचार्यत्वेन तृणलोभात्स्वत एव गच्छन्ति तत्र तत्र भगवान् गोपालैः सह क्रीडां कुर्वन् तदनुगुणत्वेन वने वने चारयन् गच्छतीत्यर्थः । नहि केवलं तद्व्यतिरेकेण कदाचिद्वनगमनमेव करोतीति भावो ज्ञाप्यते । किंच । कदाचिन्मात्राप्रेषितसख्यानीतभोजनराहित्येन बुभुक्षितः सन् मार्गमध्य एव गोदोहनादिकं कृत्वा तदनुभवज्ञानजन्यत्वेन ता अपि तथैव तिष्ठन्तीति गोपांस्तद्वत्सान्पयः पाययित्वा स्वयमपि पानं करोतीत्यर्थः । तथा सति परस्परभावानुकूलकृतिकरणत्वेन पूर्वं भगवन्मुखारविन्दोद्गताधरसीधुपानमेताभिः कृतमधुना भगवता क्रियत इति विशेषानुभवकरणत्वेन ता एताः प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । स्वस्य साक्षाद्भगवदास्यरूपत्वात्तदुभयरसोपयोगित्वेन तत्तल्लीलानुभूतत्वादधुना विप्रयोगरसाभिनिवेशेन स्वसमानशीलाभिः सह तथव विभावयन्तीति भावः ॥ एवं गवां माधुर्यं निरूप्य यष्टिमाधुर्यं निरूपयन्ति **यष्टिर्मधुरे**ति । यदा भगवान् गोचारणादिकं करोति तदा वेणुवेत्रव्यतिरेकेण कदापि न गच्छति किन्तु तत्सहित एव तत्तत्कार्यकरणार्थं तदुपयोगस्यावश्यकत्वात्तद्वेषधारणत्वेनैव वनगमनं करोतीत्यर्थः । किंच । 'यथा राजा तथा प्रजे'तिन्यायादेतदनुरोधित्वेन सर्वे गोपालास्तदनुकरणत्वेन यष्टिं गृहीत्वा स्वस्वगोधनानि पुरस्कृत्य तथैव भगवता सह गमनं कुर्वन्तीत्यर्थः । तेन करावलंबितयष्टिकाग्रहणेन कदाचित् स्वस्वांसे तद्धारणत्वेन च कदाचिदपूर्वैव श्रीर्भवेदिति पूर्वानुभूतत्वात् माधुर्यरूपां यष्टिं प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा । बालस्वभावानुकूलकृतिकरणत्वेन क्रीडार्थमेव तद्धारणं तेपि तदर्थमेव धारयन्तीति परस्परं तैः साकं प्रत्यहं क्रीडतीत्यर्थः ।

तथा सति आत्मरसानुभूतलीलादर्शनोद्गमत्वाद्विशेषरसाधायकत्वेन ताः सर्वास्तामेव प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा । स्वस्य साक्षाद्रसात्मकस्वरूपात्मकत्वात्तत्तत्कार्योपकरणत्वेन तत्तद्दुःखानुभूतित्वाद् विप्रयोगरसानुभवकरणार्थं तादृगवस्थापन्नत्वेन कथमपि कालक्षेपार्थं पूर्वानुभूतं सर्वं स्मृत्वा तदेव प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं यष्टिमाधुर्यं निरूप्य सृष्टिमाधुर्यं निरूपयन्ति **सृष्टिर्मधुरे**ति । सृष्टिः लीलासृष्टिस्तत्करणं तु भगवतैव संभाव्यते नान्येन । तस्मात् लीलार्थं व्रजस्थानां सृष्ट्वा स्वरूपानन्ददानार्थं स्वयमपि तत्रैव प्रविशतीत्यर्थः । अन्यथा लीलानां तदात्मकत्वमेव न स्यादतस्तद्व्यतिरेकेण स्वयमपि स्थातुं न शक्यत इति सर्वदा तदन्तःपातित्वेन भक्तानां तद्रसानुभवं कारयित्वा स्वयमपि करोतीत्यर्थः । अत एव 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविश'दिति श्रुतिः । अथवा साक्षात्स्वरूपानन्दानुभवस्तत्रस्थानामेव नान्येषां, कुतो जीवानामसम्भावितत्वात्तदतिरिक्तानां साक्षात्स्पर्शाभावाच्च तथा न संभवतीत्यर्थः । अन्यथा 'जीवा स्वभावतो दुष्टा' इति कथं वदेयुः ?। तस्मात् लीलासृष्टिस्थानामेव साक्षादंगसंगित्वात्तत्स्वरूपानन्दानुभवकरणत्वेन भजनानन्दानुभूतरसप्राप्तित्वात् तत्रैव मज्जनोन्मज्जनादिकरणत्वेन जलमीनवत् स्थिता भवन्तीत्यर्थः । अत एव 'अन्यैव काचित्सा सृष्टिर्विधातुर्व्यतिरेकिणी'ति तथैवोपदिष्टत्वात् । तथा सति भजनानन्दनिमग्नत्वेन भगवदधीनत्वात्पूर्वोक्तदृष्टांतत्वात्तेनैव न संभवति नान्यथेति भावः । अथवा । स्वस्य साक्षाद्रसात्मकस्वरूपसन्नियोगशिष्टत्वेन दैवोद्धारप्रयत्नीकृतत्वात्स्वद्वारेणैव तदुपयोगकरणत्वेन यमुनासेवातः तनुनवत्वादिकरणत्वेन च स्वकीयानां तद्योग्यतानिरूपकत्वेन वा तथैव प्रार्थयन्तीति भावः ॥ एवं सृष्टिमाधुर्यं निरूप्य दलितमाधुर्यं निरूपयन्ति **दलितं मधुर**मिति । दलितं दलनं, तद् दुष्टदैत्यानां, तदर्थमेव भगवानवतीर्णो जात इति व्रजरक्षाकरणत्वेनैव तत्र स्थितिकरणत्वाद्यदा पूतनादिदैत्यागमनं जातं तदैवानन्तशक्तिमत्त्वेन तन्निराकरणीयत्वाद्बाल्यदशायामतिविस्मयकरणत्वेन भक्तानामभयदानं करोतीत्यर्थः । किंच । गोचारणादिक्रीडायामपि केश्यादिदुष्टनिवारकत्वेनैव स्वस्य गोपालत्वं, नो चेद्यदि दुष्टदैत्यादिभिर्वनमाक्रमितं स्यात्तदा गावस्तत्र कथं प्राप्ता भविष्यन्तीति सा

क्रीडैव न भविष्यतीति, तत्करणं त्वावश्यकमिति नामार्थसार्थकत्वेन तथा करोतीत्यर्थः । किंच, कालिन्दीजलपानकरणानन्तरं गोपालास्तद्विमूर्छिता जाताः, गावश्च तथा क्रन्दनं कुर्वन्तीति, तद् दृष्ट्वा भगवान् भक्तवत्सलतया तस्या निर्दोषकरणार्थं सद्य एव जले प्रविश्य दुष्टकालियदलनं करोतीत्यर्थः । तथा सति गोरक्षाकरणत्वेन योगबलान्नामसार्थकत्वं स्वस्मिन्नेव प्रतिफलितं, नान्ये गोपालास्तथा भवन्तीति तत्र रूढिरेव वक्तव्येति भावः । अथवा, गाः पान्तीति गोपास्तान् लातीति गोपालः, पुनस्तद्रक्षाकरणे तथैव नामसार्थकत्वात्तदनेकभयनिवारकत्वेन दुष्टदलनादिकं स्वयमेव करोतीत्यर्थः । तथा सति पूर्वानुभूतलीलास्मरणमात्रेण विप्रयोगरसाभिनिविष्टत्वात्तद्द्रक्षाभिलाषकरणत्वेन माधुर्यविशिष्टदलनं प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा, श्रीगोवर्धनयागकरणत्वेनान्यसाधनराहित्याद् भक्तानां तथा निरोधकरणत्वेन स्वशरणागतानां रक्षामेव करोतीत्यर्थः । तथा सति यथेन्द्रहितकरणार्थमेव तद्दर्पदलनादिकं करोति तथास्माकमपि हितकरणार्थं मानादिदर्पदलनं करोत्वित्याशयेन दलनमेव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा, स्वस्य साक्षाद्रसात्मकस्वरूपत्वात्तत्कार्यानुगुणत्वेन लीलारसजनकत्वादधुना विप्रयोगरसानुकूलकव्यापारकृतिमत्त्वेन तादृग्रसानुभवकरणार्थं तादृशीभिः सह तथैव प्रार्थयन्तीति भावः कटाक्षितः ॥ एवं दलितमाधुर्यं निरूप्य फलितमाधुर्यं निरूपयन्ति **फलितं मधुर**मिति । भगवान्मधुर एव भक्तानां हृदि प्रतिफलित इति भक्तानुकूलकृतिकरणत्वेन सदानन्दवाचकत्वात् कृष्ण इति फलात्मकनामत्वेन तत्फलसम्पादनार्थमेव श्रीमन्नन्दराजभवने प्रादुर्भूतो जात इत्यर्थः । किंच, भक्तानां लीलामध्यपातित्वेन तत्सहितलीलासामग्रीः पूर्वं विधाय क्रीडास्थानत्वात् तत्करणार्थं श्रीमद्गोकुल एव पश्चात्स्वयं प्रादुरासीदित्यर्थः । किंच, लीलानां स्वरूपात्मकत्वात्स्वरूपस्य तदात्मकत्वादित्यन्योन्याश्रयत्वेनैव स्थितिकरणत्वाद्भक्तानां तन्मध्यपातित्वेन च तदाश्रयाधीनत्वादपि स्वस्य लीलाकरणमुचितमिति तद्रूपेण फलितमित्यर्थः । तथा सति भक्तानां फलसम्पादकत्वेन तद्रूपत्वेनैव प्रादुभूतत्वात्सर्वदा तदनुभवकरणत्वेन रसाधायकत्वात् तास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । अथवा, प्रादुर्भावानन्तरमपि स्वामिनीनां

भावपूर्वककटाक्षावलोकनादिभिः कृत्वैव स्वरूपपोषणं नान्यथेति तद्भावात्मकत्वेनैव स्थितिकरणत्वात्प्रतिक्षणपोषणत्वेन वृद्धौ सत्यां तत्रैव फलितमित्यर्थः । तथा सति परस्परसमानाधिकरणत्वेन तद्भावानुरूपफलीकरणत्वेन च तत्पूर्वानुभूतत्वात्तद्व्यतिरेकेण स्थातुमशक्यत्वाच्चाधुना तदनुभवकरणार्थं फलितमेवैताः प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा, उद्बुद्धश्रृंगाररसात्मकदशायामपि वेणुकूजनत्वेन नादामृतस्य स्वामिनीनां हृदये प्रविष्टत्वात्तदनुभूतत्वेन तथा स्वरूपाभिज्ञत्वेन तद्रसपानकरणत्वेन च मुखावलोकनं कुर्वन्तीत्यर्थः । किंच, अन्यासक्तिनिराकर्तृत्वेन स्वमानशीलानां संबोध्य यदनुभूतं स्वरूपं तदेव विज्ञापयन्तीत्यर्थः । तथा सति स्वभाग्याऽभिलाषपूर्वकांकुरितत्वेन स्वस्वभावसिञ्चनकरणत्वेनापि क्रमवशात्पुष्पानुभवकारणानन्तरं फलत्वेनेदमेव प्रतिफलितमिति भावः । अत एव 'अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदाम' इति स्वप्रियाभिस्तथैवोक्तमित्यभिप्रायज्ञापकत्वेन पूर्वानुभूतत्वादेतास्तथैव प्रार्थयन्तीति भावः । यद्वा, स्वस्य साक्षाद्रसात्मकस्वरूपसन्नियोगशिष्टत्वेन तत्फलानुभूतत्वात् प्रतिक्षणं तत्तत्स्मरणकर्तृत्वेन विप्रयोगरसाविर्भावित्वात्स्वयमपि तादृग्भाववतीभिः सह लीलाविशिष्टं फलितमेव प्रार्थयन्तीति भावः । अत एव 'लीलाभिः फलितं भजे व्रजवनीश्रृंगारकल्पद्रुम'मिति **प्रभुभि**स्तथैवोक्तम् ॥ एवमुपक्रमोपसंहारपूर्वकं धर्मविशिष्टमाधुर्यं निरूप्य धर्मिविशिष्टमाधुर्यं निरूपयन्ति **मधुराधिपतेरखिलं मधुर**मिति । सर्वदा तन्मध्यपातित्वेन लीलात्मकत्वाद्यत्राभेदकरणत्वेन स्थितिस्तत्र यन्मध्ये पातितस्तद्ग्रहणेन गृह्यत इतिन्यायाद्धर्माणां माधुर्यनिरूपणत्वे किं वाच्यमिति तदधिपतेर्भगवतो मधुराधिपतेर्यदखिलं लीलात्मकं तत्सर्वं मधुरमेवेत्यर्थः । तथा सति तद्रसास्वादपूर्वकं यथा भवति तथा विप्रयोगानुभावं तत्तन्माधुर्यं निरूपणात्मकं सर्वदा विभावयन्तीति भावः ॥

इति **श्रीवल्लभाचार्य**कृपया प्रकटीकृतम् ।
एतन्निगूढमाधुर्यं **मधुराष्टक**संज्ञकम् ॥ १ ॥

विट्ठलाधीशचरणाश्रयणात्सर्वदा मया ।
भावात्मकं हि माधुर्यं प्रत्यहं चानुभूयते ॥ २ ॥

तदीयानां हितार्थाय निश्चित्यैवं निरूपितम् ।
पश्यन्तु सर्वथा विज्ञा न तु तद्भावविच्युतः ॥ ३ ॥

श्रीवल्लभाधीशपदाम्बुजातात्सञ्जातभक्त्या विशदीकृतं यत् ।
तदेव माधुर्यमिहाद्भुतं वै मधुव्रतानां मधुराकृतीनाम् ॥ ४ ॥

॥ इति 'श्रीवल्लभविरचिता मधुराष्टकविवृतिः सम्पूर्णा ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।
श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।

मधुराष्टकम्

श्रीरघुनाथकृतविवरणसमेतम् ।

यन्नामरूपमधिकं माधुर्यैकनिधीकृतम् ।
तं नत्वा तन्मधुगिरं गायामि **मधुराष्टकम्** ॥ १ ॥

स्वरूपमात्रैकनिष्ठात्यन्तरङ्गभक्तानां स्वानुभवैकवेद्यं सपरिकरं स्वरूपमाधुर्यमधरादि प्रत्यङ्गगतमनुस्मृत्य विशिष्यावर्णनीयं पुनः पुनरनुभवार्थमनुवादपूर्वकं प्रार्थयन्त इवाहुः **अधरं मधुर**मिति ।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ १ ॥

---

१. इयं टीका **श्रीहरिरायाणा**मिति केचिद्वदन्ति, तन्नैव युक्तमिति । प्रतिभाति । **श्रीहरिराय**कृता अन्यैव **मधुराष्टकटीका** मत्सन्निधौ वर्तते यतः । **श्रीहरिराय**कृतटीका तु **श्रीमत्प्रभुचरणकृतमधुराष्टकविवृते**र्विवृतिः, इयं तु स्वतंत्रटीका वर्तते । अस्या भाषासाम्यं **श्रीगोकुलनाथप्रकटितसर्वोत्तमस्तोत्र-'बडी'टीकया** सह बहु वर्तते, अत एव इयं टीका **श्रीवल्लभ**कृतेति कल्प्यते ।

अत्र मधुरपदं सर्वत्र सर्वेन्द्रियास्वाद्यं रूपं लक्षयत्यधरादीनां, तेन दर्शनस्पर्शनपानचुम्बनदंशादिषु प्रार्थनीयं ममास्तु इत्यर्थः सम्पन्नो भवति । मधुरस्मिन्नस्तीति मधुरम् । ‘ऊषसुषिमुष्कमधो र’ इति रः, धरणं धर इति व्युत्पत्त्या धृ धारण इति धातो रूपम् । अच्प्रत्ययान्तमप्प्रत्ययान्तं वा । तेन यस्मिन् दृष्टे न धरो धैर्यादिधारणं यस्मादिति अधरम् । लीलावसरविशेषसम्बन्धि ज्ञेयम् । यथा लोके शर्करादिमाधुर्यमास्वाद्य मधुरमित्येव ब्रूते, न त्वनुभवनमपि, अशक्यत्वादेवमत्रापीति भावः ॥ **वदनं मधुर**मिति । पूर्वोक्तदर्शनादिक्रियाविषयत्वप्रार्थनमिदं वचनम् ॥ **नयनं मधुर**मिति । जात्यभिप्रायेण रसैक्येन वोभयोरेकवचनम् । अत्र यथोचितक्रियाविषयत्वमेव, न तु यावत्पूर्वोक्तविषयत्वम् ॥ **हसितं** भावोद्दीपनमुन्मादकं च । तच्च नयनमुखोभयसाधारणं ज्ञेयम् ॥ **हृदयं** श्रियैकरमणं वक्षःस्थल, तच्चालिङ्गनालङ्करणादिषु, विविधभावविशिष्टं मनो वा हृदयं ज्ञेयम् ॥ **गमनं** गोचारणचौर्याद्यर्थं निकुञ्जगृहं गन्तुं मानापनोदनाद्यर्थं च ज्ञेयम् । ‘रसो वै सः’ इति श्रुतेर्मधुररसात्मकस्वरूपस्याखिलं सर्वं यद् वक्तुमशक्यम्, [1]अवाच्यं गुह्यं वा । यद्वा, अखिलमन्यूनं पूर्णरसमिति यावत् तादृशमित्यर्थः । अन्यत्रापि ‘यद्यद् विभूतिमत् सत्त्व’मिति वाक्यात् तत्सम्बन्धाधीनमेव सर्वेषां माधुर्यम् । अतो **मधुराधिपते**रिति पाठः प्रकरणानुरोधादपि युक्ततमः । **मथुराधिपते**रित्यपि क्वचित् पाठः ॥ १ ॥

वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥

वचनं मधुरमिति । बालक्रीडायामव्यक्तमधुरमस्पष्टोच्चारणात् स्खलद्गीष्ट्वाद्वा । बाल्योत्तरकालीनं सार्वदिकमपि ज्ञेयम् ॥ **चरितं** चेष्टितं बालचरित्रं सकलचरित्रं वा । चौर्येण दधिनवनीतादिभक्षणं वा ॥ **वसनं** पीताम्बरं, कञ्चुकोष्णीषाद्याच्छादनं, नीपनिकुञ्जादिस्थितिर्वा ॥ **वलितं** वेष्टनं, भावे क्तः । क्रीडायां व्रजवधूनां दधिदुग्धजलाद्याहरणमार्गरोधनमित्यर्थः । रासमण्डले अन्यदा कदाचित् लीलावसरे ताभिर्वलितं रूपं वा । अस्मिन् पक्षे कर्मणि क्तः । भावेऽपि ज्ञेयम् ॥ केषाञ्चित् भक्तानामवस्थाविशेषमाज्ञाय तदर्थमकस्मात् सखीननुक्त्वैव यद्गमनं त**च्चलित**मुच्यते । भावे क्तः । पूर्वोक्तगमनाद् भेदकमिदमेव ॥ भ्रमणं वियोगकालीनेतस्ततोऽनवस्थया गतिः । यथा **श्रीगीतगोविन्दे** ‘हरि हरि हतादरतये’ इत्यादौ । ‘तव विरहे वनमाली’त्यपि । अथवा, [1]गवादीनामन्वेषणार्थं प्रतिगोष्ठं गमनम् । अथवा, प्रयोजककर्तृत्वविवक्षयाणिजन्तत्वेनान्येषां लोकवेदव्यवहारे [2]चित्तविक्षेपकरणं तदर्थमपि, अरण्यादिगमनं वा ॥ **मधुराधिपते**रिति पूर्ववत् ॥ २ ॥

---

[1] अव्ययमिति पाठः ।

वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥

वेणुरिति । असुरसुधापूरितो वाद्यमानो हस्तस्थितो वा, [3]सङ्केतस्थितभक्ताह्वानकरो वा ॥ सायं गोपुरःसरं व्रजप्रवेशसमये अलकव्याप्तगोरजांसि **रेणु**रित्युच्यते । तेन [4]तल्लक्षितकुन्तलानामपि ज्ञेयम् । यद्वा, ‘धन्या अहो अमी आल्य’ इत्याद्युक्तश्चरणकमलपराग एव रेणुः ॥ [5]**पाणि**र्गुप्तक्रीडायाम् । [6]‘तासामतिविहारेणे’त्याद्युक्तभक्तास्यमार्जनगोपृष्ठप्रोञ्छनगोदोहनादिषु[7] वा ॥ **पादौ** [8]भक्तहृदयदेशस्थापनवन्दननर्तनादिषु ॥ **नृत्यं** नाट्यं रासे वृन्दावने श्रीगोकुलादौ नवनीतभक्षणातुरतायां च ॥ **सख्यं** समानशीलव्यसनत्वम् । तच्चौर्यादौ ज्ञेयम् ॥ **मधुराधिपते**रिति पूर्ववत् ॥ ३ ॥

गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४॥

गीतं गानं तत्कृतं भक्तविषयकं, भक्तकृतं तद्विषयकं वा ॥ **पीतं** पानमधरादीनाम् । गोष्ठे गोपैः सह क्षीरपानं वा । वस्त्रगतं पिशङ्गत्वं वा ॥ **भुक्तं** भोजनं यशोदानन्दगोप्यादिकारितम् । निमंत्रितस्य गोपस्त्रीभिस्तद्गृहे वा । [9]भोजनावशिष्टं वा । श्रीगोवर्धनोद्धरणेन अनन्यगतिकभक्तरक्षणं वा ।

---

[1] अन्वेषणव्याजेनेति पाठः । [2] चित्तविक्षेपकरणमिति पाठः ।
[3] सङ्केतितेति पाठः । [4] कुन्तलमपीति पाठः । [5] मुक्तेति च पाठः ।
[6] रतीति वा पाठः । [7] पुच्छेति पाठः । [8] न्यासेति पाठः ।
[9] भोजनादिशिष्टे वेति भोजनाविशिष्टं च पाठः ।

सुप्तं शयनं निकुञ्जे किसलयकुसुमादिरचितशय्यायां कण्ठाश्लेषणादिप्रकारविशिष्टं वा ॥ **रूप**मादर्शादिप्रतिबिम्बितम्, [1]उरसि कुरङ्गमदादिलिखितं विचित्रं वा ॥ **तिलकं** ललाटे कस्तूरीचन्दनादिरचितं मुक्तारत्नादिमयं वा । दर्शनीयं **गोपिकागीतो**क्तं 'दर्शनीयतिलको वनमाले'त्यादिना ॥ **मधुरे**ति पूर्ववत् ॥ ४ ॥

करणं मधुरं रमणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥

करणं कृतिः स्वीकार इत्यर्थः ॥ **रमणं** रतिः बालक्रीडा वा ॥ **तरणं** प्लवनं यमुनाजले व्रजस्त्रीभिः सह, नौकया पारावारगमनक्रीडायां वा ॥ **हरणं** व्रतचर्यायां व्रजकुमारीणां वाससां, रुक्मिणीपारिजातादीनां वा ॥ **वमितं** अन्तःस्थितभावोद्गिरणं चर्विततांम्बूलादिदानम् ॥ **शमितं** शमनकरणं भक्ततापादीनां, दावाग्नेरासुरधर्मादीनां वा ॥ **मधुरे**ति पूर्ववत् ॥ ६ ॥

गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥

गुञ्जाफलानि भूषणादिषु ॥ **माला** वनमाला गुञ्जाया वा ॥ **यमुना** विहारावसरे । **वीचयो** [2]जलोत्क्षेपणक्रीडायां कमलादिभिर्वा ॥ **सलिलं** निदाघक्रीडाश्रमेण कालिन्दीजलपाने ॥ **कमलं** परस्परं प्रीतिप्रहारलीलायाम्, अलङ्करणादिषु वा ॥ ६ ॥

गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७॥

गोपी जात्यभिप्रायेण गोप्य इति ज्ञेयम् । सर्वत्रैव तासामेवंविधत्वम् ॥ **लीला** भावपूर्वकदधिमन्थने बाहुकटिनितम्बस्तनालङ्कारादिचाञ्चल्यकृतिः, तत्सम्बन्धिरासादयो वा ॥ **युक्तं** योजनमङ्गप्रत्यङ्गानां रहसि । यद्वा, **युक्तं** समाध्यवस्थानां 'पूर्वं यत्र समं त्वये'त्याद्युक्तप्रकारेण । अथवा,

---

[1] रहसीति पाठः । [2] लत्तोत्क्षेपणेति पाठः ।

युक्तं गोदोहनावसरे वत्सयोजनं गोपादयोः ॥ **मुक्तं** मोचनं, पूर्वोक्तवत्सादीनांम्, नीवीकञ्चुक्यादीनां वा । गाढमालिङ्ग्य सीत्कारपूर्वकं सन्तप्तभक्तानां तापं नाशयित्वा मोचनं, तत्क्रियात इति वा ॥ **दृष्टं** साकूतेक्षणम् । भगवतो भक्तानां च परस्परं प्रत्येकं च ॥ **शिष्टं** शासनं चौर्येण नवनीताद्याहरणाय यावदहं [1]यथेष्टमद्मि तावत् कोपि आयाति चेत् शीघ्रं मह्यं निवेदय यथा पलाय्य गच्छामि धर्तुं न शक्नोति न वदिष्यसि चेत् प्रहरिष्यामि चौर्याहृतमत्तुं न प्रयच्छामि इत्येवं बिभीषिकापूर्वकं एवंविधमाज्ञापनं गोपबालकेषु । यद्वा, 'गोप्यो गोरसविक्रयार्थमखिला' इत्याद्युक्तदानप्रसङ्गेन धर्षणाज्ञापनम् ॥ ७ ॥

गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

गोपा गवाह्वानादिषु । गावो हुङ्कारपूर्वकं भगवत्समीपमन्योन्योपमर्देन आगच्छन्त्यो दुह्यमाना वा । वेणुनादं श्रुत्वा [2]संवेद्यानिमिषदृग्भिर्निरीक्ष्यन्त्यो वा । **सृष्टि**र्वत्सवत्सतरीप्रसवबाहुल्यम् । **यष्टि**रुत्पथगतिनिवारणे पशूनाम् । दानप्रसङ्गे तासां निवारणे दधिकलशिकाभेदने वा । कदम्बमूले चरणावष्टम्भनेन स्थितौ वा ॥ **दलितं** विशारणं विकास इति यावत् । तन्मुखनयनादीनाम् । दैत्यदलनं वा, कामोपमर्दो वा ॥ **फलितं** आविर्भावः, भक्तानामपेक्षितैकान्तस्थले चित्ताभिज्ञतया प्राकट्यम् ॥ **मधुरे**ति पूर्ववत् ॥ ८ ॥

मधुराष्टकमाधुर्यमवधार्य [3]सुधाधनम् ।
निर्धनो धनितां याति न याति निधनं क्वचित् ॥१॥

इति श्रीमद्वल्लभनन्दनचरणैकशरणरघुनाथकृतौ मधुराष्टकविवरणं [4]सम्पूर्णम् ।

---

[1] अशितेति पाठः । [2] संवेष्टयेति पाठः । [3] सुधाधरमिति पाठः ।
[4] निगमतरोः प्रतिशाखं मृगितं परितः परं ब्रह्म । मिलितमिदानीमङ्के गोकुलपङ्केरुहाक्षीणाम् ॥ १ ॥ इत्यधिकम् ।

श्रीकृष्णाय नमः ।

मधुराष्टकतात्पर्यम् ।

स्वरूपगुणभेदेन द्विविधं गानमुच्यते ।
स्वरूपं तु रसानन्दस्तथा लीलासमन्वितः ॥ १ ॥

गुणास्तु भगवद्धर्माः स्वरूपोत्कर्षहेतवः ।
ते परोक्षे हि गीयन्ते स्वास्थ्यहेतुतयात्मनः ॥ २ ॥

स्वरूपं तु तदानन्दः प्रत्येकावयवैस्तथा ।
तत्तल्लीलाश्रयत्वेन माधुर्येण विभाव्यते ॥ ३ ॥

निरूप्यते समानेषु यदा स्थातुं न शक्यते ।
तदा तेनैव रूपेण विरहे तापसंयुतैः ॥ ४ ॥

निरूपणं रसस्यात्र माधुर्येणैव जायते !
तस्यानुभववेद्यत्वान्न रूपेण कथञ्चन ॥ ५ ॥

अतः संभूय ताः सर्वाः स्वानुभूतरसात्मकम् ।
वियोगभावैः स्वं भावं वर्णयन्ति हरिं तथा ॥ ६ ॥

तत्तल्लीलान्तरङ्गस्थाः स्मृत्वा स्मृत्वा तदंगकम् ।
अतो माधुर्यरूपेण रूपयन्ति परस्परम् ॥ ७ ॥

एकाधरं तथैवान्या वदनं नयनं परा ।
एवमग्रेऽपि विज्ञेयं संपूर्णं **मधुराष्टके** ॥ ८ ॥

अतदेवास्मदाचार्यैरतिगुप्तं निरूपितम् ।
तद्भावभावनं सिध्येदेतद्ग्रन्थार्थभावनात् ॥ ९ ॥

तद्बोधोऽपि **निजाचार्य**कृपया **प्रभु**कारितः ।
तादृशैर्ज्ञापितो वापि भवेन्नैवान्यथा क्वचित् ॥ १० ॥

इति श्रीहरिदासविरचितं मधुराष्टकतात्पर्यं समाप्तम् ।

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥
॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥
॥ श्रीमदाचार्य चरणकमलेभ्यो नमः ॥

अथ श्रीमधुराष्टककी टीका लिख्यते

अब श्रीगुसाँइजी प्रथम श्रीआचार्यजीकों नमस्कार करत हें काहेतें यह जो मधुराष्टक ग्रंथ हें सो श्री आचार्यजी आपु प्रगट भऐ हें सो अत्यंत मधुर रस रूप हें जिनमें मधुप जो सिंगार रस हें सो यह सब मधुराष्टक के भाव में भर्यो हैं। ताहीतें श्रीआचार्यजी आप मधुर रस के भोक्ता हें सो आप भोग सदां इंद्री करत हैं । और लोकन में प्रगट नही किये हें। सो रसकों गोप्य राखकें माधुर्य भाव मधुर-मधुर सवनकों वरनन कीऐ हें। सो ताकें भाव प्रकास करवे में अनुभव करिवें के योग्य हें। सों श्रीगुसांइजी आप प्रगट कीए हें। तातें जो प्रकार यह मधुराष्टक ग्रंथ श्री आचार्यजी महाप्रभू आप प्रगट कीये हैं सो मंगलाचरन के श्लोक मैं श्रीगुसांइजी आप वरनन कीऐ हैं। सों तामें यह कहे हें। जो श्री आचार्यजी महाप्रभून के चरणकमल के आश्रय बिना यह माधुर्यरस की प्राप्ति न होय। जो श्रीआचार्यजी महाप्रभून के चरण कमलको असों प्रताप हें तातें प्रथम मंगलाचरणकों श्लोक कहत हैं।

श्लोक—नमो हुतासिने मधुर प्रकाशन परायणः ।
रमा लीलमना योऽसि भाव नैकहितप्रदः ॥१॥

अर्थ—अब प्रथम श्रीप्रभून के चरनकमल को नमस्कार श्री आचार्यजी महाप्रभून के चरणकमल कों नमस्कार करत हैं सो कहत हैं। जो नमो हुतासने सो ताकों अर्थ तो यह हैं। जो श्री आचार्यजी महाप्रभून के स्वरूप विप्रयोगात्मक आधिदैविक जो अग्नि हैं तिनमें तों गुण

यह हैं। जो संयोग रस अम्रत ताकी प्राप्ति होत हैं। तातें जो कोई की विप्रयोगात्मक अग्नि महाताप रस जों श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप हृदय मेंते नाही आये। तहाँ ताई संयोगात्मक अमृतरस पुष्टिमार्गकों फल ताकी प्राप्ति नाहीं हैं। ताते विप्रयोगात्मक अग्नि के आश्रय संयोगरस हैं। सो रसरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु हैं। सों तातें मधुर अग्नि कहें सो काहे ते जो जीतनी मधुर सांमग्री होत हैं। सो अग्नि के संबंध बिना तो सिद्धि नाही होत हैं। सों तेंसेंई संयोगात्मक माधुर्यरस विप्रयोग रस के आश्रय बिना प्राप्ति नाही होतहैं। सों एसें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु विप्रयोगात्मक मधुर मधुर हैं सो जिनके आश्रय ते लीला के भाव रूप संयोगात्मक रसकी प्राप्ति होत हैं। सो ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप तो अलौकिक अग्निरूप हैं। तातें यह पुष्टिमार्ग परमरस रूप माधुर्य रस जामें हैं। ब्रजभक्तन के भावरूप अमृत सों अपने सेवकनकों दान करिवे के निमित यह रस प्रगट कीयो हैं। और श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो सदां लीलारस अमृत समुद्र हैं सो ता प्रेम सो भए हैं। सो विहार करत हैं। सो ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभून के कीये ग्रंथ तो महारसरूप हैं। सो काहे तें और जो वाणी है सोतो चतुराई करिकें है तथा कोंई जीवकी वानी देवतान के आश्रय करिकें है। सो तिनमें रसतों नाही है सो काहेते जो उनकों लीला रसकों अनुभव नाही हैं। और श्रीआचार्यजी महाप्रभून के कीऐ ग्रंथहैं सो आप श्रीठाकुरजी के संग सदाँ लीला करत हैं। सोई वचनामृत द्वारा दैवी जीवन के लीयें वर्णन कीए हैं सो तातें अत्यंत स्वरूप वचन हैं सो तत्कारनफल सेवकनकों सिद्ध होत हैं सो तामें यह मधुराष्टक ग्रंथ हैं सो प्रेम के रसकरिकें मत् होय हृदय में तेंरस उमग्यो है सो तों वाहिर प्रगट भयो हैं। सो तातें महागूढ़ रस सो एसो मधुराष्टक ग्रंथ है सो या प्रकार सों प्रगट भयों हैं। सो श्रीगुसाँईजी आप वरनन करत हैं। श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगोवर्द्धन पर्वत के ऊपर जहाँ आदि श्रीवृंदावन तहां रस रूपसों श्रीयमुनाजी सहित सदा विराजत हैं। तहां नीत्य लीला

प्रगट हैं। सो तहाँ श्रीगोवर्द्धननाथजी की मंगला आरती करिकें ता पाछें ता दिन श्रीस्वांमिनीजी के जन्म उत्सव की अष्टमी हती। तातें अभ्यंग अस्नांन करवायकें जन्माष्टमी कों सिंगार जा दिन करत हैं और अत्यंत रसमय सो उमग्यों सो प्रेम में विवस होयकें सगरें श्री अंगकों अनुभव हतों सो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु हृदय में कीऐ हैं। सो बाहिर गुप्तरीति सों प्रगट कहे हैं सो आगें मधुरं मधुरम के प्रसंग में कहेंगे। सो तातें यह तो मधुराष्टक जो ग्रंथ हैं सो ताकों अपने हृदय में गोप्य ए स्वभाव सहित पाट करें तो याको भाव श्रीआचार्यजी महाप्रभून की कृपातें सिद्धि होय सो तातें अपने मनके विचार करिकें देखें जो मेरो मन स्वास्थि पायो हैं एसों विचारकें रस के ग्रंथनकों भाव विचारें तो परम हितकों पावें नहीं तो भृष्ट होय जाय सों ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु सिक्षा के ग्रंथ वोहोत प्रगट कीए हैं। श्रीकृष्णाश्रय। नवरत्न भक्ति वर्द्धनी विवेक धैर्याश्रय। जलभेद ईन ग्रंथन कों पढ़े तो याकें विगार सर्वथा न होय। या प्रकार मंगलाचरन करिकैं दैवी जीवन कों सिक्षा दीये। अब श्रीगुसांईजी आपु मधुराष्टक के प्रथम श्लोक को भाव लिखे हैं सों अब अर्थभाव रहित हैं सो कहत हैं।

श्लोक–अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरं।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं।

याको अर्थ—अब प्रथम कहें जो अधरं मधुरं तामें नानां प्रकार के भाव हैं। श्रीठाकुरजी के अधर केसें हें अरुन सोभदित हें। सो तिनकी छवि देखिकें बिवाफल लज्या कों पावत हैं। एसें बिबाफल कों देखिकें सुक जो नासिका रूप सो ऊपर आयके वैठ्यो हैं परंतु एसी बिबाफल की छबि है जिनकों देखिकें सुकजो हैं सो अपनों देहानुसंधानु भूलि गयो है सो बिबाफल की छबि देखिकें मानों ठगि रह्यो है सो उठि नांही सकत। सो मानों बिबाफल की रक्षा करिवे कों बेठि रह्यों हैं। मति कहूँ दूसरो शुक आयकें विवाफल कों न लेय। एसों

अधर अद्भुत सरूप हैं और अधर अद्भुत स्वरूप हैं और अधर के ऊपर नासिका में वेसर हैं सों श्री ठाकुर जी के अधर ऊपर विहार करत हैं सो अत्यन्त सुंदर उज्वल हैं सो तिनकी अपार छवि हैं सो मानों मुक्ताफल नांही हैं सो मानों वंक परम सोभायमान आयो हैं सो दूरितें मनकों देखिकें अपनों भोजन जानिकें आये सों ताही समय चतुर धनुष जो भृकुटी हैं और नेत्रन के कटाक्षरूपी जे वांण हैं ताकों वंक के हृदय कों वेधे सोई वेसरिकें मोंतीमें मांनों कंचन परचो हैं जो या प्रकार वंककों हृदय वेधिकें नासिका रूपीकों खंभ हैं तहां वकरूपी चोरकों कंचनरूपी जेवरीसों बांधे हैं अथवा दूसरो भाव सुकजो अधर तिनकी रक्षा करत हैं तिनतें अपने मनमें विचारचो जो मति कहूं मेरो भोजन बिंबाफल लेयगो तातें सुकनें वककों हृदय वेधिकें अपनी चोंचको वेधि वांधि राखे । अथबा बक जो हैं सो नासिकारूप पोरियाके पायन परत हैं जो में अधुर रूप दरवाजे के भीतर हैं तहां मोंको जान दे में तोकौं कंचन देतहों सो सुक कंचन लेत नांही हैं सो परस्पर वातें करत हैं। और अथवा बिंबाफल जो अधर हैं । और करणमें मकराकृत कुंडल हैं । सो दोऊ जने मनमें भय पावत हैं । सो बिंबाफल तो यह जान्यो जो सुक मेरो बेरी आयो हैं । और मकराकृत कुंडलनें सुककों और वंककों कंचनरूप जेवरी करिकें बांधे हैं। ता पाछें कूप हैं । जो नासिकाकों रंध्ररूप तामें डारें और कूपको मुख छोटो और सुक वक पड़े सो दोऊ बांधे हैं। सो तातें उडिहूं नाही सकत और कूपमेंहूं नांही पडि सकत सो कूप ऊपर बेठि रहे है सो एसी सुक बंककी उपमा कही जों अब कहत हैं । सो फेरि अधर कैसे हैं । जिनकी छवि देखिकें श्रीस्वांमिनीजीकों स्नेह परमोतम उतम निरविकार सोंई मांनो मुक्ताफल उज्वल हैं सो श्रीठाकुरजी के अधरामृतकों पान करिकें ता पाछें मृत्य होंयकें गिरिवे लगे सो तब नासिकारूप जो खूटी हैं सो तिनकों पकरिकें घूमत हैं अथवा अधरामृत रसपान करे तिनकें तों मत ता होय सों तब खूटी पकरिवेकी सुधि कहां तहां अब कहत हैं। जो श्री स्वांमिनीजी तव मुक्ताफल रूप होय अघरामृतकों पांन कीयों तव देहानुसंधानु भूलि गई । सो तव श्रीठाकुरजी दयाकरिकें नासिकारूप जो अधर हें सो तहां बैठारि राखे तामें श्रीठाकुर जी श्रीस्वांमिनीजी सौं यह जताई जो तुम्हारी अधरामृतकों पान कीयो हैं सो तिनकों त्यागमें कैसें करो तामें मेरी अधररसको सिज्या हैं। नासिकारूप घरसों तामें तुम सदांई विहार करो। और श्रीठाकुरजौनें श्रीस्वांमिनीजीसों यह जताई जो तिहारे अधरामृत रसकों पान मोहूंको करनों हैं सों तातें मोंकों तिहारे विना एक क्षणहूं कल नाही परत हैं। तातें यह मेरे नासिकारूप जो घर हैं सो तामें तुम सदांई विराजो यह भावसु चित कीयो सों या भांतिसों कहिकें नासिकामैं श्रीस्वांमिनीजीकों भावरूप परम उज्वल नासिकामें राखिकें अपने अघररूप जें सैया हैं सो तहां विहार करावत हैं सों एसें अघर हैं। और एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप श्री गोदर्द्धननाथजीकों सिंगार करत हें । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी हँसि हँसिकें जेसो मनोरथ कहे वस्त्र आभूषण कहे जो ताही भाँतिसों श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप धराऐ हैं । सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीआचार्यजी महाप्रभून सों कहें । जो व्रजभक्त मोंकों अति सुख देत हैं। सो तातैं मोकौं प्राणप्रिय हैं। तेंसें तुम मोंकों बोहौंत ही सुख देत हों सों ताही प्रकार तुम मोंकों सुख देतहौं। तातें तुम्हारे बिना और व्रजभक्तनके बिना एकक्षण हूँ रहि नाही सकत हूँ सो तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप यह सुनिके मंद मुसकायकें अत्यंत स्नेह करिकें श्रीगोवर्द्धननाथजीकें कपोलकों परसकरिकें ता पाछें श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु श्रीस्वाँमिनीजी की ओर दुरितें कटाक्षकरिकें देखें तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप देखें सो काहेतें जो आपुहूँ श्रीस्वांमिनीजी के भावरूप हैं। सो श्रींआचार्यजी महाप्रभूकों देखतई मानों कोई कंचनकी अद्भुत सत्ता श्रीअंगकों चाकचिक मानों कोटि-कोटि कंदर्प कोटि-कोटि दांमिनी

कोटि-कोटि रतिलज्जाको पावत हैं । कमलाजो लक्षमी सचि जी सीय जो श्रीरघुनाथजीकी प्रिया ईत्यादिक सब लज्जाकों पावत हैं एसे रसरूप तों श्रीस्वांमिनीजी पधारे हैं सो मांनों कोई सिंगार रस आपुहूँ स्वरूप धरिकें मानों मत्त गजराजकी रीतिसों मत्त हीयकें घूमत लटकत तांबुल श्रीमुखभरे धीरे-घीरे आभूषणकों गुढ़ा करिकें श्रीगोवर्द्धननाथजी की दृष्टिसों वचायकें पाछेंतें आयके श्रीगोवर्द्धननाथजी के श्रीमुखकमलकों चुंबन कीये सो पीककी छाप कपोलन ऊपर दोऊ औष्टमें जो रस ताकी दोय लोंककी छाप लागी हैं। तामें छिदलात्मक स्वरूपकों दोऊ लिक प्रगट करिकें जताये सो रसरूप श्री गोवर्द्धननाथजी के कपोलमें कृपा देखिकें श्रीस्वांमिनीजी आपुहूँ प्रेमसों विवस होय रही और श्रीगोवर्द्धननाथजीहूँ चक्रत होयकें निहार रहे। रसके भरकरिकें ऊपरते रंचकहूँ लजित भए । हृदयके भीतर तो परमरसकों आनंदकों समुद्र हैं सो उमापोसों तब यह छवि देखिकें श्रीआचार्यजी महाप्रभूजी के हृदयमें परम आनंद भयों ; सो प्रेमकों अनुभव करिकें भीतर सब रसको अनुभव करिकें ता पाछें रस बाहिर उमग्यों तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू यह कहे जो अधरं मधुरं नाम अधर व्रज भक्तनके अनुभवमें अत्यंत मधुर हैं सो सब रस कें भोक्तातो श्रीआचार्यजी म्हाप्रभू आपु हैं सो काहेते जों अधर तों मधुर अमृतरससों भर्यों सदाँही है परंतु आजु अत्यंत माधुर्यरस सहित सब लीलाकी स्मरण करावत हैं सो सोभां देत हैं फेरि श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप अपने मनमें विचारे जो तिनके अधरकी सोभा देखेतें एसों सुख उपजत हैं सा अधरकों पांन जो करत हैं सों तिनकों आनंद कह्यो न जाय सों एसें हृदयमें विचारकें प्रेम दिसमैं विह्वस होइकें आपुश्री आचार्यजी महाप्रभू श्रीगोवर्द्धनगाथजीकों सिंगार करत भीतर तों आपुहूँ श्रींस्वांमिनीजी रूप हैं सों तातें इनहूतें रह्यो न गयो सो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपुहूं अधरणकों चुंबन कीयों सों आपहूँ

अधरामृत के अनुभव करिकें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप श्रीमुख तें कहे जो अधरंमधुरं जेसे कोई मधुर वस्तु को खाय है तिनके अंगों में भावात्मक रस हैं तिनको श्रीआचार्यजी महाप्रभू के वचन सब अधरामृतरसरूप ही जांनिकें कहिये सुनिये । सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मुसिकायकें श्रीआचार्यजी महाप्रभून के हृदय में लपटि गऐ हैं सो श्रीगोवर्द्धननाथजी आपुको अधरबिंब सदांई मधुर हैं परन्तु श्रीस्वामिनीजी के मुखारविंद के रसकी पीक तिनकी छाप जो अधरबिंब में लगी सों तातें अधरबिंब अत्यंत सोभा देत हैं सो श्रीस्वांमिनीजीं हूँ नित्यई श्रीगोवर्द्धननाथजी कें सिंगारसमें पधारत है सों अपने मनको जो मनोरथ हैं सोई सिंगार श्रीआचार्यजी महाप्रभू द्वारा धरावत हैं और सिंगार भोग की सांमग्री हैं सोऊ श्रीस्वांमिनीजी के मनोरथ की हैं तातें श्रीस्वांमिनीजी तो नित्य पधारिकें मध्यांन समय कों संकेत श्री गोवर्द्धननाथजी कों जनावत हैं तातें आजु यह अपने मनमें आई जों आपुने मुखमें जो तांबूलरस सोई सुंदररस रंग भयो और श्रीमुखारविंद जो अपनो हें सो ईछारूप मुखकमल तांबूल रसरूप रंग मैं भरिकें श्रीगोवर्द्धननाथजी कें अधररूपो कागद हैं सो तामें छाप मोहोर दीनी हें सो तामें यह भाव सुचित कीऐ हें जो राजभोग पीछें गाय चरावनकें मिसि करिकें निकुंजमैं पधारियों जो में हूँ तहां आऊँगी जो या प्रकार हू संकेत जतावत हैं । अथवा श्रीस्वांमिनीजीनें जांन्यों जो श्रीठाकुरजी जो हैं सों अनेक कोटानकोट युथ प्रति जो ब्रजभक्त हैं सो तिनके मनकों हरण कीऐ हैं एसों अपने मनमें विचारकें सब ब्रजभक्तनकों यह जताये जो श्रीठाकुरजी आप हमारे बस हैं और के अनुभव में वेगी आवेंगी नाही है एसें तिहारे वस नांही हैं कदाचित कोंऊ व्रजभक्तन के घर प्रेम वस तो श्रीठाकुरजी आप पधारत हैं सो ताहू में श्रीस्वांमिनीजी बिना तो रहत नाहीं और द्विधा सरूप करिकें सबनकों दान हैं सो तातें ललित त्रिभंग ग्रंथ में श्री गुँसाईजी आप लिखे हैं जो यह ललित त्रिभंग स्वरूप

परम रस रूप ही हैं तों तिनकों अनुभव एक श्रीस्वामिनीजी ही जानत हैं। और आपुन हित करत हैं। जो उनहीके अनुभव योग्य हैं। उनहीके लीए यह रस प्रगट भयो हैं तातें और जो व्रजभक्त हैं तिनकों श्रीस्वांमिनीजी के चरणकमलकी सेवन करें तो ईनके आश्रयतें सेवनके रसकी प्राप्ति होय। सो या प्रकारतें अधरं मधुरं मधुरकों व्याख्यान कीए। अथवा अब मधुर पदक हैं सो ताकों अर्थ यह हैं जो सकल इंद्रीनको स्वाद होय परम संतुष्ट पावें सों ताकों मधुरपद कहिए। जेसें कोई भूखो होय और सुंदर महाप्रसादकों मिलें सो तव वाकी सकल इंद्रीय संतुष्ट होय तब यह सब सामग्रीन कों वासों न कीयो जाय। यह अत्यंत मधुर कहूं तेसें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु श्रीगोवर्द्धननाथजीकों स्वरूप देखिकें वारंवार प्रेममें विवस होयकें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपश्री अंगकें वरणन करिवेकी सुधि तो रहत नाही हैं। सों अपार जिनकी सौंदर्यता तिनकों श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप पाँन करिकें नेत्रद्वारा जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु श्रीगोवर्द्धननाथजीकों परम रसरूप हैं ताकों पान करिवेंसों अत्यंत मधुर नाम मिष्ट हैं। यह रसतातें सर्व इंद्रीय श्रीआचार्यजी महाप्रभूनकी सीतल भई हें। सो ताहीतें जो श्रीगोवर्द्धननाथजीके जो श्रीअंग हैं तिनकों मधुरं मधुरं करिकें वरनन करत हैं सों तामें प्रथम कहे जो अधरं मधुरं सो तामैं तों अनेक भाव हें। सो काहेते जो प्रथम अंगवस्त्र छोड़िकें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु अधरं मधुरं कहे तों ताकों अभिप्राय कहा सो अब कहत हैं जो अधरमें तों अनेंक भाव हैं प्रथम तो दर्शन ता पाछें परसन ता पाछें चुंबन ता पाछें अधर रसकों पान हैं। सो या भांति सों प्रथम अधर रसकों वरनन करत हें सो काहेते जो प्रथम जब श्रीगोवर्द्धननाथजौकों दर्शन श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपुनें कीयों सो तब प्रथम ही मुखारविंदकों दर्शन भयों सो तामें प्रथमतों अधरनके ऊपर दृष्टि गई सो प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु अधरं मधुरंम ही कहें। सों अधर

श्रीठाकुरजी कैसें सुंदर हैं जीवको देखिकें बिंबाफल लज्जाकों पावत हैं और बंधूक जो हैं दुपहरियाकों फूल सो लज्जा पावत हैं। मानों प्रातकालके सूर्य ऐसी अरूनमा हैं सो प्रथम श्रीयसोदासी हें मों प्रातकाल सेजसों उठायकें अपनी गोदमें ले श्रीमुखारविंद देखत हैं सो ता पाछें अधर चुंबन करत हैं पाछें मंगलाभोग परम प्रीतिसों अंरोगावत हैं। पाछें व्रजभक्त आवत हैं सो श्रीमुखकों दरसन करत हें। तव रात्रि अंजन अधरनमैं लगि रह्यों हैं सो देखिके अत्यंत सुख पावत हैं अनेक भांतिसों रक्षादिक हास्यादिक करत हैं ता पाछें तेल लगाइकें मांन श्रीठाकुरजीकों करावत हैं ता पाछें सिंगार करिकें सिंगार भोग अरोगावत हें सों ता पाछें ग्वालभोग आरोगीकें पाछें जब राजभोगकों समय होत हैं तब राजभोग आरोगकें गाय लेकें वनमें पधारत हैं सीतवंत हो छाक श्रीयसोदाजी पठावत हैं सों आरोगकें श्रीठाकुरजी आपुनिकुंज मंदिरमें सेंन करिवेकों पधारत हैं। सो तहां अनेक भांतिनसों व्रजभक्तनकों सुखदेत हैं सो तव अधरजो हैं श्रीठाकुरजी के तिनके स्पर्श करिकें चुंवन करत हैं। ता पाछें परस्पर जों अधर रसकों पान सों पर प्रीतिसों करत हैं। सो तामें जो उनमत होत हैं सो कछू दोऊ सरूपकों सरीर की सुधि रहेत नाही हैं सो काहें तेजो परम प्रेमके वस होयकें अधर रसकों जो अमृत हैं सो ताकों पान वस होयकें अधररसकों जों अमृत हैं सो ताकों पान करत हैं। ताहींतें श्रीआचार्यजी महाप्रभू प्रथम अधरनकों देखिकें भांति भांतिके भावकी स्फुरती भई हें ताहीतें हृदयमें ते प्रेमकों अधिक जो उमग्यो तामेंकू स्फुरती भई हें ताहीतें हृदयमें ते प्रेमकी कछू सरीरकी सुधि रही नही सो तातें श्रीआचार्यजी मपाप्रभू आप इतनों ही कहे। अधरं मधुरं। जो में अबमें कहां तांई वरनन करो। अपरंपार हें जो सोभा जाकी ऐसी अधरं मधुरं और एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभू अपने प्रातकाल श्रीठाकुरजीके दर्शन कीए सो परम गदगद हृदय होय

आयो । सों ता समय श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप यह सोभा देखे सो श्रीठाकुरजी के तो आरक्त नेत्र हैं। निकुंज मंदिर तें भोर उठिकें चले हें सो अधरन में मानों बीज भक्त हें सो तिनकों अंजन लग्यों सों आरक्तता ओर स्यामता हैं सो मानों परम अनुराग की सुजनता करत हें जो या भांति की अद्‌भुत सोभा श्रीठाकुरजी की देखिकें प्रेम के आवेस में कहे। जो अधरं मधुरं यह कहे जो या भांति सों निरूपन भयो अब आगें ओर हूं कहत हैं। जो वदनं मधुरं कहे जो याको तो अर्थ यह है जो वदन कहिये मस्तक समस्त मुखारविंद कों नाम है। सो जेसें चंद्रमाकों सूर्यकों देखिकें कहियें जो यह चंद्रमा सूर्य हैं परंतु चंद्रमा सूर्य के मुख नासिका करन कछु दीसत ही हैं। सों काहेते जो कीरण में तेज होत हें सों तेंसें यहां कोटि कंदर्प लावन्य जिनकी छवि पर कोटि चंद्रमा सूर्यकी वारिमैं। अैसें श्रीठाकुरजी के श्रीमुखारविंदकों भक्तजन देखिकें विवस होत हैं जो यह तो सुद्धताही रहत हें जो न्यारे-न्यारे अङ्गनकों अविलोकन करि सकें सो तातें समस्त श्रीमुखारविंदकों देखिकें कहे जो वदनं मधुरं और एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु पृथ्वी परिक्रमा करत श्रीगोकुलकों पधारे सों तहां श्रीगोविंदघाट हैं सो तहां छोकर पीपर के वृक्ष तो भगवद स्वरूप ही हैं सों तहां एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो पोढे हते सों जीवन के उद्धार के लीये चिंता करत हें सो अर्द्धरात्र के समय आप श्रीठाकुरजी कोटि कंदर्प लावन्य साक्षात् मनमथ के मनमथ एसे प्रगट होयकें श्रीआचार्यजी महाप्रभूनकों आग्या दीये जो तुम जीवनकों ब्रह्मसंबंध करवावो सो श्रीमुखकमल को दर्शन करिकें ता पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप "वदनं मधुरं" कहे । अथवा वदन कमल की अलकावली कपोल चुंबक गंडस्थल इनके मध्य में वदनं मधुरं के भीतर तो सब भाव कहे तहां चिवुक जो श्रीचंद्रावली जी के श्रीअंग के भाव सों विराजत हें सो ताहीतें चिबुक ऊपर हीरा को आभूषण श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु धरत हैं सो श्रीचंद्रावली जी सेत उज्वल लीये श्रीअंग हें सो ऊपर

कहे हैं। श्रीठाकुरजी बेसर धरे हैं नासिकामें सो तो श्रीस्वांमिनीजीके भाव हें सो ताकों अभिप्राय कहत हैं जो मुख अधरामृतको रसको अनुभव करिवेके जोग्य हें सो ऊपर वरनन कीए सो तिनते उतरतो मुख्य चंद्रावलीजी हैं सो तातें श्रीस्वांमिनीजी अधरके ऊपर विराजत हें नासिकाके वेसररूप और श्रीचंद्रावलीजी अधरके नीचें विराजत हें सो ताकों भाव तो यह हें जो श्रीस्वांमिनीजीके पांन करें ता षाछें श्रीचंद्रावलीजीकों रसपांन करिवेकी योग्यता हें सो काहेते जो सर्व अधरामृतकों अनुभव श्रीस्वांमिनी करत हें सो पांन करतमें रसके अधिक करिकें जो श्रीठाकुरजीके मुखकमलमेते रस वहत हैं सो चुबुकपर आवत हैं तातैं इनमैं यह भाव विचारनों जो मुख्य श्रीस्वांमिन जी तातें उतरकें मुख श्रीचंद्रावलीजी हैं तिनतें उतरते ओर भक्त हें तिनकों आगें निरूपन करत हें जो कपोल धर श्रीस्वांमिनीजी तातें उतरिकें मुख्य श्रीचंद्रावलीजी स्यांम अलकनमैं अविर्भाव जाननों सो काहेते जो श्रीस्वांमिनीजी के मुख कमल हैं । तिनमें भृमर नाना प्रकारके गुंजार करत हें तेंसेंई यहां श्रीठाकुरजीको मुखकमल हैं । अधरामृत भीतरसोंई रस तहां अनेक भक्त भ्रमर अलकावली रूप विलास करत हैं रसपांन करिवेके लीयें तेंसेंई श्रीयमुनाजी अलकावलीरूप होय मुखकमलमें विहार करतहैं तहां श्रीयमुनाजीमें प्रीति आदि करत हैं तहां श्रीयमुनाजी सो तेसेइं यहां अलकावलीके निकट मकरादिकुल अनेक आभूषण हैं अैसे वदनकमलकों देखिकें वदनं मधुरं कहे सों तामें तो अनेक भांतिके भाव हें सो काहेते जो वदन कहियें सो मुखारविंदकों नाम हैं सो श्रीमुखारविंदमें केसें प्रभाव हैं । सो जहां रासपंचाध्याईमें श्रीठाकुरजी आप अंतरध्यान लीला कीऐ हें ता पाछें श्रीगोपीजन ढूंढत-ढूंढत पुलिनमें आयके रूदन कीयों हैं । सों तहां श्रीठाकुरजीतों आप प्रगट भऐ सो साक्षात् मनमथ एसों परम सोभासंयुक्त हें सो व्रजसुंदरी उठिकें अपुने वस्त्र वेही श्रीयमुनाजीकी पुलिनमें छिपाय

दीयें । तापर श्रीठाकुरजी व्रजभक्तनकें प्रेमके वस हें तातें विराजे व्रजभक्तन के अनेक जूथ हें सो श्रीठाकुरजी कों घेरिके चारघो दिसा वेठें ता समय एसो श्रीमुखारविंद परमसोभा संयुक्त हें सो परम प्रभाव हें । जो सव व्रजभक्तन के सनमुख श्रीमुखारविंद हैं सो व्रजभक्त श्री मुखारबिंद की शोभा देखिकें विवस होत हैं सों तातें मुखारविंद परम मधुर हें और श्रीठाकुरजी आप जब गाय लेंके सांझ समय ब्रज में पाव धारत हैं तब श्रीयशोदाजी गोरज जो श्रीमुखारविंद पर लागी हें तिनकों झारिकें अंचल सों, पोंछें मुख चुंबन करत हैं सो ता समय मुखारविंद की शोभा अत्यंत प्रिय होत हें सो काहेतें जो गाइलेंकें श्रीठाकुरजी वनमें गए हते सो विरह हतों तातें जब देखें तब नित्य नौतन अनुराग श्रीयशोदाजी कों होत हैं और सगरे श्रीअंग में मुखारविंद ओष्ट हें जो परम शोभायमान हैं सो तातें अत्यंत मधुर हें जो श्रीमुखकों दरसन करत हें तिनकों तीनों ताप निवर्त होत हैं और श्रीमुखारविंद कैंसो हैं जामें व्रजभक्तनकों मनरूपी जो कोई भ्रमर हें सो श्रीमुखरूपी जो कमल हें तामें लुभ्यायकें पान करत हें जों या भांति सों वदनं मधुरं कों अर्थ निरूपन भयो आगे अब औरहूं कहत है। जो नयनं मधुरं तामें तो भांति-भांति के अनेक भाव हें कोइक समय श्री ठाकुरजी वेनु वजावत हें ता जमय नेंन की परम सोंभा होंत हैं और कबहूंक तो वेनुकी और दृष्ट परत हैं और कबहूंक तों कटि पर दृष्ट परत हैं और कबहूंक तों कटि पर दृष्ट परत हैं और कटिपर कबहूं वनमाला पर दृष्ट परत हैं कवहूंक तिरछी चितवनि करिकें व्रज भक्तनकें ऊपर दृष्टि जात हें सौ कहतें जो वेनु वजात हें तासमें श्रीठाकुरजी टेडे होत हैं औरत्रिभंग स्वरूप हें सो श्रीठाकुरजी के नेत्र कमल अत्यंत अनिर्वचनीय हैं मनसों और वचन सों अगोचर हें सो काहेते जो एसी सोभा नेत्र कमलहैं सो सब रस मनसों सगरो कहां तांईलिख्यो जाय असे छोटों पंछी है सो समुद्ररूपी रसकों कहां तांई पान करें ओर इतनी बुद्धि कहां तांई जो नेत्र कमल की सगरी सौंदर्यताकों वर्णन करें सो तातें मन वचन बुधितें अगोचर हें तातें उन नेत्र कमल के रसकों अनुभव करिवेकें जोग एक व्रजभक्त ही हैं जो और तों दूसरो कोई नहीं है सो काहेतें नेत्रकमलमैं ते कोईक लावन्यांमृत झरत हे सो रसकी माधुर्यता कौ भरहें सो ताकों तब अनुभव होइ तव व्रजभक्त सुंदरीन के नयन भीतर होय देखियें तब नेत्र कमल की सौंदर्यता की सोभाको अनुभव होय सो काहे ते व्रज सुंदरीन कों हृदय कमलरूप हैं सो मांनो कोई कटोरा हें जोये नेत्र द्वारा श्रीठाकुरजी के नेत्रकमलनको जो रस हैं सो ताको पीकें अपने हृदयरूप जो कटोरा हें सों तामें धरत हें एसों प्रेम ब्रजसुंदरीनकों और इतनों काहूं को सामर्थ कहा हैं जो श्रीप्रभूजी के रस को पान करें ताईतें श्रीठाकुरजी आपु श्रीव्रजसुन्दरीन के वस हें सो एसो उतम प्रेम व्रजभक्तनको है । फेरि नेत्रकमल केसे हैं जो नेत्रके गर्भ असंख्य वधाजही कहें सो कंदर्पके भावसूचक रससों भरे हैं। और नेत्रकमल केसे हैं अत्यंत तरल चंचलतम हें सो तिनकी चंचलता मीन देखिकें लज्जा पावत हें । जो एसे चंचल परमरस सहित हैं उनकी उपमा जो दीऐ सो वेलिरस है । और जड़ है सो जहां रस नहीं है । और श्रीठाकुरजी के नेत्रकमल हें सो तो परम रसरूपी हैं सो एक श्रीस्वांमिनीजी को मुखारविंदरूपी जो कमल हें तिनकों देखिके चंचलता भूलि जात हैं। उनकों मुखकमल देखिकें विवस होयके थकित होत हैं । और पलकहूं परत नाही हैं । जो या भांतिसों टकटकी लगायके श्रीस्वांमिनीजी कों जो मुखकमल है सो तहां भ्रमर की नांई सुभाय के रसपान करत हें फेरिके श्रीठाकुरजी के नेत्र कमल केसे हें परम सचिकन निर्मलसो हें सो मानो नेत्रद्वारा प्रगट होत हें । सो एसी सोभा संयुक्त नेत्र कमल श्रीठाकुरजी के हें फेरि श्रीठाकुरजी के नेत्रकमल केसे हें सो श्रीठाकुरजी आप जब वेणु वजावत हें सों तव अनेक भांति की तांन लेत हें सोई ता भांत के समुद्र हें ओर नेत्र तामें चारघो ओर परम सोभा पावत हें जोई मागनो भांति भांति की तरनी चउ चहों सो एसों नेत्र को अंजलता समय होत हैं। ता समय श्रीठाकुरजी के नेत्र कमल कर चंचल हैं के

अथवा स्थिर हैं जो या बातको निरधार करिवेकों कोऊ सामर्थ्य नांही है। सो काहेतें जो जा समय वेनु बजाऐ हैं श्रीठाकुरजी आप ता समय श्रीयमुनाजीकों प्रवाह थकित ह्वें रह्यों हैं। और श्रीगोवर्द्धन जो हे सो प्रेमसों पुलकित होत हें और आदि जो पशु हैं जी अन नाहीं खात हैं और देवांगना जो हें सो तो मूर्छित होत हैं और पंवन तो नाहीं वहत हैं जो चंद्रमा सूर्यको रथ तो नाही चलि सकत हें और ब्रजभक्तनकों तो सरीर की सुधि नाहीं है जो उलटे आभरण वस्त्र पहरत हैं। जो ता समय निश्चय करें जो श्रीठाकुरजीके नेत्र तो चंचल हैं के स्थिर हैं ऐसै जांनिकें धारणाशक्ति काहुमें नाही हैं सो जेसें अधाधारन फिरकी फिरत हें के अथवा टाढ़ी हैं सों तेसे ही वोहोत वेग करिकें अंचल की तरल ताई ने जांनिवेकों सामर्थ्य तो काहूंको नाही हैं कें अंचल स्थिर हें के अथवा चंचल हें एसें नेत्र परम मनोहर सोभायमांन हें फेरि श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे हैं। मंद हांस्यामृत चतुर होय जाई सो लिखिही जाई जो एक ताद्रस धर्मयुक्त नेत्र कमलकेसे हैं। जो स्मितामृतकों भर जो कोंई व्रजभक्तनकें आत्मा तों एक श्रीठाकुरजी हैं। एताद्रस व्रजभक्तनकें प्राणनकें पोषण एहि नेत्र कम हैं। जब जब परम विरह व्रजभक्त करत हैं सो तबही नेत्रकमलकों स्मरण होत हैं सोई मानों पोषण करत हैं जो ऐसे श्रीठाकुरजी के नेत्रकमल हैं सो प्राण और श्रीस्वांमिनीजीके प्राण हृदयके हरणहार ता पाछें परम रसरूप अमृत हैं सो तामें लीन होत हें सौ तहां साथन हें सो कहत हैं जों एकतो भृकुटिरूप जो कोई परमसुंदर धनुष हैं सों तहाँ नेत्र कमलरूप जो कोई महातीछन बान है सो ब्रज भक्तनको मनरूप जो कोई पंछी हैं सों ताकों हरि लेत हैं तहाँ भृकुटीरूप धनुषकों ओर नेत्ररूपकों स्वकहुं दया नाही है सो काहेते जितनी ब्रजकी स्त्री हैं सो जब घरके काम काजकों वाहिर निकसत है तब श्रीठाकुरजीकें भृकुटीरूप जो धनुष हैं और नेत्ररूप जों कोई महातिछन वांनहें

तिनकों व्रज सुंदरीनकों कटाक्षनसों मारत हें सो ब्रजवधू घायल होयकें विवस होत हैं सों तातें भृकुटीकों ओर नेंत्रकों दया होत नांही है जो ए दोऊ निर्दई हैं एलें नेत्रकमलमें तो परमगुण हें फेरि श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल कंसे हें जो जामें परम रसरूप चारि समुद्र हैं। सो चारचों परम रसाल हैं सो तहां गंभीर हैं एकतो मंद हास्यामृतको रस समुद्र हैं ॥ १ ॥ तां ऊपर दूसरी कोटिरमादि रस समुद्र ॥ २ ॥ तीसरो चापल्यामृत रस समुद्र हैं चोथों अरूणमामृत रसकों समुद्र हैं ॥ ४ ॥ एह चार धर्मरूपाम्रत तिनके रस ममुद्र विखें एकही बार डूब्यो होयतो ए ब्रजभक्त क्यों करिके जीवत होयंगे विन-विन ब्रजभक्तनकों तेंसोई सहज सुभाव परि गयों है जो ए ताद्रस चार समुद्रके रसमें वूड रहे हे सो तातें जीवत हें जो क्षन एक बाहिर निकसें तो मीन की सी नाई मरिजाय एसें रसके चार समुद्र हैं सो केसे हैं तिनके रसपाँन करिवेमैं ब्रजभक्त कहा साम्र्थ हैं एसों ओर मे सामर्थ हैं नाही जो एसे श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल हैं फेरि श्रीठाकुरजीके नेत्रहीकों विसेशण कहत हैं जो श्रीठाकुरजीके नेत्रकमलके विचमें स्याम तारा हैं तिनकें आसपास तो स्यांमडोरा हैं। दोऊकों नेनमें डोरा स्वेत नाही हैं सों तो कहा है ब्रजभक्तनकों परम निर्मल जो उज्ज्वल भ.व हैं सोई परम सोभायमांन है। तातें दोऊ नेत्र तो आरक्त परम सौभायमांन ही हैं ताते दोऊ कक्षपरम चंचल तासों सोभा देत हैं और श्रीठाकुरजीकें हृदयकमलमें जो परम सुंदर भाव है रसके समुद्रसों नेत्ररूप जो कोई दरवाजों हें सो तातें परम सौंदर्य झलकत हें और दाद्र ऊपरके पलकें पलकहैं सो तो द्वारके किवार हैं सो काहेते जो जारसकों दांन नही करावनो होय तव पलक रूप जो किवारनकों लगाइ लेत हैं। जेसें पुजावें सों तव श्रीठाकुरजी आप नेत्र मूदि लेत हैं सो काहेतें जो रसको पांन नही करावनो है। और ब्रजभक्तनके आगें पलक

लागत नाही हैं जो दोऊ दरवाजे खुले रहत हैं सो कल परत नाही हैं ताते ब्रजभक्त परम सौंदर्यंरूप जो रसहैं ताकों पान करत हैं जो एसे श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल हैं एसे नेत्र के सो तो नित हैं जो कमल हैं तिनकी सोभाकों जीतिके कमलकों तुच्छ करिके डारे हैं और नेत्रमैं कांमरूप जो यहां सुंदर कंदर्प हैं सो ताहुंको जीतिके तुच्छ करिके डारे हैं ताते कमलतो जायके मारे भयकेमारे तलावमें छिप्यो है और कंदर्प जो है सो तो मूरछाट नायके धरतीमें गिरचो हैं सो तव रति जो हैं कांमकी स्त्री हैं सो अपने घर ले आयके अमृतपांन करवायके फेरि जिवायो हैं सो ताते कामदेव तुच्छ हैं और खंजनकौं जीते हैं सो ताते खंजन जायके वनमें छिपे हैं सो चहुं वनते हिय नाही हैं और मीनकों जीते हैं सों मीन लज्जाको पायके जलके भीतर छिप्यो है सो मारे भयके वाहिर निकसत नांही हैं जो एसे श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल हैं सबकों जीतिके आपु आनंदमें विराजत हैं जो फेरिके श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल कैसे हैं निकट देहके भरते सिध तासचिकनता ओर मुग्धता मुग्घ भावती सुंदर हैं अपवासहज सुभावरूप हैं जो कोई परम चमृर्य हैं सों ता सहित विराजत हैं सोताकों श्लोक कहत हैं ।

श्लोक—चातुर्यंक निदान सीम चपला पांग छटा मंथरं ।
लावन्यामृत विचतेन ललितं लक्ष कटाक्षी हुतं ॥ १
कालिंदी पुलिनां गुणा प्राणयिनां कामावतारा कुरुं ।
जालानिलममिवलं मधुरीमा स्वराज माराभृमः ॥ २
कारुण्या कर्वूर कटा निरिक्षणेन तारुण्यं त्सवलित-
सेष्टवधे भवेउ आयुल्लता भुव जय भुताविमेन
श्रीकृष्णचंद्र शिशीर करु रोचनं ॥ ३

एताद्दश परमकाष्टायमांन सौदर्य निधे हैं जो अनुभव करनहारी हू वर्णन करिवेकों सामर्थ्य नाही हैं और श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल कैसे हैं जो श्रीगोकुलकी नवीन तरुनीनके नव तन अनेक भाव जो नित्य अनंग रस रमनते भाव उपजत हैं सो केसे हैं वे भावजो रतिरसरूप जो सुधा समुद्रमें नेत्रकमलमें पगे हैं जो ताते सहसहीमें तो लहरि रूप हैं सींड कोर करत हैं ओर श्रीठाकुरजीके नेत्रकमलकेसे हैं । सो सन्मुख देखनमें लीनहोंनकों भाव हैं और कटाक्ष करिके तिरछे देखत हैं सो देखनमें मारजो कांमदेव ताकों चूरण भाव भयों हैं सो न्यारे-न्यारे दोय-दोय भांतिकें महारस हैं । जेसें सेत डोंरापर आरक्त सौभाग्य सौंदर्यसीवा रेखा हैं सों ता करिकें नेत्रकमल जनावत हैं फेरिके श्रीटाकुरजीके नेत्रकमलनमें न्यारी आरक्त रेखाको वरनन करत हैं दोऊ नेत्रनके स्वेत ही गर्भ विच न्यारी-न्यारी शरु परे रेखा हैं सों ता करिकें जो कोऊ सोभा की सीमा अनिर्वचनीय प्रगट होत हैं सो ताद्रस सोभाकी सीमां कहिवेकों लक्षमीहूंकी सामर्थ्य नाही है सो कदाचितु कहोगे जो यहाँ लक्षमींजी को तात्पर्य कहा है सो तहां अब कहत हें जो श्रीठाकुरजीके नेत्र हैं सो कमल सद्दश हैं सो लक्ष्मीजी कमल हैं सो ताते कमल लक्ष्मीको नाम है सो ताते कमल कोंसकों अनुभव लक्षमी करत हैं सो लक्ष्मी हू सोभा कहिवेको सामथ्यं नाही हैं जो एसे श्रीठाकुरजी आपके नेत्रकमल हैं और नेत्रकमलमैं अनेक भांतिके भाव हैं सो श्री आचार्यजी महाप्रभू आपु नेत्रकमल श्रीगोवर्द्धननाथजीके देखिकें सोभाके समुद्र है ताते श्रीआचार्यजी महांप्रभू आप नयनं मधुरं कहे । अथवा श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे हैं अत्यंत मधुर हैं सो काहेते जो जा ब्रजभक्तनकों नेत्रकमलके से हैं अत्यंत मधुर हैं सो काहैंते जो जा ब्रजभक्तनकों नेत्र कटाक्ष करिकें अवलोकन करत हैं सो तिन ब्रजभक्तनके प्राण हरिलेतु हैं । जो याहीतें जो नेत्रकमलके कटाक्ष हैं सो तिनकों वाँन करिकें वरनन करत हैं सो अब कहत हैं

जो वांन हें सो जाकों लागत हैं सों ताकौं एसी पीर होत है सो भीतर साल हे सो ताकों कछू सुधतो नाही हैं सो तेसेईं यहाँ श्रीठाकुरजीके नेत्र कमल कटाक्षरूपी जो वांन भृकुटि रूप जो धनुष तिनमें तीक्ष्ण जो अवलोकन जो जा व्रजभक्तनकी ओर देखत हैं सो तिनके तन मम धन सबही हरि लेत हैं और कछूइ तनकों सुध नाहीं रहतहें सों तातें नेत्रकमलकों वांन करिकें निरूपण करत हैं और श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे हैं सो तामें लावण्यामृत झरत हैं। सो यह अब कोई जांने जो ब्रजसुंदरीके हृदयकमल में जो मनकों प्रवेस करें सोई जानें और श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे हैं श्रीस्वांमिनीजीके मुखकमलकों देखिकें थकित होय रहे हैं सो मानों श्रीस्वाँमिनीजीको अनुगाही देखियत हैं और श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे है मंदहास्यामृत भरि रहे हैं सो व्रजभक्त एकहों जांनत हें सों कहत हैं जो श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे हैं जो श्रीठाकुरजीके नेत्रकमलमें रसके चार समुद्र हैं प्रथम तो मंद हास्यामृतको समुद्र है ॥ १. दूसरो कोटि लावन्यामृतको समुद्र है ॥ २. तीसरो चंचल्यामृतरस समुद्र है ॥ ३. और चोथो अरुनमामृतरस समुद्र हैं ॥ ४. सोवाकों अव भाव कहत हैं जो कोटि लावण्यामृतको कहा भाव है जो टेढो नाम वक्र होय सो ताकों कहिये सों जैसें गजके ऊपर चक्र अंकुस रहत हैं सो ता करिकें गजवाके वस रहत हैं। सो तेसें व्रजभक्तनके मन रूप जो गज हैं ताकों श्रीठाकुरजी आपुने नेत्रकमलकों चक्र दृष्टसों मारिकें आपुने जे वस कीए हैं सो तातें वक्र लाजकों छोंड़िकें गोपीजन श्रीठाकुरंजीके निकट रात्र समय सगरे घरको छोड़िके रासपंचाध्यायीमें आई हैं और दूसरो मंदहास्यामृत रसकों यह भाव हें सो प्रथम वत्रता करिकें तो व्रजभक्तनके मनकौं लूटिकें अपने पास लावे सो तापाछें अपने घर लायके कोऊनकों पोषन करचो चाहियें सो काहेंते जो यह तो श्रीठाकुरजीकों सहज ही धर्म हैं। सो सबनकी रक्षा करनी सों तातें व्रजभक्तनके मनको अपने पास राखकें

मंदहास्यामृत करिकें पोषन कीऐ हैं। तातें फेरिकें व्रजभक्तनके मन उनके पास नाही हें जो सदाही श्रीठाकुरजीके निकट रहत हें सो काहेतें जो यह लोकहूं प्रेम सिद्धि हैं जो मधुर वस्तुकोऊ खात हें तिनको फेरिके छोड़िवेको मन नाही होत है। और यह तो मंदहास्यामृत जामें अधरामृत सो मिल्यो रस सो ताके निकट रहत है सो काहेतें यह लोकहूमें प्रमिद्ध है। जो मधुर वस्तु कोऊ खात हें तिनको फेरिकें छोड़िवेको मन नही होत है। और यह तो मंद हास्यामृत जामें अधरामृत सों घोल्यो रक्त ताको पांन करिके भक्त भए हें सो जायवेकी अपेक्षाहूं नाहीं कीऐ हें सो एक रस सदा रहो पांन करिके स्वरूपानंदको अनुभव कीए और तीसरों चापल्यामृत हें ता करिकें व्रजभक्तनकों अनेक प्रकारके कांम है। भाव नेत्र द्वारा सूचन करत हें सो तातें जो बोहोत चपल नेत्र होय तो एक व्रजभक्तनकों श्रीठाकुरजी आपनों अभिप्राय जताये जो सब व्रजभक्त जाने जो ताहीतें चपल नेत्रकों तो यह भाव हें जो जा व्रजभक्तनको जेसों अभिप्राय वनावनो है सोई अभिप्रायकौ जानें सो काहेतें जो चापल्यामृत करिकें सब व्रजभक्तनके मनोरथन के पूर्णकरता हैं। और चोथो अरुणामृतको यह भाव है जो अरुन नाम तो अनुरागको है ता करिके यह जताए जो श्रीठाकुरजी आपु व्रजभक्तनके अधरामृतके रसको पान करवाए जो जा करिके लोक वेद दोऊनकी मरजादा छोड़िके अत्यंत प्रीति करिके रसरूप सब भक्तनको कीये है। सो व्रजभक्तनको धीरज विवेक लज्जा सोई अपने नेत्रमें राखे है। तातें व्रजभक्त श्रीठाकुरजी आपके वस होइके रहे हें। और श्रीठाकुरजीके नेत्रकमलको कमलकी उपमा दीये सों यातें जो कमल सदाई जलमें रहत है। सो यह कमलको यह सुभाव है जो जितनो जल वढे तीतनो कमलहूं वढे सो तेसें श्रीठाकुरजीके नेत्रकमलहूं रससों भरे हें और मोंहन वसीकरन इत्यादिक लक्षन नेत्रकमलमें हैं। ताहीते जो व्रजभक्तनकी ओर श्रीठाकुरजी आपु दृष्टि भरिकें कटाक्ष सहित अवलोकन करत हें सो व्रजभक्त वसीकरन

मंत्रकी नांई हैं। जो श्रीठाकुरजीके बस होय रहे हैं जो या प्रकार नेत्रकमलमें नाँनाप्रकारके भाव हैं। ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु कहे जो नेत्रके प्रसंगमें मंद हँसनि मे कहे और जहां आगे कहेंगे । तहां मंदहास्यनिकों वरनन जांननौं और यहां हसितं मधुरं परस्पर व्रजभक्तनके प्रसंगमें निकुंज मंदिरमेके त्रिषे हस्तसों हस्त तालि लेंत हैं प्रेम आनंदमें आसक्ति होस आनंदमें हँसि हँसि वातें करत हैं सो हसति यहां सुख वरणन है। और श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप जब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपसों हसि हसिके बातें करत हैं और श्रीठाकुरजीके हसनि विषें अनेक प्रकारके भाव हैं। सों काहेते जो जब श्रीगोवर्द्धननाथजी आप गोचारण लीला को पधारत हैं सो तब सखानसों हसि हसिकें अनेक प्रकारकी वार्ता करतहैं ताके मिस करिके व्रजभक्तनकों नानाप्रकारके सुचन करत हैं और श्रीठाकुरजी हसि हसि आपु नाना प्रकारकी वार्ता करन हैं। आपु जे ऐस्वर्यको गोप्य करत हैं सो काहेते जो आप जे एश्वर्य बार्ता करत हैं आपु जे ऐस्वर्यको गोप्य करत हैं सोकाहेतें जो ऐश्वर्यको निरोघ करे तो व्रजभक्तनसों माँनादिन लीला न होई सो काहेते जो माधुर्य रसको और ऐश्वर्यसों विरोध हैं । सो दृष्टांत कहत हैं सो श्रीयसोदाजीको भ्रम भयो। जो यह कहां तब श्रीठाकुरजीनें विचार कीयो । जो इनको स्वयं भाव प्रगट होयगो तो यह वात्सल्यरस जायगो जो मोकों बालक जांनिकें अत्यंत स्नेह करत हैं सो जहां तांई स्वर जांनें तहां तें जेसें देवता स्तुति करत हैं सो ताही प्रकार होय जानें सो तातें हसिकें श्रीयसोदाजी सों बोले सों तब श्रीयसोदाजी तो यह जानें जो यह तो बालक हैं मोहिकों भृम भयो है । तैसे ही हसि व्रजभक्तनके मन हरेहैं ता करिके व्रज भक्त यह जानत हैं जो परम सौंदर्य रूप ए श्रीनंदरायकुमार हैं सो हमारे परम प्रीतम हैं एसें जानिकें माधुर्यरसके वीच ये सर्व कारजहूं करत हैं कों आचरन करत हैं और श्रीठाकुरजी तो माधुर्य रसके बीच ऐस्बर्य कारजहूं करत हैं । त्रणावर्त्त सकट ईत्यादिक अग्निपांन करनो एसें चरित्र करिकें ता पाछें मंद हसिकें सबनकें मनको मोहत हैं जो माधुर्यरसको सुख न जाय सो तातें श्रीठाकुरजीकों हसनो है सो माधुर्यरसकों पोषणकरत हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु कहत हैं त्रो हसितं मधुरं अथवा जामें जो ब्रजभक्त हैं तिनको परमरस हीको दांन करत हैं सो काहेतें जो दानांदिक लीला विषें अनेक प्रकारके हास्यादिक कटाक्षादिक होत हैं और स्पर्श आनंद होत हैं तामें जब श्रीठाकुरजी आपु मुसिकायकें हसत हैं सो तब सुंदर दंतनकी पंक्ति मानों दांडिम ही है परम सोभायमांन है मानों आई अनिर्वचनीय जो कांमदेव हैं तिनको मानों छटारूप जो कोई वांन हैं सों व्रजभक्तनके मर्म ठोर आयके लागत हैं सो निकासिवेकों कोई सामर्थ नाही हैं जो या भांतिसों भाव सहित श्रीठाकुरजी आपु हंसत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप हसितं मधुरं कहे । और श्रीठाकुरजी आपकों हृदयरूप हैं सो अत्यंत मधुर हैं सो तहां सुंदर मोतीनकी माला वनमाला इत्यादिक विसाल हृदयमें विराजत हैं तिनकी सोभा कहिवेको कोई सामर्थ्य नहीं और जा हृदयमें ब्रजभक्त आपनों घर करिके राख्यो हैं सो सदा व्रजभक्तनको श्रीठाकुरजी आपु आपनें हृदवकमलमें राखत हैं सी काहेतें जो श्रीठाकुरजीको हृदय परम कोमल हैं जहां कठोरता रंच सहमेंहीं हैं सो एसो जाको हृदयकमल कोमल है सो व्रजभक्तनकी आरतीको रंचकहू सहि नाही सकत हैं सो काहेते जो उनके प्रेमके वस हैं श्रीठाकुरजी तातें व्रजभक्तन संमांन श्रीठाकुरजीकों और कोऊ प्रीय नाही हैं जो एसों श्रीठाकुरजीको हृदयकमल अत्यंत कोमल है अपने व्रजभक्तनकी आरति नाही सहि सकत हैं और जो देवता हैं सो आपु स्वार्थी हें जो इनको स्वारथ न होय तो प्रसन्न होत नाही हैं और जीवको बुरो करें एसे श्रीठाकुरजी नाहीं श्रीठाकुरजीकी सेवामें जो अपराधहू पड़े तो आप बड़े हैं अपराध क्षमा करिकें जो जीवके ऊपर कृपा

करें रासपंचाध्याईमें जब अंतरध्यांन भए हैं तव व्रजभक्तननें पहचान्यो जो श्रीठाकुरजी अंतरध्यांन भए हैं सो काहेते जो श्रीठाकुरजीकों प्रगट न देखे ताते यह जाने जो ओर श्रीठाकुरजी बाहू समय उन व्रजभक्तनकी रक्षा कीए सो काहेते जो गर्व मनमें भयो सो श्रीठाकुरजी अंतरध्यान आपु होयके गर्व दूर करें तो आगे इनकों रसकी प्राप्ति न होय सो जब अत्यंत दैन्य भाव आयो विरह करिके दोष भस्म होय गए तब ताइं पुलिनमें प्रगट भऐ साक्षात् मनमथके मनमथता पाछें रासलीला करिकें सब ब्रजघक्तनके मनोरथ पूर्ण कीए तातें श्रीठाकुरजीको हृदय अत्यंत कोमल है तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप हृदयं मधुरं कहे अब आगे ओरहूं कहत हैं जो गमनं मधुरं कहे ताको अर्थ लीलाके अनुसार मुख्य अर्थ यह है । जो गमन नाम चलिवेको है सो निकुंज मंदिरमें श्रीस्वांमिनोजीके संग परस्पर गलवांहां देकें मंदमंद गमन करत हैं सो तब दोऊ स्वरूप अपने मनमें आनंदको पावत हैं सो तहां सखीजन नाना प्रकारकी केलि कलाकी सांँयग्री लीये ठाडी हैं । बीडा मेवा पंखा और अनेक प्रकारकी रितानुसार तहां रितुको हू नियम नाही है जो इतने दिन इतने महिना रहे । जो सर्व इच्छाको कारण है । छहों ऋतु सदा सर्वदा आदिदैविक सेवन करत है जा समय जा लीलाकी इछा जो रितुकी इच्छा सो ततकाल सिद्धि होय रही है । अथवा गमन प्रवेस कों दुहे सो काहेते कोटानकोट ब्रजभक्त हैं । सो तिनको हृदयरूप मंदिरमें प्रवेस कियो है । सो व्रजभक्त अपने मनमें यह जानत नाही हैं जो हमारे हृदयमें श्रीठाकुरजी आप हें सो काहेतें जो जा समय व्रजभक्तनके मनमें आपु हें और ब्रजके निकट अक्रूर आऐ हैं श्रीबलदेवजी सहित श्रीठाकुरजीको षधरायके मथुरा ले गऐ हैं जब पुरसोतम व्रजभक्त यह जानें जो श्रीठाकुरजी मथुरा पधारे हैं । सो तव व्रजभक्तननें वीनती कीनी सो तब पुष्टिपुरुपोतम भावात्मक रसरूप जो हृदयमें हते सो ब्रजभक्तनकों विरह संयुक्त जांनिके प्रगट

होयकें ब्रजभक्तनको रसानुभव करवायके फेरि इनहीके हृदयमें रहे । सो या प्रकार सबरे ब्रजभक्तनके हृदयमें बिराजे हैं जो याही आधारसों ब्रजभक्तनकी देहकी अस्थित रही सो भावात्मक रसरूप ए विरह करिके अनुभव करिवेके योग्य है सो जहां तांई विरह न होय सो तहाँ तांई संजोग रसकी प्राप्ति नाही जांनिये । एसो विप्रयोगाँत्भक रसरूप श्रीठाकुरजी आपु ब्रजमें वृंदावनमें गोप्य रीतिसों विहार करत हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो गमनं मधुरं कहे । जो जाको अर्थ यह है । जो जब श्रीठाकुरजी आप प्रातःकाल ब्रजभक्तनके घरते निकुंज मंदिरते पधारत हैं जो जहां भांति भांतिकी सोभा होत हैं । लठपटी पाग हें जो वसनतो पलटे हैं आभूषण कहुं के कहूं बनाए परम रसमें घूमतमें मंदमंद जो चलत हैं जो ता समय खंडित नायका अनेक प्रकारसों कटाक्ष सहित वचन कहे सो सुनिके मंदमंद श्रीठाकुरजी आप चलत हैं सो मुसिकात चलत हैं सो मंदमंद गमन करि ब्रजभक्तनको उपजावनहारे हैं परमरस और जब रासादिक लीला करत है तब ब्रजभक्तनके समूहमें सोई प्रतिरूप श्रीठाकुरजीको आपु धरत हैं । तब सब मिलिके ताल बंधनके सहित निर्तं सव करत हैं सो तहां अनेक ब्रजभक्त हैं । तिन प्रति स्वरूप श्रीठाकुरजी धरत हैं सो रासलीलामें नाना प्रकारके भाव प्रगट होत हैं सो तहां रसमें मगन होयके ब्रजभक्त श्रीठाकुरजी आपु मंदमंद गमन सहित चाल चलत हैं तातें श्रीआचायंजी महाप्रभू आपतो गमनं मधुरं कहे अब ओरहूं आगे कहत हैं । जो मधुराधिपतेरखिलं मधुरं । ताकों अर्थ यह है । जो स्वर्गलोक तथा पाताललोक ओर प्रवी त्रिलोकमें जितनीक मधुर वस्तु हैं तिन सबनके अधिपति जिनमें अखिल अपार मधुरता एसें श्रीठाकुरजीतो आप हैं । यह पद दोय श्लोकमेंहै । सो संबंधन जो हैं श्रीठाकुरजी आपु समान ओर कोई नाही है । उपमा देवेको इन समान नहीं है सो काहेते जो जितनों सिंगार रस है सो सब इनहीमें ते प्रगट भयो है । ताते श्रीआचार्यंजी महाप्रभू मधुराधिपतेरखिलं मधुरं कहे

ताकों आशय यह है। जो कोटि कोटि सिंगाररस तो ईनतें प्रगट है। अखंड विरोध धर्माश्रय येक कालावच्छिन्न सर्व लीला करनमें सामर्थ है। सोइन समानमें ओर अवतारणमें हू कह्यो न जाय। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप रखिलं मधुरं कहे अथवा जो या प्रकार मधुराष्टकमें प्रथम श्लोकको अर्थ निरूपण भयो। अब दूसरो श्लोक कहत हैं ॥ १ ॥

श्लोक—वचनं मधुरं चरितं मधुरं,
वसनं मधुरं वलितं मधुरं ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥ २ ॥

याको अर्थ—अब कहत हैं जो वचनं मधुरं ताको अर्थ यह है। जो श्रौआचार्यजी महाप्रभूसों पूरण पुरुषोत्तम यह आग्या दीये जो तुम जीवनको अंगीकार करोगे तिनको ब्रह्मसंबंध करबावोगे तिनके सकल दुख दूरि होयगे सो यह मधुर वचन है। और रासपंचाध्याईमें जब मुरली बजायके सब व्रजभक्तनको बुलाए है। परंतु भीतरते अत्यंत मधुरं सो एसे यचन श्रीठाकुरजी कहे जो तुम अपने घर जाऊ सो भीतर जो मधुर भाव हैं सो ताको जांनिवेमें व्रजभक्तनकी योग्यता है। सो काहेते जो उतर कहि आऐ जो एसें रसरूप श्रीठाकुरजीके हृदयकमलके भीतर व्रजभक्तनकी स्थिति है। तातें व्रजभक्त श्रीठाकुरजीके हृदयकमलके भीतरको अभिप्राय तासों जाने ऊपरके मर्यादा वचनको न मानें ता पाछें श्रीठाकुरजी आपतो यह विचारे जे मेरी आग्या ना मानें सो कहिते जो आपु मुरली बजायकें बुलाए हैं। आपुही ऊपरते कठिन वचन कहे सो व्रजभक्त यह जाने जो हमको घरही पठायबेकी आग्या होती है। बुलावते सो काहेको सो एसो जांनिकें घरन गए जातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप वचनं मधुरं कहे और निजमंदिरमें जब श्रीस्वांमिनीजी मांन करत है तब श्रीठाकुरजी आपतो छल सहित विनयके अनेक

ऊपर दोष लगावत हैं। ते वचन अत्यंत सुनिवे के लिये क्षणक्षण में मांन होत हैं। सो ताते श्रीअचार्यजी महाप्रभू आप वचनं मधुरं कहे अथवा वाललीला में तुतरायकें बोलनो। सो श्रीनंदरायजी श्रीयसोदा जी कों परस्पर सऊवन हरि हरि हैं। और दधि की चोरी लीला करिदे में ब्रजभक्तन सों भांति भांतिके वचन के कटाक्ष होत हैं। तामें ब्रजभक्तन कों परम रसके उपजावन हारे हैं। सो काहेते जो व्रजभक्तन के जीवन धन प्राण श्रीठाकुरजी आप हैं। तिनही को देखि देखिकें ब्रजभक्त जीवत हैं। जो याहींतें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप तो वचनं मधुरं कहे। अब आगे ओरहूं कहत हैं जो चरितं मधुरं ताको अर्थ यह है। जो मुख्य तो यह है। सो तब गांव में मांन होत है सो तब श्रीठाकुरजी आप सखीकों भेख धरिकें नाना-प्रकार के चरित्र करत हैं सो मांन मनावत हैं। और मांखनचोरी लीला में गोपीन की कांनको चोरी करवे को घर घर जात हैं सो गोपिकायें श्रीठाकुरजी को करें सो ता पाछे वह श्रीयसोदाजी के पास ले आई सो श्रीठाकुरजी तत्काल ही गोपिकांन की कन्या होय गई। तव श्रीयशोदाजी देखिके गोपिकानसों कहे जो या प्रकार सों कहे। जो या प्रकार सों मेरे पुत्र को नित्य ही झूँठे ही चोरी लगावत हो ताते देखि तो यह हमारो पुत्र है सो तब वह गोपीका देखिकें चक्रत होय रही। और एक समय श्रीठाकुरजी श्रीयसोदाजी के आंगन में रिंगन करत हैं तब आप जो प्रतिबिंब देखिकें आप हीय करिवे कों दोरत हैं। सो तहां कोई एक गोपीजन आयकें श्रीठाकुरजीकों गोदीमें उठाइ लीये सो अपने निकुंज में पधारे। सो तहां श्रीठाकुरजी सों विज्ञप्ति करो जो हमारो मनोरथ सिद्ध करिवे के लीए तुम प्रगट भए हो सो करो और तुम ही सर्बकारण में सामर्थ हो जो यह हमको निश्चय है। सो तब आपु हसिकें प्रसन्न होयकें जब मनोरथ पूरण करत हैं जो एसे नाना प्रकार के चरित्र करिकें सगरे ब्रजभक्तन को सुख देत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप चरितं मधुरं कहे। अथवा याको अर्थ यह है। जे भांति भांति के चरित्र जिनके हैं

जो बाल चरित्र नवनीत श्रीहस्त मैं लीए श्रीनंदरायजी के आंगन में रिगन करत हैं और ब्रजभक्तन के घर चोरी करत हैं इत्यादि बोल चरित्र में श्रीनंदरायजी श्रीयशोदाजी को परम सुख उपजावत हैं। और दांनादिक मानादिक रासादिक लीलामें ब्रजभक्तनका भांति भांतिके सुखको अनुभव जनावत हैं सो एसे परम मधुर चरित्र हैं जिनके ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप चरितं मधुरं कहे जो अब ओर हूं आगे कहत हैं जो वसनं मधुरं ताको अर्थ यह है। जो वस नाम सुतकों जितने होय तिनकों तथा पट वस्त्रहूं को कहत हैं। तिन सबन में मुख्य अर्थ यह जो एक समय निकुंज मंदिर में वसन हैं। सो अपनो पोतांबर श्रीस्वामिनीजी के पास रह्यो और श्रीस्वांमिनीजी कों नीलांबर को ओढिके आप पधारत हैं। आलस सहित अंग अंग जानिकें होय गए हैं और श्रीठाकुरजीकों श्रीअङ्गसों सुंदर हें जिनके संगते उन सबन हूं परम सोभा को देखत हैं। सो अत्यंत मधुर हें सो याहीतें सखीजन जो जितनी हें सो सब महाप्रसादी वस्त्र पहरत हैं। सो काहे तें जो महाप्रसादी वस्त्र पहरत हैं सो यातें जो प्रसादी वस्त्रतें श्रीअङ्ग को संबंध होत है के अत्यंत मधुर होत है। सो काहेते जो श्रीठाकुरजी श्रीस्वांमिमीजी के संग नाना प्रकार की लीला करत हैं सो तब श्रीअंग के अंगराग अरगजा कुंम कुंम स्वेद इत्यादिक संबंध सब वस्त्र में होत है। सो ताहीतें प्रथमरूप सेवा तथा वस्त्रसें चाहूं तो मुख्य है सो जामें सब रसन को अनुभव है। तामे जो दासभाव श्रीठाकुरजी की सेवा में राखत हैं सो असाध्य वस्त्र नाही पहरे हैं। जो प्रथम श्रीठाकुरजी के आगे अङ्गीकार करवायके पाछें वह आपु प्रसादी पहरियें जो ताको भाव तो यह है जो अनप्रसादी वस्त्र तो कबहूं नाहीं पहरत हैं जो प्रथम श्रीठाकुरजी के आगे अङ्गीकार करवाय के सो ता पाछें वह आपु पहरि जो जाको तो भाव यह है। तो प्रसादी वस्त्र मधुर कों पहरें तो अलौकिक देह याकी होय। तब श्रीठाकुरजी आपकी लीला को अनुभव करिवे को जोग्य होय सो तामें प्रसादी वस्त्र तो दासनकों पहरनो। और अनप्रसादी वस्त्र दासन को न पहरनो और वस्त्र जो हैं सो श्रीठाकुरजी रस को आभरण करत हैं। सो काहेते जो जब पीतांबर श्रीठाकुरजी आप पधारत हैं सो तब श्री अङ्ग को दरसन तो नांही होत हैं सो वस्त्र सों ढक्यो सरीर है सो वस्त्र मिल्यो है यातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप वसनं मधुरं कहें। सो ताको अर्थ यह है। जो भांति भांति के पीतांबरादि वस्त्र पहरे हैं श्रीठाकुरजी तो आप अत्यंत मधुर ही हैं। सो काहेते जो जा समय पीतांबर पहरकें ब्रज भक्तन सहित निकुंज मंदिर में तहाँ लीलांवर बेष्टित होत हैं। सो तो भांति २ की सोभा देत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप तो वसनं मधुरं कहे जो अब आप ओरहूं कहत हैं जो वलितं मधुरं। जो ताको अर्थ तो यह है जो आपुही प्रमेय बल करिकें ब्रज भक्तन कों पुष्टि रीति सों अंगीकार कीए। सो जेसें पूतना को मारिके अपने भक्तन की अविद्या दूरि कीऐ सो ऐसें सव दैत्यनकों मारिकें ब्रजभक्तन के दोष दूरि कीए हैं। और काली को दमन कीए जो याको मारे नाही सो काहेतें जो भक्तन की इंद्रीं को दमन ही कर्त्तव्य है। जो इंद्रीयनको मारे दूरि करें सो सगरे भोग को करे दर्शन करनों कथा कर्त्तव्य है। कीर्तन करनो असें इंद्रीयन कों दमन करिके लोकिक मेंसे मन छुड़ाय के अपनें ओर लगाये सो यह कार्य तो पुरुषोत्तम बिना तो ओर सों न होय नहीं प्रेमवस करिके कीऐ तेंसे यहाँ श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप प्रसन्न सो प्रमेय बलसों ब्रह्मसंबंध करवायके सव इंद्री पदारथ कों दमन करिके सेवा के योग्य कीये सो काहेते जो प्रमेयमार्ग सो तो पुष्टिमार्ग जो आपुही भक्त की जोग्यता करिकें ता पाछें वाको अङ्गीकार कीए सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप तो चलितं मधुरं कहे और श्रीठाकुरजी गोपीजनसों प्रमेय वल करिकें संकेत हूं करत हैं जैसे गाय चरायवे के मिस करिकें खेलवे के मिस करिकें श्रीनंदरायजी तथा मातृचरण श्रीयसोदाजीसों छिपकें जो जामें उन न जानें जो या भांति सों गोपीजन के निकुंज मंदिर मैं पधारत हैं और यह प्रण हें जो अपने ब्रज

भक्तन के कार्य करिवे में परम चतुर हैं जो सदा व्रजभक्तन की रक्षा करत ही आए हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप वलितं मधुरं कहे अथवा याको अर्थ तो यह है जो श्रीगुसाँइजी आप श्रीस्वांमिनीअष्टक में कहे हैं। जब निकुंज मंदिर में स्वांमिनीजी श्रीठाकुरजी आप विराजत हैं। ता समय श्रीठाकुरजी अपनी सिज्यापर बल करिकें श्रीहस्त करिकें तब नीचे सीतल करत हैं ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप दलितं मधुरं कहे जो अब औरहूं आगे कहत हैं जो चलितं मधुरं जो ताको अर्थ तो यह हैं जो गोचारण लीला के रसमें भांति भांति के भाव सहित सखान के मंडल में चलत हैं सो व्रज भक्तन सों कह्यो नहीं जात हैं सो अपने अपने घरते मिसकरिके कोऊ दधि वेचवे के मिसकरिके सब वन में आवत हैं सो तहां सकल मनोरथ सिद्ध होत हैं तहां और चलितं मधुरं कहिये जो मंद मंद श्रीठाकुरजी आप चलत हैं सों जब श्रीवृंदावन में पधारत हैं सो तहाँ श्रीगोवर्द्धन में अनेक गहवर निकुंज परम सोभायमान झरना झरत हैं जो अनेक पंछी भाव सहित बोलत हैं जो नांना प्रकार के वृक्ष फल फूल सों भरिके नीचे को लटक रहेहैं अनेक लता तहाँ फेलि रही हैं मकरंद भरी सुगंध सहित त्रिविध वहत है जो श्रीठाकुरजी आपुके मनको मोहित करत रहें सो कांम भात्रकों पावत है। तब श्रीठाकुरजी आपु चंचलता भूलिके मंद मंद रससूं मत्त होयकें चलत हैं सो तहां भाव को जाननों अनेक ब्रजभक्तन के संग मंद मंद गवन फूलवीनन विपें कुंज कों धारण के समे अत्यंत मधुर होत हैं तातें श्री आचार्यजी महाप्रभु आप चलितं मधुरं कहे अव और हुं आगे कहत हैं जो भ्रभतं मधुरं। ताको अर्थ तो यह है जो कछू आश्रय वस्तु को देखत हैं तब श्रीठाकुरजी कों भ्रम होत हैं सो कहत हैं जो निकुंज मंदिर में श्रीस्वांमिनीजी और श्रीठाकुरजी आप विराजत हैं सो कबहूक कोई प्रेम की लहरि उठति हैं तब श्रीस्वांमिनीजी कहत हैं जो अरी ललिता श्रीठाकुरजी आप कहां गए हैं जो यह प्रेम की पराकाष्टा देखिकें श्रीठाकुरजी को भ्रम होत है जो मेरे मिलाप मैं तो एसों बिरह है।

जो और न्यारे भए ते कहां जानियें कहा होय और रासादिक लीला में श्रीस्वाँमिनीजी तीर पर वांधिकें निर्त करत हैं। तथा गांन करत हैं सो चातुरी देखिकें श्रीठाकुरजी आपु चक्रत होय के रहत हैं जो यह गुण तो मोमें नाहीं हैं। जो यह भ्रम है सो ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु भृमितं मधुरं कहे अथवा जो जा प्रकार ते अनेक भांति सों भ्रम श्रीठाकुरजी कों आपुको होत है सो भ्रमितं मधुरं कहे सो काहेते जो श्रीठाकुरजी आपुही श्रीपूरणपुरुषोत्तम रसिक सिरोमनि हैं सर्व वस्तु के जांनन वारे जो आपु ही सर्वकर्ता हैं सो बालक जेसें आपुनी छाया देखिके भूलि रहत हैं सो तेसेही व्रजभक्तन की छाया है। जो संगही सदा सर्वदा रहत हैं सो आपु ब्रज भक्तन के चरित्र देखिकें आपु सर्दस्व आपुनो मन इनको देयके वस भए हैं सो तातें श्रीआचायँजी महाप्रभू आप भ्रमितं मधुरं कहे अथवा वाकों यह अर्थ कहत हैं जो जब बाल लीला कीए सो तव सबन को भ्रम भयो जो यह कहा सो ता पाछें काली नाथे आए सों जब श्रीगोवर्द्धन पूजा की सिक्षा श्रीठाकुरजी सबनकों कीए ता पाछें इंद्र प्रलय के जलकी बृष्टि करी। तब श्रीठाकुरजी आप बांम भुजासों श्रीगोवर्द्धन धारण कीये जलसों सवन की रक्षा कीए। तब सव ब्रजभक्तन को भ्रम भयो सो भ्रमहूं नंद यशोदाजी संयुक्त है ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप भृमितं मधुरं कहे। जो अब ओरहूँ आगे कहत हैं जो मधुराधिपतेरखिलं मधुरं सो ताको संबोधन जांननों जो इन समान और मधुर कोई नाहीं हैं सो ऊपर कहे हैं जो वही भाव जांननों सो या प्रकार सों दोय श्लोक को अर्थ निरूपण भयो। अब औरहूँ तृतीय श्लोक कहत हैं।

श्लोक——वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः ध्वनिर्मधुरः।
पादौ मधुरः नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥ ३ ॥

भक्तन के कार्य करिवे में परम चतुर हैं जो सदा व्रजभक्तन की रक्षा करत ही आए हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप वलितं मधुरं कहे अथवा याको अर्थ तो यह है जो श्रीगुसांइजी आप श्रीस्वांमिनीअष्टक में कहे हैं। जब निकुंज मंदिर में स्वांमिनीजी श्रीठाकुरजी आप विराजत हैं। ता समय श्रीठाकुरजी अपनी सिज्यापर बल करिकें श्रीहस्त करिकें तब नीचे सीतल करत हैं ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप दलितं मधुरं कहे जो अब औरहूं आगे कहत हैं जो चलितं मधुरं जो ताको अर्थ तो यह हैं जो गोचारण लीला के रसमें भांति भांति के भाव सहित सखान के मंडल में चलत हैं सो व्रज भक्तन सों कह्यो नहीं जात हैं सो अपने अपने घरते मिसकरिके कोऊ दधि वेचवे के मिसकरिके सब वन में आवत हैं सो तहां सकल मनोरथ सिद्ध होत हैं तहां और चलितं मधुरं कहिये जो मंद मंद श्रीठाकुरजी आप चलत हैं सों जब श्रीवृंदावन में पधारत हैं सो तहाँ श्रीगोवर्द्धन में अनेक गहवर निकुंज परम सोभायमान झरना झरत हैं जो अनेक पंछी भाव सहित बोलत हैं जो नांना प्रकार के वृक्ष फल फूल सों भरिके नीचे को लटक रहेहैं अनेक लता तहाँ फेलि रही हैं मकरंद भरी सुगंध सहित त्रिविध वहत है जो श्रीठाकुरजी आपुके मनको मोहित करत रहें सो कांम भावकों पावत है। तब श्रीठाकुरजी आपु चंचलता भूलिके मंद मंद रससूं मत्त होयकें चलत हैं सो तहां भाव को जाननों अनेक ब्रजभक्तन के संग मंद मंद गवन फूल वीनन विषें कुंज कों धारण के समे अत्यंत मधुर होत हैं तातें श्री आचार्यजी महाप्रभू आप चलितं मधुरं कहे अब और हुं आगे कहत हैं जो भ्रभतं मधुरं। ताको अर्थ तो यह है जो कछू आश्रय वस्तु को देखत हैं तब श्रीठाकुरजी कों भ्रम होत हैं सो कहत हैं जो निकुंज मंदिर में श्रीस्वांमिनीजी और श्रीठाकुरजी आप विराजत हैं सो कबहूक कोई प्रेम की लहरि उठति हैं तब श्रीस्वांमिनीजी कहत हैं जो अरी ललिता श्रीठाकुरजी आप कहां गए हैं जो यह प्रेम की पराकाष्ठा देखिकें श्रीठाकुरजी को भ्रम होत है जो मेरे मिलाप मैं तो एसों विरह है।

जो और न्यारे भए ते कहां जानियें कहा होय और रासादिक लीला में श्रीस्वाँमिनीजी तीर पर वांधिकें निर्त करत हैं। तथा गांन करत हैं सो चातुरी देखिकें श्रीठाकुरजी आपु चक्रत होय के रहत हैं जो यह गुण तो मोमें नाहीं हैं। जो यह भ्रम है सो ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु भृमितं मधुरं कहे अथवा जो जा प्रकार ते अनेक भांति सों भ्रम श्रीठाकुरजी कों आपुको होत है सो भ्रमितं मधुरं कहे सो काहेते जो श्रीठाकुरजी आपुही श्रीपूरणपुरुषोत्तम रसिक सिरोमनि हैं सर्व वस्तु के जांनन वारे जो आपु ही सर्वकर्ता हैं सो बालक जेसें आपुनी छाया देखिके भूलि रहत हैं सो तेसेही व्रजभक्तन की छाया है। जो संगही सदा सर्वदा रहत हैं सो आपु ब्रज भक्तन के चरित्र देखिकें आपु सर्वस्व आपुनो मन इनको देयके वस भए हैं सो तातें श्रीआचायँजी महाप्रभू आप भ्रमितं मधुरं कहे अथवा वाकों यह अर्थ कहत हैं जो जब बाल लीला कीए सो तव सबन को भ्रम भयो जो यह कहा सो ता पाछें काली नाथे आए सों जब श्रीगोवर्द्धन पूजा की सिक्षा श्रीठाकुरजी सबनकों कीए ता पाछें इंद्र प्रलय के जलकी बृष्टि करी। तब श्रीठाकुरजी आप बांम भुजासों श्रीगोवर्द्धन धारण कीये जलसों सवन की रक्षा कीए। तब सव ब्रजभक्तन को भ्रम भयो सो भ्रमहूं नंद यशोदाजी संयुक्त है ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप भृमितं मधुरं कहे। जो अब औरहूँ आगे कहत हैं जो मधुराधिपतेरखिलं मधुरं सो ताको संबोधन जांननों जो इन समान और मधुर कोई नाहीं हैं सो ऊपर कहे हैं जो वही भाव जांननों सो या प्रकार सों दोय श्लोक को अर्थ निरूपण भयो। अब औरहूँ तृतीय श्लोक कहत हैं।

श्लोक——वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः ध्वनिर्मधुरः।
पादौ मधुरः नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥ ३ ॥

याको अर्थ—अब प्रथम कहे जो वेणुर्मधुरं याको अर्थ कहत है। जो जव श्रीठाकुरजी आपु ललित त्रिभङ्ग को स्वरूप धारण करत हैं सो तब वांम परालत टेढे वेनुमें ऊंचे सुरसों गांन करत हैं सों अत्यंत मधुर हैं सो काहेते जो ललित त्रिभङ्ग जो स्वरूप हैं सो ब्रज भक्तन के भोगार्थ हैं तेसेंई वेनुनादहूं ता समय को अत्यंत मधुर है । सो रास-पंचाध्याई के भावसों जाननों सो काहेते जो सरद रात्र में वेनु वजाए है सो व्रजमें वृद्ध गोपी ओर सखा गोपको उनसुन्यों कोई उहां रात्रिसमें श्रीठाकुरजी पास आई तातें यह वेनु नाद सिंगार रस रूपही अत्यंत मधुर हैं। और सखान के संग वेनु वजावत हैं तथा श्रीनंदरायजी श्रीयसोदाजी के आगे वेनु वालभाव सहित वजावत हैं उहां जायकें सुख देनार्थ सो काहेते जो अधिकार भेद जानतो इनको पुष्टि मर्यादा सहित सो यह है। तातें इनकों एसोई रसभोग करनी योग्यता है। सो काहेते जो रास पंचाध्याई में जो श्रीठाकुरजीनें वेनु बजाये हैं सों तव वेनुनाद सुनिकें गाय चक्रत होय कर्ण उठायकें रसपीत श्रवण द्वारा होय हैं सो मुख सिथल रहि गयो है। और वृक्षन में ते मधु की धारा बही चली जात है। और श्रीगोवर्द्धन द्रवीभूत भए हैं। सो अनेक ठोर चरण चिन्ह भए देवाङ्गना देवता सहित विमान हैं जो चंद्रमा सूर्य सबही मोहिके थकित होय रहे हैं और पशु पंछी सब मौन गहि रहे हैं जो या प्रकार सों वेनुनाद सुनिकें सबन कों आनंद अधिकार अणसर भए हैं। तामें संपूरणरस को तो अनुभव तो गोपीजनकों भयो है ता समें वेनु नौ तनक लावत तानकी अलाप चारमें उचें नीचे जो नादरस की लहरि उठात हैं और तेसी चरण कटिकी ग्रीवा की वक्रता श्रीहस्त कमल कोंमलता इनकें व्रजभक्तन के अंतकरणमें अंतर जिसकी कछू लज्जा ताप तथा धीरसों सबनकों छोरदें आनंदकें अनुभवकी वेनुद्वारा अधरामृतपांन करिकें जात भई। हृदय में जो अनेक काल करिकें जो भाव संचिकें एक ठोर करिकें राखे हते। सो वेनुनाद करिकें श्रीठाकुरजी प्रगट कीये है जो जेसें समुद्र मथन कीए हैं। तब तामें ते रतन प्रगट

कीये। सों तेसें व्रजभक्तन के हृदय में रतनरूप जो भाव अनेक जन्म करिकें संचित करिके राखे हते सो वेनुनाद बजायके श्रीठाकुरजी आपु यह भाव रूपात्म प्रगट कीये। सो काहेते जो हृदयरूपी अगाध जल के भीतर रत्न तो कोंउ यह भाव जानत न हतों सो श्रवण द्वारा श्रीठाकुरजी भीतर आपु ही रसरूप होयके पधारे। सो यह रत्न प्रगट करिवे के लीए तातें यह जो ब्रज भक्तन को रत्न भावात्मक सरूप हैं सो तिनके भाव सों श्रीठाकुरजी आपु वस होत हैं जो और उपाय तो श्रीपूर्णपुरुषोत्तम के मिलिवे को नांही हैं सो तातें वेणु अत्यंत निकट ही राखत है। कटि में अधर में श्रीहस्तकमल में राखत हैं। सो काहेतें वेनु वजाए हैं। सो अत्यंत मधुर है। तातें श्रीठाकुरजी के अनुग्रह विनां यह रसकी प्राप्त तो काहू को नाहीं है। ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू वेनुर्मधुरं कहें। और वेनु ये अत्यंत चतुर हैं। जो जा व्रज भक्तन कों जहां संकेत की इच्छा होत है सो वेनुद्वारा सबको जनावत हैं सो काहेते जो प्रगट कीये तो सब कोऊ अभिप्रायकों जांनी जाय। तातें वेनुद्वारा सत्य को जनावत हैं सोई जानें और कोई तो जानें नाही । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप वेनु मधुरं कहे। अब औरहुं आगे कहत हैं जो रेनुर्मधुरः याकों अर्थ तो यह है। जो श्रीठाकुरजी के चरण कमल की रज है सो त्रिलोकी में सवन कें वंदनीय हैं सों प्रसिद्धि श्रीगीताजी श्रीभागवत में हैं सो वेद पुरांन में कहे हैं। सो काहे ते जो चरणारविंद की रजकें आश्रय बिना तथा संबंघ बिना रसकी प्राप्त नाही हैं सो काहेतें जो जब पूतना ब्रज में आई सो सतहजार वालकनकों मारिकें उनके प्राण अपने हृदय में राखकें श्रीनंदरायजी के घर में आई सो श्रीठाकुरजी पूतना मारिकें प्राण सहित व्रजके बालक सबके प्राण श्रीठाकुरजी अपने हृदय में धरे। सोई सब वालकनकों श्रीठाकुरजी कों संबंध भयो परन्तु लीला रसकी प्राप्त नाहीं हैं। सो कृतार्थ न भए तातें व्रज की चरण की सब रज आपु खायकें उन बालकन कों चरण कमलकों संबंध करवायकें उनको भगवदरस की प्राप्त कीनी हैं और

रासपंचाध्याई में जब श्रीठाकुरजी अंतरध्यान भए तब व्रजभक्त खोजिवे को पधारे और प्रथम चरण कमलके चिन्ह को दर्शंन भयो सों तब उनकों वंदन करण लागीं और वह रजकों माथे के ऊपर धरत भऐ। तातें श्रीठाकुरजो के चरणकमल की रेणु तों अत्यंत मधुर हैं । यातें श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आपु रेणुर्मधुरः कहें। अथवा ताको यह अर्थ कहे जो रेणु हैं जो श्रीठाकुरजी के चरणारविंद की जो रज है सो परम आनंदकी करण हारी हैं। सो काहेतें जो चरणारविंद हैं सो परम रसकों उपजावन हारे हैं। और जितनें व्रजभक्त है सो श्रीठाकुरजी के चरणारविंद कीं सेवन करत हैं सो काहेते जो चरणारविंद की जो रज है सो व्रजभक्तनकों सुख परम आनंद देंनार्थ ही हैं तातें श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आपतो रेणु मधुर ही कहें जो अब ओरहूं आगे कहत हैं जो पांनिर्मधुरा सो ताकों अर्थ यह है। जो पांनि नाम श्रीहस्तकमल को है जो जब श्रीठाकुरजी श्रीगोवर्द्धन धारण कीए हैं सो तब सातदिनलों सरूपानंदको अनुभव करवायो और वेनुनाद करवायो कीए सों तब सबन के मनकों हरे और वनमें श्रीहस्तकमल ऊंचो करिके गायको बुलावत हैं तथा सखान कों बुलावत हैं । जा समें व्रजभक्तन कों अनेक भाव संकेतादिक सूचन करत हैं और निकुंज लीला की नाना प्रकार के चोरासी बंधादिक के भाव तो रसरूप जाननों सो अनेक प्रकार की लीला करत हैं तातें श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आपतो पानिर्मधुरं कहे। अथवा याकों अर्थ कहें। जो पानी वांम श्रीहस्तकमल को हैं । सो परमरसरूप हैं । सो काहेतें जोजन श्रीहस्तकमल को दान करणकों स्पर्श करत हैं सो तिनकें अंग अंग पुलकित हो जो परम रसकों उपजावत हैं और अपनो जो श्रीहस्तकमल हैं सो ताकी छाया के नीचे सब व्रजभक्तनकों राखत हैं सो काहेतें जो श्रीठाकुरजी को व्रजभक्त परम प्रिय हैं ओर श्रीहस्तकमल हैं । सो रसदांन ब्रजभक्तन कों अनेक भांति के भाव सों देत हैं ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप पांनिर्मधुरा कहें जो अबतो ओरहूं आगे कहत हैं जो पादो मधुरा ताकों अर्थंतों यह है।

जो ललितत्रिभंगमें वांम चरण कमलकों स्थापित सों तो सुद्ध पुष्टिरूप ताकें आश्रित तो अत्यंत वक्र पराव्रत दक्षिण चरणकमल तामें तो भाव यह हैं। जो पुष्टिकों स्थापन और मर्यादाको ऊस्थापन सो अत्यंत वक्रतामें व्रजभक्तनकों अनेक प्रकारकों भावकों उस्थापन करत हैं सो काहेतें जो सिंगार रसमें विहार स्पर्शमें कोंकलामें चोरासी वंधादिकमें तथा असंख्य वंधादिकमें दक्षिण चरणकमल अत्यंत वक्र होत हैं सो तातें रसकेलिमें सखिजन तथा ब्रजभक्त हूं देखत हैं। और तहां अति रंगमे सखी हैं जो अपने कुचकमलन पर दोऊ चरण धरिकें पलोटत हैं सो तब लीला ललितत्रिसंगके चरणकमलको दरसन करत सर्व लीलाकी सुध आवत हैं । सो तब भांति भांतिके विचित्र भाव उपजत हैं अत्यंत वक्र दक्षण जांबू जासो रह हैं जो मर्यादा धर्मंतें पुष्टिवचनकों आश्रय करिके रहे हैं तहां दस लखचंदको चाख चिक्य ब्रजभक्तनके हृदयरसमें जो जात हैं सो केसें हमको मिलेंगे कैसें सो यह दूरिकें अब जानत हैं जो मैं तुम्हारे अनुभव करियें तो निज यह स्वरूप है सो प्रगटकीए हैं सो तव चरणकमलमें अनेक आभूषन घूघरू नखभूषन विछूवा पातल जे चरन पग पांन नुपुर जे हरि इत्यादिक मधुर चालि करिकें जो सबद होतहैं जो सब व्रजभक्तनके मनकों हरिलेत हैं। सो जेसे कोई राजा विजय करिवेकोहु समें लराईमें जात हैं । तब अनेक वाजितृ वजावत हैं तैसें श्रीठाकुरजीके चरणकमलके आभूषणको सबद सुनिके जो मांनों कांमदेवकों निसांन वाजे सो मनको स्थित नाहीं होत हैं जो नाना प्रकारके विहार करत हैं जो अब कांमदेव केसी करेंगो कोंन प्रकार यह चरणकमलकों संबंध होयगो सो श्रीठाकुरजी मधुस्वालि करिकें अव्यक्त सवद करिकें अभिसार करिकें कुंजनमें पांव धरत हैं सो तहां सबनके मनोरथ पूरण करेंगे और श्रीठाकुरजीतो भूषणके भू ण हैं सो काहेतें श्रीआचार्यजी महाप्रभू ऐ कहें जो श्रीअंगकों संबंधकरिके उन भूषनकी सोभा भई । सो एसों जो

ललित त्रिभंग स्वरूप हें तिनके अनुभवसों यह विगाड़तों विरह करिके भावात्मक श्रीठाकुरजीको आप देखत हैं ता पाछें वह उछतल स्वभावात्मक स्वरूपके उछलत होयकें बाहिरहू रसको अनुभव करावेंगे। विरह करिकें भीतर रसदांन हैं । सो तब स्वरूपको दर्शन करवायके उतरते रसभरे दोऊ विधि करकें रस इकट्ठो होयकें सो अंतःकरणमें इकट्ठो भयो। जो श्रीस्वांमिनीजीके कुच कुमकुम करिकें पूजित हैं सों तातें चहूं ओर द्रष्ट हैं और चरणकमल सुद्ध दोऊ स्थिति होय सों अरुंनमा प्रगट दीसें सों तातें वक्र परावृत होय अरुणतलकों तो यह भाव है सो सगरे व्रजभक्तनके हृदयकों अनुराग इकट्ठो होयके चरणकमलमें मन लागि रह्यौ है । तहां चरणमें चिन्ह है सो सब व्रजभक्तनके हितकारी है । एसी चरणकमलकी सौंदर्यता लावन्यता मधुरता कमनीयता तेसे सौंदर्यताकों अगाध समुद्र सो ताकी सीमा देखिकें दीनता आई कहां जो हमकों कक्षत हैं। जो परम प्रेम जो घनहै तहां यह चरनकमल प्रगट होत है। वृंदावनो सखि भुविवतनोति कीर्तिक स्वतंत्रकों देखत अनुसंधान करने । एताद्रस सौंदर्यताकों प्रेमवंत व्रजभक्त अनुभव करतहैं। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो पादो मधुर कहे । अथवा सोपद कमल हैं सो सर्वभाव हैं। तिनकों सिघ करत हैं सो काहेतें जो जा समें सरदकालकी रात्रमें ता समय ललित त्रिभंग सरूपकों धारन कीयो हैं । सो तातें उपर टेड़ो करिकें दक्षिण चरणारविंद धरे हैं । सो वांम चरणारविंदके आश्रय हैं सो तामें यह चरणारविंद परम सोभासहित सोहत हैं सो व्रजभक्तनके भांति भांतिके भाव उपजत हैं । और श्रीठाकुरजीके चरणारविंद तो मंगलरूप हैं जो जिन चरणारविंदको स्मरण करें ताके सर्व अमंगल क्षणमें दूरि होय जातहैं। और जे उत्तम सुंदर सोभाग्य जो मंगल हैं सो तिनकी सीघ्र होई सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप पादौ मधुरं कहें अब औरहूं भावमें कहत हैं। जो नृत्यं मधुरं जो ताकों अर्थ तो यह हैं। जो यह तो प्रसिद्धि रासपंचाध्याई तामें है । तथा जहां नित्य लीला रासलीला आदि श्रीवृंदावनमें करत हें। सो तहां नित्यलीलामें श्रीठाकुरजी अत्यंत चतुर हैं। जहां नित्य समय सगरे आभूषण राग रागिनी सहित वाजत हैं । और अनेक वाजे आप बजावत हैं। सो सर्व सबद ईकट्ठोऐ होयके एक धुनि भई । और ऊपर देबता वाजित्र वजावत हैं । सोऊ स्वर मिलिकें एक स्वरूप एक रसतान बंधान सहित महाअलौकिक रासभयो । जो जहां व्रजसुंदरीनकों सर्व दिन भयो तामें नित्य सिद्धांतको तो सदांई क्षणक्षणमें करिकें रस पोषक है । रासलीला करिकें प्रथम तो नित्य सिद्धांतको रसदांन कीए । सो ता पाछें श्रुतिरूपानको दान कीये। ता पाछें अग्निकुमारिकाकों दान कीए । जो जा भांतिसों जाकों जेसों अधिकार हैं जो ताको वाही रीतिसों दान कीए । और तुर्य प्रिय जो श्रीयमुनाजी तिनकों कछू विशेषदांन है । जो जेसें नित्य सिद्धांतको कीए। सो काहेतें जो यमुनाजी श्रीठाकुरजीके अत्यंत अनुकूल सेवा सामिग्रीमें है। तातें इन पर कृपा तो अत्यंत विशेष हैं। यह प्रसिद्ध हैं। जिनके ऊपर जितनी कृपा तिनकों तितनो दांन कीए। तातें और जो लीलामें श्रीबलदेवजी संगही हैं। जो श्रीठाकुरजीके सखाहू हैं। और यह तो रासादिक लीलाहैं सो तो ब्रजभक्तनके भोगार्थ हैं। सो तातें अर्द्ध रात्रके समें वन विखें जों वेनु वजायके बुलाए हैं। सो तहां इनकों दांन श्रीठाकुरजीकीये सों तो अत्यंत रसरूप हैं। सो ताको अर्थ यह हैं । जो परमरसकों जो समुद्र हैं सो काहेतें जो जहां शरदकालकी रात्रहैं सो तहां अखंडायमांन मनि चंद्र रसात्मक प्रगट हैं सो तहां श्रीवृंदावनतो परम सोभायमांन हैं । सो जहां मल्लिका मालती केतकी भांति भांतिके फूल फूले हैं । सो परम सोभाकों अव देत हैं । सो जिनकी सुगंधतो सगरे वृंदावनमें छाय रही है। जहां भांति भांतिके भ्रमर हैं । सो गुंजार करत हैं। सो परम रसकों उपजावत हैं। एसे जो परम रस रूप श्रीवृंदावन हैं।

तहां श्रीगोवर्द्धनधर परम सोभा देत हैं। तटपर श्रीयमुनाजी विराजत हैं। जिनकों मंदमंद प्रवाह चलत है तिनकी पुलिनमैं श्रीठाकुरजी वेंनु बजायके जो भाँति भांतिकी रासलीला ब्रजभक्तनके साथ करिकें आए हैं। तातें श्रीठाकुरजीकों श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आप नित्य मधुर कहें। जो अब आगे ओरहूं कहत हैं जो सख्यं मधुरे जो ताको यह अर्थ है जो सख्य नाम परत प्रीति सहित कोटिकाम छोड़िकें प्रेम होय। ताकों मित्र कहियत हैं। सोऊ रासपंचाध्याईमें प्रकट दिखाऐ सो काहेते जो प्रथम मुरली बजायके ब्रजभक्तनसंग रासलीला कीये ता पाछें श्रीठाकुरजीनें प्रीतिके लक्षरण प्रगट कीये। यह विचारे जो अबहि इनको संयोगात्मक सुखको अनुभव है। सो तातें पूरण की प्राप्त नाही हैं। सो संयोगमें तो वियोग रसदांन न होइ तातें आपु अंतरध्यांनकों विचार कीए तब यह विचारे जो में अंतरध्यांन होऊंगो तो इनकी सरीरकी स्थिति क्यों रहैंगी। तातें इनके ब्रजभक्तनके हितकी विचार अंतरध्यांन होयके सों ता पाछें उनही के हृदयमैं प्रवेस करिके फेरि भीतर रहे। तब बाहिर ब्रजभक्तनने देखें सो तों अत्यंत विरह भयो सो भीतर श्रीठाकुरजी आप हते सो तातें सरीरकी स्थिति रही। ओर प्रेम बढ़नौं तातें आपहूं श्रीकृष्ण होय गऐ बिप्रयोग रसकों अनुभव करत करत दुपहर भई जो पूरण रसको अनुभब श्रीठाकुरजीनें आपनी प्रीया जांनिके करवायौ तब श्रीगोपीजनतो प्रथमहीतें तन मन धन सर्व समर्थन किए हैं सो तातें सख्य जो मित्र दोऊपरस्पर श्रीठाकुरजी और ब्रजभक्तनमें हैं और एसों कोऊ नाही हैं अथवा सखा नाम तो मित्रको हैं सो श्रीठाकुरजीकी मित्रता है। सो सांची हैं और लौकिकमें मित्रता है सो तो स्वार्थकी है सो तांमें कछू फल नांही है सो काहेते जो लोकिक हैं और परम सुंदर हैं तो कहां और लौकिकसों परम सुंदरहैं। परम प्रिय हैं श्रीठाकुरजी आपु मित्रताहैं सो तो सांची हैं और लौकिकमें मित्रता हैं सो स्वारथकी हैं। तामें कछू फल नाही हें सो काहेते जो लौकिक हैं और परम सुंदर हैं तो कहां और लौकिक हैं सो परम सुंदर हैं और परम प्रिय हैं। श्रीठाकुरजी आपु मित्र हैं। सो काहेते जो एसो लौकिकके हितकारी परलौकिकके हितकारी सौं तातें श्रीदामा आदि सखा हैं सो अष्ट प्रहर निसदिन रसमें छके ही रहत हैं। तातें श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आपतो सख्यं मधुरं कहे सों ता पाछे मधुराघिपतेरखिलं मधुरं कहे हैं। सो ऊपर प्रथम श्लोकके भाव सो जाननों। जो या प्रकारसों तीनश्लोकको अर्थ निरूपण भयो ॥ ३ ॥ अब चतुर्थ श्लोक औरहूं कहत हैं ॥

श्लोक—गमनं मधुरं पीतं मधुरं,
भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरं ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥ ४ ॥

याको अर्थ—अब कहत हैं जो गीतं मधुरं ताकों अर्थ यह यह जो श्रीठाकुरजी आपु गांन करत हैं सो तो मधुर हैं। परंतु कबहूं निकुंज मंदिरमें श्रीस्वांमिनीजी सहित मिलिकें गांन करत हैं सो अत्यंतही मधुर हैं। सो काहेते जो जव रासपंचाध्याईमें मुरली बजायकें गांन कीए तब त्रिलोक मोहित भयो। ब्रह्मकों परियंत परंतु श्रीस्वांमिनीजीकें धीरजको भंग न भयो और सर्व ब्रजभक्त मोहित भए सों ता पाछें जब श्रीस्वांमिनोजीनें गानकीयों सो सव सुनिके श्रीठाकुरजीहूं चक्रत होयके सराहना करत हैं। तब तो अत्यंत मधुररस प्रगट होत हैं। सो तो निकुंज अंतरंगिनी सहचरी हैं। सो तिनके अनुभव करिवेके योग्य हैं तातें श्रीआचार्यंजी मएाप्रभू आप गीतं मधुरं कहे जो श्रीठाकुरजी आपतो गांन करत हैं सो तो परम सुंदर और परम मनोहर परम प्रीय आनंददायक हैं। सो काहेते जो सब ब्रजभक्त तो श्रीठाकुरजीको गांन करत हैं। जो शेषजी अष्टप्रहर उनहीको स्मरन करत हैं। जो वेदहूं नेति नेति करिकें गावत हैं। और जितने ब्रजभक्त

हैं सो तो सब श्रीठाकुरजीकों गांन करत हैं। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप गीतं मधुरं कहे जो अबतो ओरहूं आगे कहत हैं जो पीतं मधुरं सो ताको अर्थ यह है जो यामें तो अनेक भाव है। परंतु क्षणक्षणमें नौतन प्रीति प्रगट होत हैं जो या प्रकार सदा सर्वदा एक रसत्व अमर्यादा रस समुद्र कोटि कंदर्प लावण्य मोहित होत हैं। ऐसें रसरूप भाव करिकें अनुभव कहे । और प्रीतिको अर्थ यह है जो दावाग्निको पांन कियो सोऊ सव व्रजकी रक्षा कीए और दुधाद्विक पांन कीयो सो रसपांन कीये । सूचनका जनावत हे सो तातें श्रीठाकुरजी आप जो लीला करत हें सो केवल व्रजभक्तनके सुख देनार्थंही लीला करत हैं सो काहेते जो उनहीके लीए श्रीपूर्णपुरुषोत्तमको प्रागट्य है । जो भांति भांतिके पीतवसन पहरे हैं । जो सुवर्ण आदि आभूषण पहरे हैं जो श्रीठाकुरजी आप श्रीस्वांमिनीजी सखिनसहित प्रीति उपजावत हैं सो तबतो परमआनंदको पावतहै तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु पीतं मधुरं कहे जो अबतो ओरहूं आगे कहतहैं जो भुक्तं मधुरं ताको अर्थ यह है। जो नांनाप्रकारकी सांमग्रीके भोक्ता तो श्रीठाकुरजी आपुही हैं सब रसको अंगीकार करतहैं सो काहेते श्रीगोवर्द्धनपूजनके मिस करिकें सब व्रजभक्तनके हाथ आपुही आरोगे। व्रजभक्तनको सात दिवसलों सरूपानंदको अनुभव करवाए और व्रजभक्तनके भावरूप जो रस ताके भोक्ता श्रीठाकुरजी आपुही हें सो काहेते जो जेसें पुष्पमें मकरंद रसरूप हैं ताहीकों पान करत हैं जो तेसेई श्रीठाकुरजी आपु विप्रयोगात्मक और संयोगात्मक दोऊरसको पांन कीऐ हैं और भोग कीए और व्रजभक्तनकी भाव रीति सो जो व्रजभक्त सेवा कीए तिनहूंको वाही भावसहित भोग कीये और भांति भांतिकी सांमग्री तो श्रीयसोदाजी अरोगावतहै सो परम मधुर हैं व्रजभक्त भांति भांतिकी नित्य नौतन आपु अपनो मनोरथ करिकें अरोगावत हैं। सो श्रीठाकुरजी आप परम प्रीतिसों परम स्वाद अद्भुत सो मधुरं मधुरं कहे अब ओरहूं आगे कहत हैं । सुतं मधुरं सो ताकों यह अर्थ

है जो अपने जन स्वांमिनीजी तिनको विवेक और लज्जा और धैर्य इन तीनोके आपुने नेत्रके मंद हास्य करिके सब हरे। पाछे सबनकी रक्षामें आपु तत्पर भए हैं। सो काहेते जो उनकेमें चेतन्यातीमन हतो तिनको तो आपुही हरि लीयो है सो ता पाछें आपुही रक्षा कीए रूप तातें आपु ही महक है और कृष्णोनात्मसीतकृतं सो काहेते जो और जो जीव है तिनको श्रीठाकुरजीसों विछुरे अनेक काल भयो हैं सो मिलापतो कौनसो होय। तब विप्रयोगात्मक रस प्रगट होय सो तबही प्राप्त होय सो विप्रयोगात्मक प्रगट होय जब श्रीपूर्ण पुरुषोत्तमको अंगीकार करिवेको विचारे सो तवही विरह होय सो व्रजभक्तनको विरहहूको दान कीयो है और पुष्टिमार्गके साधनहू दीये सर्वात्मरूप सो तातें सब ठोर श्रीठाकुरजीकों जानें जो या प्रकार सब व्रजभक्तनकी रक्षामें तत्पर हों और श्रीस्वांमिनीजी निकुंज मंदिरमैं मांनादिक करत है सो तब श्रीठाकुरजी आपको तो विरह प्रगट होत है सो तब भांति भांतिकी सत्परव वायकें और मांनादिक छुटायकें परम रसकों दांन करत हैं। प्रीतिसों प्रेमसों आनंदसों श्रीठाकुरजीके रिझावत परस्पर सुख उपजावत हे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सुप्तं मधुरं कहे। अब ओरहूं आगे कहत हैं जो रूपं मधुरं सो ताको अर्थ यह है जो ललित त्रिभंग स्वरूप तो परम रसरूप है । सो वेदादिक आगम्य स्वतंत्र वेदांतित सरूपको वरणन करतहैं वेदको अधिकार सिंगार रसात्मक लीलामें नाही है सो तातें इतनो कहतहैं जो आनंद मात्र कर पाद मुखोदरादि श्रीपूर्णपुरुषोत्तम साकार महारसरूप ही है । एसों सरूप स्वतंत्र सुद्ध पुष्टिभाबात्मक रसात्मक उतर दलात्मक नख सिखलौ रसरूप जीवनके देखेते सबनकौ कामिनी भाव करिके भोग करिवेके योग है। सो काहेते तिनहीको यह स्वरूपको अनुभव भयो। और मुख्यतो श्रीस्वांमिनीजीके अनुभव करिवेके योग्य हैं । पूरण स्वरूपतों इनहींकों अनुभव हैं ता पाछें तथाधिकार एसे श्रीकृष्णसमान और रूप कोई तो नांही हैं ओर तातें अनेक भांति अनेक प्रकारके रूप हैं अनेक भाव हें अनेक चातुर्य हैं और अनेक

भांतिको सौंदर्य हैं सो कहत हैं । अनेक भाव हैं । सों काहेते कोईक समय बालचरित्रमैं श्रीहस्त विखें नवनीत लिये श्रीनंदरायजीके आंगन में विहार करत हैं । तव भांति भांतिकें घुंघरा बजावत हैं । एकतो अत्यंत मिही उपरना पीरो ओढे हैं । और जब किलकि किलकिकें ऊपरम आनंदसों श्रीयसोदाजीकी गोदमें पधारत हैं सों तब अत्यंत शोभायमांन श्रीमुख होत हैं । एक सरूप यह जाको अनुभव श्रीनंदरायजी श्रीयसोदाजी सहित गोपीजो सरूपको अनुभव करत हैं । और कोईक समय श्रीवृंदावनमें सरदकालकी रात्रमें ब्रजभक्तनके समूह सो तहां स्थित हैं । मुकट परम सोभायमांनहैं सो जिनको देखत कोटि चंद्रमा और विद्युत लज्जा पावत हैं जो एसें परम सोभायमांन मस्तक ऊपर विराजतहैं सो परम रसकों उपजावनहारहैं । और जब रासके समय लटकि निर्त करत हैं सो तब ब्रजभक्तनकों मन हैं सो ताकों हरि लेत हैं जो एसों सरूप तो परम रसरूप ही हैं तातें श्रींआचार्यजी महाप्रभू आप रूपं मधुरं कहे सो अबतो ओरहूं आगे कहत हैं । जो तिलकं मधुरं सो ताकों अर्थ तो यह हैं जो तिलक हैं जो सकल सोभा मुखरविंदकी हैं सो ताके राखवेके लीये इकओरे कीयेहैं सो श्रीस्वांमिनीजी अपनें श्रीअंगकों वर्णनसों रूप ताकों तिलक दियो हैं जो मति कहूं काहूंकी द्रष्ट लागें सों तिलकमें यह गुण हैं जो जहां श्रीमुखकमलकों अवलोकन करत हैं सो द्रष्ट तिलकके ऊपर जायकें पड़त हैं सो ताके लीये केसरिकों तिलक कबहूं कस्तूरीको तिलक धरत हैं सो ताको तो हेतु यह है जो तुर्य प्रियाजी श्रीयमुनाजी अपने मनोरथसों धरत हैं सो तातें कस्तूरीको तिलक धरत है और कबहूक कुमकुमको तिलक घरत हैं । तिनमें समूह ब्रजभक्तनकों भावरूप अनुरागहि जाननों तातें श्रुतिरूपा अग्निकुमारिका तथा ओरहू ब्रजभक्त जो ब्रजमें हैं सों तिनको अनुरागरूप और आरक्त वर ता भावते कुमकुमको तिलक करत हैं जो या भांति करिके श्रीठाकुरजी आप अपने ब्रजभक्त तिनकों जतावत हैं । जो तुम सबनको छोड़िकें मेरो आश्रय लीयो है सो ताते में हूं तुमकों या भांतिसों

राखत हों सो तातें तिलक रसरूप हैं । और तों अनेक भांतिके भावहैं सीई प्रगट होत हैं सो काहेतें जो जव श्रीठाकुरजीको फुलेल लगायके फेरि उबटनों करवायकें उष्ण जलसों स्नांन करवायकें तापाछें शृंगार की चोकीपर पधरायकें ब्रजभक्त भावसहित शृंगार करावत हैं । और कबहूकतो मृगमदको तिलक देत हैं कबहूंक तिलक विच मृगमदको विंदा देत हैं । सो ताको भाव कहत हैं । जो मृगमद हैं सो श्रीयमुनाजीको स्वरूप है । और केसरीहै सो श्रीस्वांमिनीजीको स्वरूप हैं तातें इन दोऊनके अनुसारकें श्रीअंग वरणनहैं केसरी और मृगमद तिनहीकों शृंगार आपु करत हैं अथवा शृंगार श्रीठाकुरजीकों श्रीस्वांमिनीजी ओर श्रीयमुनाजी आपु करत हैं सो तातें केसरके ओर मृगमदके मिस अपने श्रीअंगकों अनुभव श्रीठाकुरजीकों करवावत हैं ता केंसरिकों और मृगमद जो कस्तुरी तिनकों तिलक ब्रजभक्त करत हैं सों तिन तिलककी अैंसी सौंदर्यता होत हैं जो कोटि कांम देखिके लज्जा पावत हैं और तिलक तो यातें जरूर ही करत हैं जो श्रीठाकुरजीको मुखारविंद परमसुंदर ताकी निधि है । ताकें चुरायवे में ब्रजभक्त बोहोत तत्पर हैं जो श्रीठाकुरजीकों जो पावें सो अपने घर ले जाय । सो तातें तिलक हें सो तों सगरी सोभा हैं सो ताकी रखवारी करत हैं सो काहेते जो जहां ब्रजभक्तनकी द्रष्टितो तिलक ऊपर परी है सो तहां तो प्रेम में आपुही बिवस होय जात हैं जो रंचकहूं सरीर की सुध नाही रहे सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतों तिलकं मधुरं कहे जो अब ओरहूं आगे कहत हें जो मधुराधिपतेरखिलं मधुरं सो संबंध जो इन समान और तो स्वरूप नांहि सो प्रथमके श्लोकमें ऊपर कहि आए हैं सो ताहीके भावसों जाननो सो या प्रकारसों चार श्लोकको अर्थ निरूपण भयो ॥ ४ ॥ अब ओरहूं पांचमों श्लोक कहत हैं ॥

श्लोक—करणं मधुरं तरणं मधुरं,
हरणं मधुरं रमणं मधुरं ।
वमितं मधुरं समितं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥ ५ ॥

याको अर्थ—अब कहे—जो करणं मधुरं जो याको अर्थ सो यह है जो श्रीठाकुरजीके मकराकृत कुंडल सहित जो करन है सो तिनमैं साँख्ययोग मुक्ति हैं सो ताको अभिनिवेस है जो करणते मुक्ति प्रगट भई हैं सो कुंडल कों चिमतकार कैंसो है जो कोटिसूर्य ऐसी सोभा है जो ज्ञांतिकी भावना करत हैं सो जाकी जोति कहत है एसें श्रीपूरणपुरुषोत्तमके सर्व अंगकों अनुभव व्रजभक्त करत हैं एसें श्रीपूर्णपुरुषोत्तमके सर्वश्री अंगको अनुभव ब्रजभक्त करतहैं । और मकराकृत कुंडलकों तो सांख्ययोग कहें सो ताको तो भाव यह है जो ज्ञानीको मुक्ति देत हैं और व्रजभक्तनकों कुंडलकों आश्रय करत हैं। तिनको भक्ति होत हैं सो काहेते जो यह श्रुतिके वचन हैं । आनंदमात्र. करपाद मुखोदरादिहै सो काहेतें जो एक अंगन प्रति सत अंग हैं सो ते करणहूंके प्रति अंग सबही हैं सो तातें जो भक्ति भांव सहित मकराकृत कुंडल सहित कर्णांकों आश्रय करतहैं सो तिनकों भक्ति सिद्धि होत हैं। और श्रीठाकुरजीके कुंडल सहित कर्णांकों आश्रय करत हैं। सो तिनको भक्ति सिद्धि होत है और श्रीकुलसहित करणकों आश्रय करत हैं सो तिनको भक्ति सिद्ध होत हैं और श्रीठाकुरजीके कुंडल सहित जो करण भक्तिकों न सिद्धि करते तो मधुर पद काहेकों कहत हैं सो काहेते जो मुक्तिमें तो रसनाही हैं भक्तिमें रससहित होय सो ताको नाम मधुर है। सो मुक्तिमैं श्रीठाकुरजौकों स्वरूपानंदकों रस नाही हैं। सों तासों रस संयुक्त भाव निकट हैं ज्ञांनीकी भावना करिकें उनकों मुक्ति देत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप तो करणं मधुरं कहे रसरूप और

श्रीस्वांमिनीजीके हृदयमैं दोय भाव हैं एक तो संयोगाप्मक एक विप्रयोगात्मक तिनके दोऊ रसनके भोक्ता श्रीठाकुरजी आपहैं। जो एसे जांनिके करण द्वारा हृयकें हूं हृदय में जायो चाहत हैं। सो कपोलनकी सोभा देखिके कर्णांको पर्कारिके ठाढे होय रहे हैं । एसे दोऊ कुंडल सहित करण अत्यंत शोभा देत हैं और श्रीठाकुरजी करणपुट हैं सो अत्यंत परम सुंदर हैं जहाँ मकराकृत कुंडल तो परम सोभायमांन हैं सो दोऊ करणमें विराजत हैं सो तिनकों प्रतिबिंब हैं सों दोऊ कपोलनमें विराजत हैं । तिनकों प्रतिबिंब जब दोऊ कपोलनमें पड़त हैं सो ता करिकें वोहोतही सोभायमान हैं। अति परम सोभायमान हैं । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप करणं मधुरं कहैं जो अब औरहू आगें कहत हैं जो तरणं मधुरं कहे हैं जो याकों अर्थ तो यह हैं जो सुरति सिंधुमें तरत हैं। तरुणकी शोभातें श्रीठाकुरजी आप हैं और ब्रजसुंदरीं तरुण किसोर हैं सो जोवन मदसों गर्व होय रहि हैं सो निकुंज मंदिरमें वस करिकें श्रीठाकुरजीकों पायो हैं सो केलि सिज्याके ऊपर बिहार करत हैं जो तेसें मत्त हस्त करणीके संग विहार करत हैं सो परस्पर हास्यही मांनत हैं । कोटि-कोटितो चोंरासी वध कांमके है और श्रीपूर्णपुरुषोत्तमतों अपार असंख्यात संबंध करिकें श्रीस्वांमिनीजी सहित जेसें मीनजलमें रमणकरें जो एसें रसमें विहार करत हैं और कोईक समय व्रजभक्तनके मनमें जल क्रीडाकों मनोरथ होत हैं सो तब श्रीठाकुरजी आपतो व्रजभक्तनके मनकी वातकों जाननबारे हैं सो नाच खेल तथा जल तिरनो सों जल क्रीडा कीयें सों या भांतिसों अनेक रीतिसों अनेक क्रीड़ा करत जल विखें सो व्रजभक्तनकों परम आनंद उपजत हैं। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो तरुणं मधुरं कहें जो अबतो औरहू आगे कहत हैं जो रमणं मधुरं जो याकों अर्थ तो यह हैं जो यह ललित त्रिभंगी स्वरूप हैं सो त्रिलोक जुवतिनके मनको हरत हैं जो एताद्रस त्रिलोककी वार्तातो रही । ताद्रश सौंदर्यतम सौंदर्यरूपकों देखत मात्र श्रीस्वांमिनीजीकों विवेक लज्जा

धैर्य सबहि वहिजात हैं। ओर कंदर्पकों अत्यंत पीडा होत हैं । विरह करिकें भस्म होत हैं अथवा श्रीस्वांमिनीजीके रसात्मक तो श्रीठाकुरजी हैं। और श्रीस्वांमिनीजीके रस करिकें पोषित पुष्टि होत हैं। और श्रीस्वांमिनीजीके हृदयकों दुःखसो ताको हर्ता तो आपुही हैं और वस्त्रहूं हरण कुमारिकाके करिकें निरावृत्त मायाको दूरि करिकें ता पाछे रसकों दांन कीऐ तिनके अनेक जन्मके ताप मिटाऐ और व्रतचर्य हेमंत रितुमैं गोपीजन श्रीठाकुरजीके लीये तप करत हैं सों अपने वस्त्र सब श्रीयमुनाजीके किनारे घरकों कदंबके नीचें आपु श्रीयमुनाजीमे विना वस्त्र अस्नान करत हैं सों ता समय श्रीठाकुरजीतो आप आयकें चीर नाम वस्त्र सों आप हरण करे हैं ता पाछें व्रजभक्तननें बोहोत ही वीनती करी। सों तब नीठ नीठ करिकें चीर दिए हैं । और वरदांन दीये जो रासक्रीडामें तिहारों मनोरथ पूरण करेंगे सो अब सिद्धि कीए सों यह चीरहरण लीला है। सो परम रसरूप हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतों हरणं मधुरं कहें सो तो परमरसरूप हैं सों अब औरहूं आगें कहत हैं जो रमणं मधुरं जो ताकों अर्थ तो यह है जो अनेक निकुंजनमैं व्रजमें व्रजभक्तनके संग रमण करत हैं। 'कलिंदो भूतायास्तट मनुचरंती' पशु पंछी जो कंन्या यह वृहद्वामन पुराणमैं श्रुतिनके दर्शनभयों ता पाछें जब व्रज विखें लीला संबंध भयौ तहां एक श्रीस्वांमिनीजीके समान सील व्यसनवानसों सब सखियनके जूथानिजूथ हैं तहां एक कालावछन्नमैं सबनसों विहार करत हैं और जब दोऊ स्वरूप सुरति के लियें लीन होय जात हें सो तहां सखी वायु व्यंजन तो अंतरंगी करत हैं सों श्रीठाकुरजी और एताद्रस श्रीस्वांमिनीजी रमण तो उनमत होयके करत हैं अपने प्राणवल्लभके वृंदनमैं जूथनसों आवेष्ठित दिखावत है। जो जेसें मत्त गजराज अपनी करनीको संग लीये रमण करें। ताभि युत श्रम भयो हि तुमं सग संग घ्रष्टजः। स्वक्रुच कुंकुम रंजिताय गंधर्वा पालिभिरनुभूत आविशद्वाश्रांतोगजीभिरिभराद्रि बभिन्न सेतु। एसे अमर्यादा विपरिति रमण व्रजभक्तनसों

करत हैं। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपनो रमणं मधुरं कहें सों ताकों तो अर्थ यह हैं जो श्रीबलदेवजी सहित और संगके बालक सहित मिलिकें व्रजभक्तन सहित अनेक भांतिके रमन रेतीमैं रमण लीला करत हैं सो तो मधुर हैं। और निकुंज मंदिर में भांति भांतिके रमण व्रजभक्तन सहित श्रीठाकुरजी आपु करत हैं सो तों अत्यंत मधुर हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप रमणं मधुरं कहें सों अब औरहूं आगे कहत हैं जो शमितं मधुरं जो याको अर्थ तो यह है जो कोईक समय श्रीठाकुरजी आप तो अपने घर में दुध दही मांखन अनेक जतन करिकें धरि राखत हैं सो तहां श्रीठाकुरजी तो आप पधारत हैं सो सबद आभूषणादिकके सुनिकें गोपी श्रीठाकुरजीके सन्मुख पकरिवेकों जात हैं सो तब श्रीठाकुरजी आपने श्रीमुखमें दूधको भरिके वा गोपिकाके मुख ऊपर कुल्ला करत हैं तब गोपिकाके मुखमें तथा नेत्र में दूध भरि जात हैं सो तब गोपीरसमें मगन होयके ठाढी रह जात हैं श्रीठाकुरजी तो आप अरोगिकें भाजि भाजि जात हैं तथा निकुंज मंदिरमैं श्रीस्वांमिनीजी सहित श्रीठाकुरजी विहार करत हैं सो तहां परस्पर चर्चित तांबूलको औगाल लेत हैं और श्रीस्वांमिनीजी अपनों सर्व पदारथ श्रीठाकुरजीको अर्पन कीये हैं। तातें नाना प्रकार की सांमग्री सिद्धि करिकें राखत हैं सो श्रीठाकुरजीकों लिवायकें ता पाछें जों कछू बचत है सो लेत हैं और कबहूं श्रीठाकुरजी श्रीस्वांमिनीजीकों लिवायकें सों ता पाछें आप लेत हैं ।। लाडिली अर्चवाय आगें पाछें आप अघाय ।। सो तातें दोऊ स्वरूपकों एक ही करि जाननों सो दोऊनके अरोगाऐ पाछें जो कछू वचत है । सो ताकों विमितं मधुरं कहियें सो सखीजनकों भोगार्थ हैं सों तातें पुष्टिमार्गमैं की रीति सों भोग धरत हैं सो तहां दोऊ स्वरूप आरोगत हैं। सो महाप्रसाद लीऐ तें बह रसकों अनुभव होत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप वमितं मधुरं कहें अब औरहूं आगे कहत हैं जो समितं मधुरं कहे सो ताकों अर्थ तो यह हैं जों श्रीठाकुरजीकी समद्रष्ट करुणारस युक्त सबनके ऊपर हैं

विषम दृष्ट काहूंके ऊपर नाहीं हैं सो कोऊ मांन अपमांन कितनो करो परंतु श्रीठाकुरजी आपु सबनके ऊपर परम कृपा करत ही आरोगे हैं सो काहें ते जो पूतना स्तन विषें विष लगाइकें आइ सो ताहूंको माता की गति दीनी इंद्रीं स्वारथ सब करिकें श्रीठाकुरजी आप वाकों दोष दूरि करिकें राखें । वाकों बुरो न कीए जातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप समितं मधुरं कहे । अथवा और व्रज विषें व्रजभक्तनके हृदयविषें जेसों भाव करिकें जिनकों भजन कीयो हैं । तिनहीकों ताही भांतिसों मनोर्थं पूर्णं कीयो हैं और श्रीस्वांमिनीजी समान सिलवसन परम रसरूप हैं तिनको श्रीठाकुरजीहूते सरस रूप है । परस्पर एक रस होयकें विहार करत हैं और श्रीठाकुरजी की भक्ति करत हैं तिनकों श्रीठाकुरजी आपु अपने समान करत हैं सो जेसें रासपंचाध्याईमें प्रथम श्रीठाकुरजी मिलिकें ता पाछें अंतरध्यांन भए सों तब गोपीजनकों परमेस्वरहू तांप भयो हैं । सो काहेतें जो श्रीठाकुरजी आप विरह उपजाइकें अपने संमांन व्रजभक्तनकों करिकें ता पाछें परमरसकों दांन कीए हैं । तातें जो श्रीठाकुरजी आपुके भक्त हैं तिनकों श्रीठाकुरजी आपु अपने समान राखत हैं । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप समितं मधुरं कहें जो अब औरहूं आगे कहत हैं जो मधुराधिपतेरखिलं मधुरं । जो याको अर्थं प्रथम श्लोक में कहि आए हैं सोई वाकों भाव प्रथम श्लोकमैं हैं सोई यामें जाननों सो प्रकार सों पांच श्लोकको निरूपण भयौ ।।५।। अब आगे औरहूं श्लोक कहत हैं ।

श्लोक–गुंजा मधुरा माला मधुरा,
यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥ ६ ॥

याको अर्थं—अब कहत हैं जो व्रजभक्तनके स्वरूपात्मक पंदास्थ हैं सो तातें श्रीठाकुरजीको तो अत्यंत प्रिय हैं सो तातें अपनें श्रीकंठमें गुंजा राखत हैं सो गुंजामैं अरुनता के नीचे स्यामता हैं सो तो तूर्यं प्रियाकों भाब हैं सो श्रीस्वांमिनीजी आदि व्रजभक्तनके हृदयको अनुराग रसतों ताको इकठौरो करिकें राखे हैं और श्वेत गुंजा हैं सो श्रीचंद्रावलीजी आदि मुख्य व्रजभक्तनकों भाव है । सो तातें दोय भांतिकी गुंजा अरुण स्वेतकी माला करिकें श्रीठाकुरजी आप अपने हृदयमें धारत हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो गुंजाकी माला करिकें पहरे हैं तामें गुंजा तो दोय भांतिकी हैं जो एक तो लाल है एक स्वेत है सो ताको भाव लाल गुंजा है । तो श्रीस्वांमिनीजीको भाव है परम अनुराग स्वरूप शुचन होत हैं । सो नाम श्रीयमुनाजी हैं, सो गुंजामें स्यांमता हैं सों श्रीयमुनाजीकों श्रीअंग वर्णंन हैं और स्वेत गुंजा हैं सो श्रीस्वांमिनीजीके श्रीअंगको भाव हैं सो तातें गुंजारतों सिगारमें आवस्यक चाहियें । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतों गुंजा मधुरा कहें सो अब औरहूं आगे कहत हैं जो माला मधुरा जो याको अर्थं तो यह हैं जो वैजंतीमालामें तो व्रजनमें तो कोटानकोट व्रजभक्त हैं सो तिन सबनके भावकों अंगीकार नाना प्रकारके भावसों नाना प्रकारके पुष्प कोटानकोट व्रजभक्तनके जूथसों अनेक प्रकार करिकें बडी लंवाई मानों चरणकमलतें श्रीकंठ परियंत जो जो व्रजभक्तनकों जा अंगमैं अंगीकार करे हैं सो जनावत हैं सो ताके मध्यमैं मोतिनको माला मानिकी की माला धुकधुकी चौकी "श्रीवत्स लांछन कौस्तुभ कंठ श्रीयेसु स्वभक्ति" सिरोमणी मध्यमैं श्रीस्वांमिनीजी आदि चतुर्थं यूथ सबनकों भाव जाननों । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु गुंजा मधुरा कहें अथवा और माला जोंह वनमाला प्रभृति सब सगरे व्रजभक्तनकौ स्वरूप हैं तिनको श्रीकंठतें चरणारविंद ताई अंगीकार करत हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप माला मधुरा कहें । सो अब औरहूं आगे कहत हैं जो यमुना मधुरा सो ताकों अर्थं तो यह हैं जौ श्रीयमुनाजी अत्यंत मधुर है सो तिनकी लीला श्रीठाकुरजी ही तो हैं सो तों सब श्रीयमुनाजी केसी हैं जो सदां श्रीठाकुरजीके संग क्रीड़ा

करत हैं। और अग्निकुमारिकानकों श्रीठाकुरजीके संबंध तुम ही करिकें सिद्ध भयो है सो तातें जो कोई तिहारो आश्रय करे सो तिनकोतो तुमही अलौकिक देहिक सिद्धकरणवारी हैं। और रासादिक लीला श्रीठाकुरजी ब्रजभक्तनके संग करत हैं सो नवरसकों अंग अंगमैं अस्वेद-द्वारा प्रगट होय है और यो रसतों श्रीयमुनाजीमें है तातें श्रीयमुनाजी-तों अत्यंत मधुर हैं और श्रीयमुनाजीतो श्रीठाकुरजी ब्रजभक्तनकी लीलामें अत्यंत अनकूल है। सो नाना प्रकारके संकेत सिद्ध करत हैं सो तातें श्रीठाकुरजीकों और ब्रजभक्तनकों परमप्रिय हैं सो तातें श्रीयमुनाजी एसे हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू यमुना मधुरा कहे। अथवा ओर श्रीयमुनाजी हैं सो तामें तो भांति भांति के भाव हैं सो काहेते जो श्रीयमुनाजी के तट विषें श्रीठाकुरजी भांति भांतिकी लीला करत हैं और लौकिकमें जाहार होय स्त्री होत हैं सो तहां कलेस ही होत है और श्रीठाकुरजी कोटि कोटि ब्रजभक्तनके साथ ही विहार लीला करत हैं। सो तहां रंचकहूं कलेश होत नाही हैं और परस्पर आपुसमें केलि करत हैं सो श्रीयमुनाजीको प्रवाह है। और परस्पर आपुसमें स्नेह करत है। और श्रीयमुनाजीको जलपान कैसो है दुष्ट जीव करे सो ताको यम यातना तो कबहू न होय। और जो जीव श्रीआचार्यजी महाप्रभूनकी सरण आए हैं सो तिनके अनेक भांतिके अतराय हैं श्रीठाकुरजीसों तिनकों दूरिकरिकें अलौकिक सरीर श्रीठाकुरजीकी सेवा उपयोगी देह सिद्ध करत हैं और सर्वात्मक भाव हैं सोऊ श्रीयमुनाजी सिद्ध करत हैं और श्रीठाकुरजी व्रजभक्तन सहित रासादिक लीला करत हैं सो तब श्रम होत हैं तब जलक्रीडा करत हैं सो श्रमजलसों मिलकें श्रीयमुनाजी मिलिके रहे हैं। सो श्रीयमुनाजी मिलिकें रहे हैं सो जीव श्रीयमुनाजीकों आश्रय करत हैं तिनकों श्रीयमुनाजी या जलकों संबंध करावत हैं। तातें श्रीयमुनाजी अत्यंत मधुर हैं सो रस रूप ही हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप यमुना मधुरा कहे। अब औरहू कहत हैं जो बीची मधुरा सो ताकों अर्थ तो

यह हैं जो श्रीयमुनाजीमें तरंग ओर भमर परत हैं सो मानों श्रीयमुनाजीके हस्तकमल हैं जो जैसैं ब्रजमें कोटानकोट ब्रजभक्त हैं तेसेंही श्रीयमुनाजीके तरंगरूपी भुजाहूं कोटानुकोटि प्रगट करिकें ब्रजभक्तनसों श्रीठाकुरजी सो संबंध करावत हैं तातें श्रीयमुनाजीकी तरंगजो उठत हैं सो अनेक ब्रजभक्तनके मनकों आकर्षण करिकें ही मन हरत हैं सो तामें तो यह जतावत हैं जो तुम यहां आयकें जलपांन करो तो रसको अनुभव होय। जो या भावसो पुष्टिमार्गींय जीवकों लीला संबंध करावत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू बीची मधुरा कहे। अथवा श्रीयमुनाजी के जो तरंग हें लहरि सोई रसरूपी हैं सो काहेते जो श्रीयमुनाजीकी भुजारूप हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु वीचीमधुरा कहे। सो अब ओरहूं आगे कहत हैं जो सलिलं मधुरं ताको अर्थतो यह है जो तुम्हारे जलमें नाना प्रकारके भ्रमर परत हैं सों रस करिके मांनों पूरि रहे हैं सो जहां अगाध जल होत हैं सो जहां भमर परत हैं सो साक्षात् ब्रह्मद्रस्य श्रम जलकों रसधारे हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सलिलं मधुरं कहे अथवा और श्रीजनुनाजीमें जल हैं तिनकों संबंध जब गंगाजी भयो। जो ताहीतें सब जगतमें तो श्रीगंगाजीकी बड़ाई नही हैं सो पापादिक जो ब्रह्महत्यादिककों दूरि करत हैं और जो जीवकों श्रीयमुनाजीके जलको संबंध होत हैं सो ताको भगबदरसको अनुभव होत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु सलिलं मधुरं कहे। जो अब तो ओरहूं आगे कहतहैं जो कमलं मधुरं सो ताको अर्थतो यह है जो श्रीयमुनाजीमें नानाप्रकारके कमलफूलि रहे हैं सो केसे स्यास पीत हैं अरुन हें स्वेत हैं इत्यादिक तिनमें भ्रमरणके यूथ आयकें रसपांन करत हैं जो जेसें अनेक ब्रजभक्तनके भाव सहित देखिकें श्रीठाकुरजीके रसको पांन करिकें सकल मनोरथ पूर्ण करत हैं। और श्रीयमुनाजी पुष्टिमार्गींय जो अंगीकृत ब्रजभक्तहैं सों तिनकों यह जतावत हैं। जो जा प्रकार हम ब्रजभक्तनकों और श्रीठाकुरजीकों राखत हैं सों तेंसेंई तुमहूं भावकरिके पूर्ण पुरुषोत्तमको अपने हृदयमें राखे जो जा भांतिसो

श्रीयमुनाजीके संग सदांहि विहार करत हैं और कमल जो हैं सो तामें तो श्रीलक्षमीजीको वास हैं सो तामें यह सूचनकों करत हैं जो लक्षमीजी और नारायण श्रीयमुनाजीके तटपर आए हैं सो काहेते जो श्रीस्वांमिनीजी और श्रीपूर्णपुरुषोत्तम श्रीयमुनाजोमें जो निकुंज मंदिर हैं सो तहां विहार करतहैं सो कमला और लक्षमी हैं सो जिनके संग जो भ्रमर नारायण ए श्रीयमुनाजीमें आयके श्रीपूर्णपुरुषोत्तमकी श्रीयमुनाजी सहित स्तुति करत हैं तो देवता तो सब करोही करें और मल नाहीं हैं। मानों अंतर सहिचरकों दांन कोट श्रीयमुनाजीकी हें सो काहेते जो श्रीयमुनाजी जूथपति हैं सो तहां नांनाप्रकारकी कमोदनी है सों जूथपति की सहचरीतो कोटानकोट है सो काहेते जो कमलरूप ब्रजभक्त यूथपतिनकी गनना नाहीं है सो तहां सहचरी की गनना कौंन करे और नाना प्रकारके पुष्पनके सुगंध देवता कुसुम वरषत हैं तिनको सौरभतों श्रीपूर्णपुरुषोत्ताम और ब्रजभक्तनके श्रीअंगके प्ररचेद हैं तिनमें अरगजादिक कुमकुम सहितसों सब श्रीयमुनाजीमें हैं सों सगरो सौभएक होयकें श्रीयमुनाजीमें प्राप्त होय रहे हैं सो तिन करिकें भमरके समूह गुंजार करत हैं और नांना प्रकारके ब्रजभक्त गांन करत हैं सो मांनों श्रीयमुनाजीमें परम कुलाहल सब्द होयरहे हैं और श्रीयमुनाजीमें जो पदारथ हैं सो तो श्रीपूर्णपुरुषोत्तमको संबंध हैं सो एसों रसरूपतो श्रीयमुनाजी विनातो कछूवी सिद्ध न होय कमलरूप जो श्रीयमुनाजी हैं श्रीलक्ष्मीजीहू इनकों आश्रयकीयो हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो कमलं मधुरं कहे और अथवा श्रीयमुनाजीमें भांति भांतिके कमलफूल रहे हैं सो परम रसरूपही हैं सो काहेतें जो कोईक समें ब्रजभक्तन सहित श्रीठाकुरजी आपु कमललेके प्रहार यीलाकरत हैं सो ताहीतें धमारमें कह्यो है जो कमलन मार मचाईयो। सो यातें श्रीयमुनाजीमें कमल हैं सो तो परमरसरूप हैं सो तातें श्रीआचायंजी महाप्रभू आपतो कमलं मधुरं कहे सो अब औरहूं आगे कहत हैं जो मधुपाधिपतेरखिलं मधुरं जो याकों संवाद तो प्रथमके श्लोकके भाव

करिकें प्रति श्लोकमें जांननों सों या प्रकार छह श्लोककों अर्थ निरूपण भयो जो अब औरहूं आगें सतमों श्लोक कहत हैं ।।

श्लोक—गोपी मधुरा लीला मधुरा,
युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरं ।
इष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ।। ७ ।।

याको अर्थ—अवकहत हैं । जो गोपी मधुरा सो ताको अर्थ तो यह है जो जितनेक ब्रजभक्त हैं सो तिन सवनकी मुकुटमनि गोपीजनहैं । श्रीठाकुरजीको गोपी प्राणप्यारी और श्रीठाकुरजीकों सर्व निवेदन कीए हैं और निकुंज मंदिरमें तो अनेक ब्रजभक्त श्रीस्वामिनीजीकों श्रीठाकुरजीको संकेत करत हैं तहां नांनाप्रकारकी लीला विहार करत हैं सो तहां गोपीजन अनेक भाव करिकें श्रीठाकुरजीकों वस कीए। तब श्रीस्वांमिनीजीनें कहा जो अहो प्राणप्रिय तुमतो अत्यंत सुंदर हों सो तातें सुरतांत रमण मेरो सिंगार सिथल भयो है सो अब मोको सब सखी देखेगी। सो ताते अबमैं कैसें करों सो तब श्रीठाकुरजी आपतो अपने श्रीहस्तकमलसों श्रीस्वांमिनीजीको सिंगार करन लागे सो मुखारविंदकी सोभा देखिके शृंगार भूलि जात हैं सो तव श्रीस्वांमिनीजी कहे जो वेगही करो जो मेरी सखी आवति होयगी सो तब श्रीठाकुरजी आप सिंगार कीए हैं सो ता पाछें उहां ललितादिक जो अंतरंग सखी हैं सो सब आयकें श्रीस्वांमिनीजीको सिंगार देखिकें परस्पर सें नहीमें करत हैं आपनी सखीसों जो यह सिंगार तो मेरे हाथको नाहीं है जो या भांतिसों इनकों संकेत स्मरण करिकें सखीजन प्रेमासक्ति होयकें आनंद पावति हैं और यह सरूप तो श्रीठाकुरजीकों श्रीगोपीजनके अनुभव करिवेके योग्य हैं। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु गोपी मधुरा कहें और सगरी प्रथवी पर भांति भांतिके भक्त हैं परंतु ब्रजभक्तनमें गोपी हैं सो तों श्रीठाकुरजीके

परम प्रिय हैं सो काहेतें जो अपने प्राणपति जो श्रीठाकुरजी आपु तिनको प्रेम अपने हृदय मैं गोप्य राखत हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू गोपी मधुरा कहैं जो अब औरहूँ आगे कहत हैं जो लीला मधुरा सो ताको अर्थ तो यह है लीला जन्म प्रकरणतें लेके राजलीला कीए हैं सो तामें अकेक लीला तो ब्रज में कीए हैं और कितनीक लीला तो श्री मथुरा में कीए हैं सो कितनी गोपीजन की संबंध लीला हैं जो मधुर सिंगार रस तो ताको कहत हैं जो वेदसास्त्र श्रुतिनकों अगम्य मर्यादा रहित हैं अमर्यादा रसोजन्म गजराज की नाही सुरति सेज विरवे कोक कला भी चातुरी संपूर्ण जो जाकी छटाते प्रगट भई हैं सो लीला देखिकें कोटि कोटि रति मोहित भई तातें सब लीला में सिंगार रस निकुञ्ज मंदिर की लीला तो मुख्य हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप लीला मधुरा कहै अथवा जो सर्व अवतार की लीलामें ते ब्रजकी लीला मुख्य हैं सो काहेतें जो प्रथम बाललीला में दूध दही की लीला तो परम रसरूप हैं रासादिक लीलाते सर्वोपर हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप लीला मधुरा कहे । जो अब औरहूं आगे कहत हैं जो युक्तं मधुरं सो ताको अर्थ यह है जो जहाँ जेसो कारण होय सो तहाँ तेसोई कारण होत हैं सो कारण तो शुद्ध पुष्टि श्रीपूर्णपुरुषोत्तम को प्रागट्य है जो ताते कारजहूं पुष्टि लौला कीए हैं जो ब्रजभक्तन के सकल मनोरथ आपु ही प्रमेय चल करिकें पूर्ण कीए सो तातें युक्त सव रीति ही सों कीए सों ताको तो भाव यह है जो व्रज में जितनीक लीला हैं सो तो सब व्रज भक्तन के निमित्त ही हैं मांखन की चोरी कीनी हैं सो तामें तो यह जताये । जो श्रीगोपीजन की सदा उनके घर की सांमग्री आरोगे हैं जो ता करिकें उनको मन अन्नमें लगावत हैं सो ध्यसन अवस्था ताकी सिद्धि कीए जो अष्ट प्रहर तो उनके मनमें यही रहें जो श्रीठाकुरजी आप हमारे घर की सांमग्री आरोगन नाही आए हैं सो याही प्रकार जितनी लीला करी सो सव गोपीजन के युक्त ही उनके निरोध सिद्धि कीए । सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप युक्तं मधुरं कहे, अथवा

और जब मांखन की चोरी ब्रजभक्तन के घर करि जात हैं सो तहाँ मांखन तो छीके ऊपर धर्‍यो हैं सो तो अकेक भांतिकी युक्त करत हैं और ऊखल धरत हैं सो ताके ऊपर पीढापीढी धरत हैं सो ताके ऊपर चढिके छड़ीसों छेद करिकें छींका सो गिराय के आप मांखन खांन लागे और दांनादिक लीला विखें अनेक भांति की यूक्त श्रीठाकुरजी आप करत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप युक्तं मधुरं कहें जो अब तो औरहूं आगे कहतहैं जो मुक्तं मधुरं सो ताको अर्थ तो यहहै सोतो प्रसिद्धि ही है सो काहेतें जो रासपंचाध्याईके प्रसंगमें राजा परीक्षतनें श्रीशुकदेव जी सों प्रश्न कीयो है जो ईन गोपीजननें कांम भाव करिकें श्रीठाकुरजीकों भजन कीयो है इन व्रह्म भाव नाही कीएसों तातें इनकों मुक्ति कैसें भई सों तव श्रीशुकदेवजीनें कह्यो जो इनके समान मुक्ति तो काहू की नाही हैं सो काहेतें जो शिशुपाल जनमहीते जहांतांई जीयों सो तहाँ ताई श्रीठाकुरजी की निंदा करत रह्यो सो ताहुँ की मुक्ति भई । और गोपीजन तो अपनों सब लौकिक सुख छोड़िकें तन मन धन प्राण सर्वस्व श्रीठाकुरजी को समर्पो । तातें श्रीपूर्ण पुरुषोत्तम के सरूपानन्द कों अनुभवसों एसी रसरूपी मुक्ति भई और श्रीभागवत में कहे हैं जो मुक्ति तों ताकों कहियें जो फेरि दुख कलेश मुक्ति भए । सों ता पाछें न होई सदां एक रस सुखकौ अनुभव करें सों तेंसें व्रज भक्त श्रीवृन्दावन में श्रीठाकुरजी के साथ नित्य नांनाप्रकार की रासलीला को अधुभव होय सो करत हैं सुखकी पराकाष्टा जो कोटानकोट सधिनहू तें सिद्धि न होय सो तातें गोपीजनकौ रसरूप मुक्ति भई । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप मुक्तं मधुरं कहे अथवा जो श्रीकृष्णजी राक्षसनकों मारिकें तो मुक्ति दीए सो सामें सरूपानन्द को तो अनुभव नाहीं हैं और ब्रजभक्तन को परमप्रेमरूपी मुक्ति दीए सो तामैं सरूपानंदकों अनूभव होइ तातैं श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप मुक्तं मधुरं कहैं जों अबतों औरहूं आगे कहत हैं जी द्रष्टं मधुरं जो ताकों यह अर्थ है जो द्रष्ट नामक राक्षस हिन अबलोंकन सोऊ एक ब्रभभक्त ही सो भली भांति सों जानत है सो

काहेतें जो श्रीठाकुरजीकों अनेक भाव करिकें द्रष्ट कटाक्षसों अनंगरूपी महातीक्षण वानसों अंग अंग में मारे हैं तातें श्रीठाकुरजी को अंग जब व्रजभक्तनसों मिलत हैं सों तव रंचक सीतल होत हैं और क्षण एकके अंतरायमें तो और दसा होय करिकें विरहके भर करिकें आपुही राधा होय जात हैं। सो तब राघा होय सो तब ही मुख माघोर होत है सो तब माधो होय जात हैं सो तब छिनकमें राघा विरह करें सो तब छिनकमें राधा विरह करें सो तब विप्रयोगरसमें कबहूक यह दसा होत है जो श्रीस्वांमिनीजी तो कृष्ण भावकों पाय आपकों कृष्ण जानिकें राधा राधा पुकारत हैं और श्रीठाकुरजी विरह विकलता होयके आपकों राधा जानत हैं कृष्ण-कृष्ण हा कृष्ण कब मिलेंगे सो एसे पुकारत हैं सो यह दसा देखिकें सखीन की धीरज छूटत है जो इनकों कौन प्रकारसों समझाइयें जो एसे रसमगन दोऊ हैं। एक एक दृष्ट मैं एसें भात कोटि उत्पन्न होत हैं। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप दृष्टं मधुरं कहे। अथवा श्रीठाकुरजी की दृष्टिसो जब व्रजभक्तके ऊपर परत हैं सो व्रजभक्त सब विवस होयके प्रेममें परम कांमातुर होयकें विरह करत हैं। तब विनकों मनोंरथ श्रीठाकुरजी आप सिद्ध करत हैं। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप दृष्टं मधुरं कहे जो अब औरहूँ कहत हैं जो दृष्टं मधुरं। ताको अर्थ तो यह है। जो यह सिंगार रसकी सांमग्री सर्व मधुर ही है। जो सबनते न्यारी हैं जामें श्रीवल्लभदेवजी को संदंघ तो वा लीला में नांही है सो काहेतें जो निकुंज मंदिर में पशु पंछी द्रुमवली चंद्रमा और जितनी सांमग्री केलिकला में सों सबनतें न्यारी महारस रूपीहैं सो तहां सब सखी हैं सो सब उनही के करिवेके जोग हैं। सो तातें उनके आश्रय बिना और के अनुभव में न आवै सो यह कहिकें यह जताऐ जो पुष्टिमार्गीय जो अंगीकृत जीव हैं सौ वे तो लीलासंबंधी सृष्टि के हैं। सो तिनही को यह रसकों अनुभव होय जो और को तो न होइ सो तातें तइ सृष्टि तो सबनते न्यारी करिकें जाननी सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो सृष्टं मधुरं कहे। अथवा और

प्रथ्वी पर अनेक भांति के जीव हैं। वे जेसो कर्म करत हैं सो तेसो फल पावत हैं। और चोरासी कोस में व्रज में जे जीव रहत हैं सो ते तो अत्यंत बड़भागी हैं और श्रीठाकुरजी के साथ लीला में जे जीव है सो तेतो परम रसरूप हैं सो ताईतें रास पञ्चाध्याई में कहे हैं जो चंद्रमाहें सो तो मनि चंद्रमा हैं और काल है और पशु पंछी श्रीयमुनाजी में हंस मोर चकोर चात्रक शुक इत्यादिक जे बोलत हैं सो तो परमरसरूप ही हैं तातें लीला सामग्री में जो सृष्टि हैं सो अत्यंत मधुर रससों भरी है। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो सृष्टं मधुरं कहे। जो अबतो औरहूं आगे कहत हैं जो मधुराघिपतेरखिलं मधुरं जो याकों भाव तो ऊपर के श्लोक मैं पहलें लिखि आए हैं सो तातें यहाँ तो नाही लिखे हैं। या प्रकार सात श्लोककों अर्थ निरूपण भयों ॥ ७ ॥ अब औंरहूँ आठमों श्लोक कहत हैं।

श्लोक—गोपा मधुरा गावो मधुरा,
यष्टिर मधुरा सृष्टिर मधुरा।
दलितं मधुरं कलितं मधुरं,
मधुराधिपते रखिलं मधुरं ॥ ८ ॥

याको अर्थ—अब कहत हैं जो गोपा मधुरा सोताको अर्थ तो यह हैं जो सिंगार रसमें सब ठोर सखाकों वर्णन कीऐ हैं और गोप सखा को नाही कीए तातें यह कितनेक अंतरंगी लीला संबंधी सखाहू हैं सों तों या प्रकार सों जाननों सो जेसें श्रीठाकुरजी गोचारण लीलाकों पधारत हैं तब व्रजभक्त अपने ग्रहमें वनकी लीला को स्मरण करिकें जो सर्व लीलाकों अनुभव तो घरहीमें करत हैं जो या प्रकार गोपी दिवस के विखें अनुभव करत हैं। और रात्रको तो व्रजभक्तन के संग श्रीठाकुरजी आपतो निकुंज मंदिर में पधारत हैं। तब अंतरंगी सखा सब अपने घरमें निकुंज मंदिरमैंकी सर्वलीलाकों अनुभव करत हैं।

सो तातें या भांतिसों भाव करिकें सखाहूँ वह रसभोग करिवेकों योग्य हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो गोपा मधुरा कहे और श्रीठाकुरजी के सखाहों वालसोंऊ अत्यंत प्रेम सो छके रहत हैं। सो काहेतें जो जब श्रीठाकुरजी और श्रीवलदेवजी सहित जब गाय चरावन कों वनसे जात हैं सो तब श्रीदामा आदि जे सखा हैं। ते ऊपर भाव सहित चलत हैं सो ता पाछें श्रीयशोदाजी छाक पठावतिं हैं सो तब सब सखान सहित श्रीठाकुरजी आप श्रीबलदेबजी सहित आरोगत हैं। और अनेक भांति के खेल खेलत हैं। सो तातें सखा परम प्रेम सख्य भाव हैं सो ताही रसमय गोप रहत हैं और नंदादिक जे नवनंद हैं और व्रज में जो गोप हैं तेऊ श्रीठाकुरजीकी वाल लीला सो ताके रसमें पगे हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप गोपा मधुरा कहे। जो अब औरहूं आगे कहत हैं जो गावो मधुरा सो ताको अर्थ तो यह हैं जो श्रीस्वांमिकीजी अपनो गांन करिकें श्रीठाकुरजीकों हृदय जब विरह करिकें तत्पर होत है सो तिनकों सीतल करत हैं सो तेसें आगन करिकें सुन्दरवन उपवन सकुचित होय मुरझात हैं सो तब उनके ऊपर अमृतकी द्रष्ट करिकें उनकों प्रफुल्लित करत हैं सो तेसें गांनरस अमृतसों श्रीस्वांमिनीजीकों पोषण करत हैं और श्रीठाकुरजी के गायवेको प्रसंग ऊपर कहि आऐ हैं। सोऊ भाव तो यहां हूँ हैं सो यह जाननों सों तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो गावो मधुरा कहे और श्रीठाकुरजी आप गांन करत हैं। सो तो अत्यंत मधुर हैं। सो काहेते जो जा समय गाय लेकें व्रजमें वनतें पधारत हैं सो तब संध्या समय वेनुनाद गोरीराग में करत हैं। कोई सखा परवावज नाचत हैं और कोई ताल बजावत है। और कोई तो संख बजावत है और कोई कीर्तन करत हैं। सो परम प्रेम के रसमें छके हैं और गाय तो परम सोभायमान हैं। और कोईक समें राजभोग पीछें निकुंज मंदिर हैं सो तो श्रीयमुनाजी के किनारे हैं सो तहाँ सीतल मंद सुगंध पवन आवत हैं फेरि ब्रजभक्त वेणुलेकें गावत हैं सो परस्पर प्रसंसा करत हैं सो गांन करत परम प्रेमरूपी जो रस हैं ताको उपजावत हैं और कोईक समय रासादिक लीला विखें सब ब्रजभक्तन सहित मिलिके तान बंधान सहित गाबत हैं और निर्त करत जात हैं। एसें परम श्रेष्ठकों श्रीठाकुरजी आप देखिकें तहाँ चक्रत होत हैं। सो तातें श्रीठाकुरजी आप तो गान करत है। सो परस्पर परम रस रूप ही हैं। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप गावो मधुरा कहे। जो यह तो और हूँ आगे कहत हैं। जो "यस्टिरमधुरा" सो वाको अर्थ तो यह है यष्टि तो कहियें लकुटी को नाम सोऊ अत्यंत मधुर हैं सो काहेतें जो श्रीठाकुरजी आपतो अपने हस्तकमल में राखत हैं और दानादिक लीलामें जिनको कारण हैं सो तातें राखत हैं तथा मांखन चोरी में छीका उचे मेंलि लायो हैं। और मुख्य भावतो यह है जो श्रीठाकुरजी तों श्रीस्वांमिनीजी में अत्यन्त आसक्त हैं सो लकुटी लेकें यह अभिप्राइ जनावत हैं। जो में तिहारी रक्षा में अहर्निस रहत हैं भाव और गाय तो दूरि दूरि वन में निकसि जात हैं सौ तब तो श्रीठाकुरजी आप लकुटीसों सवनकों घेरिकें इकठोरी करत हैं सो तातें यह भाव सूचन करत हैं। जो सर्व ब्रजभक्तन कों घरमें ते आकर्षण करिकें वनमें एकठोर करिकें अपने स्वरूपानन्दकों अनुभव करावत हैं सो तातें यष्टि हूँ लीला संबंध मुख्य ब्रजभक्त हैं सो तातें अपने श्रीहस्तकमल में राखत हैं। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो यष्टिर मधुरा कहें। अथवा ओर यष्टिनाम लाठी को हैं। कोईक समय श्रीठाकुरजी आपतो सोंकरी खोर मैं श्रीवलदेवजी सहित श्री ठाकुरजी आपतों सब सखान सहित विराजत हैं। सो ता समय ब्रजभक्त अपने अपने घरते भाँति भांति के सिंगार करिकें कोई दूध लेत हैं। और कोऊ दही लेत हैं। और कोऊ माखन लेके सब व्रजभक्त ईकठी होय गई हैं। वेचवे मिस करिकें घरतें चलत हैं। सो जव वसंत मैं श्रीगोवर्द्धननाथजी की सांकरी घाटी है। सो तहां दांनकी ठौर है। और सब व्रजभक्त आवत हैं सो तब श्रीठाकुरजी लाठी लेके तहां सब व्रज भक्तनकों आप रोकत हैं। जो हमारों दांन देके घर जाऊ सों तब

व्रजभक्त तो अनेक भांतिके हास्य प्रेम कटाक्ष करिकें उत्तर देत हैं। जो तुम कबके दानी भए हों । श्रीनंदरायजी श्रीयसोदाजी तो हमारे आश्रय ते रहत हैं । और तुम हम पास दांन मांगत हों । सो या भांतिसों श्रीठाकुरजीसों और ब्रजभक्तनसों परस्पर वातें होत हैं । सो वा समय लकुटी श्रीठाकुरजीके हस्तकमलमें हैं सो तो परम रसरूप ही हैं। और गाय चरवेके समय श्रीहस्तमें रहत हैं। सो तातें लकुटिया तो परम रसरूप हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप यष्टिर्मधुरा कहें। अब औरहूं आगे कहत हैं। जो सृष्टिरमधुरा ताको अर्थ यह है सो सृष्टमैं मथुरा मंडल हैं। अथवा यह जो चोरासी कोस व्रजमें जो जीव हैं। सो सब भगवद संबंधी हैं तामें अधिकारांतर भेद हैं सो काहेते जो व्रजमें कंसादिकके अनुकूल दैत्य हैं। जो श्रीठाकुरजीसों प्रतिकूल वे करत हैं सो ताते उनको स्वरूपानंदको अनुभव न भयो जो श्रीठाकुरजी आप देखेहूं सही परंतु सरूपानंदको अनुभव न भयो सो काहेते जो हृदयमें दुष्ट भाव करिकें आवत हैं और श्रीगोपीजन सुद्ध पुष्टिमार्गको भाव करिकें आवत हें एक श्रीठाकुरजीमें सर्व भाव कीए हैं जो माता पिता पति हितकारी तो हैं सो सब एकई तातें अपने घर जो देह संबंधी सबन त्याग कीए सो श्रीठाकुरजी आपके सनमुख भई सो काहेतें जो ब्रजमैं अनेक सृष्ट हैं तिनको जैसो अधिकार तिनको ताही भांतिको निरोध सो निरोधलक्षन ग्रन्थमें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सब कहे जो श्रीनंदरायजी श्रीजसोदाजी और ब्रजभक्त तथा शुद्ध गोपीजनको निरोध वालही जांनके भयो है। और गोपीजनको यह निरोध है जो यह बालक हैं। परंतु ये हमारे भावको एक पूर्ण करेंगे सो यह भाव करिकें यह निरोध भयो सो गुप्तरसकी रीतिसों उन व्रज भक्तनको रसको अनुभव करवायके निरोध कीए। सो या प्रकारसों सबनको न्यारी न्यारी सृष्टि जाननों तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सृष्टिर मधुरा कहें। अथवा और पूतना जा समें आई हैं ब्रजमें सोरहहजार बालकके प्राण सोसिकें सो ता पाछें नंद भवनमैं श्रीनंदरायजीके पास आई सो तब श्रीठाकुरजी आप देखिकें

आप नेत्र मूंद लिये। जो जाकें ज्ञान होय जायगो तां पाछें श्रीठाकुरजी पूतनाको सोखे सो ताके संगतो सोरहहजार बालक पूतनानें मारे हैं। सोव्रजके बालक अजर अमर हें सो श्रीठाकुरजीके लीला संबंधी हें सो ता पूतनाके प्राणके संग श्रीठाकुरजीके उदरमें आए सो तब पूतना को तो मोक्ष भयो सो काहेते जो साक्षी हैं आसुरी जीवको लीलाको संबंध नाहीं है। सो तातें पूतनाकी तो मोक्ष भई और बालक सोरहहजार के प्राण सो श्रीठाकुरजीमें भए सो चीरहरणलीला श्रीठाकुरजी कीए सों तब उदर में ते सोरह हजार बालक निकारे सो अंतरंगी जो सखी हैं सो तिनकों लीला संबंध करवाये सो ताते यह सृष्टि परम मधुर हैं। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सृष्टिर मधुरा कहें। अब औरहूं आगे कहत हैं जो दलितं मधुरं प्रथम ताको अर्थ तो यह हैं। जो छिदलात्मक स्वरूप तो परम रस रूप ही हैं सो काहेते जो प्रथम दलतो श्रीपूर्णपुरुषोत्तम तिनकों जब रमनि करिवेकों तो ईच्छा भई है सो वाई समय दूसरो दल विप्रयोगात्मक प्रगट भयो हैं। सोऊ सरूप श्रीपूर्णपुरुषोत्तमके समान ही है। महारसरूप स्त्रीरूप सो काहेतो जो स्त्री पुरुष बिना सिगाररस सोभा न देय तातें दोऊ संयोगात्मक दल एक श्रीठाकुरजी और विप्रयोगात्मक श्रीस्वांमिनीजी आदि वृन्दावनमें रसरूप भूमिसों तहां अनेक सखी हैं। सो वह रस करिवेके निमित्त हैं सो सखी नाना प्रकारके निकुंज सिद्धि करत हैं। कहूं गुलाबदलके निकुंजमैं सेज्या पंखा तकिया आभूषण कहूं कमल दल इत्यादिक सबही जाननों कहूं नांना प्रकारके मिश्रित सब अंगके फूल तिनकों निकुंजसों तहां अनेक पशु पंछी बोलत हैं। लीलाके अनुसार अमृत सबद परम सुहावनी लागत हैं। सो तहां मध्यमें तो केलि सिज्या ताकें आसपास तो फूलनकी तिबारी तहां अनेक प्रकारके भ्रमर गुंजार करत हैं। सोई स्त्री भावको पाये हैं। कहिवेमें वो भ्रमर कहे परंतु निकुंजमैं तो पशु पंछी सबई स्त्री रूप ही जाननों। एसो निकुंज ताके आसपास बड़े बड़े वृक्ष आंब कदंब फेनस जांबू वट पीपल इत्यादिक जिनकों देखिकें सुरतरु लज्जाको पावतहैं

सो काहेते जो कल्पवृक्षको भगवत्संबंध करवायवेकों अधिकार नाहीं हैं और यह श्रीवृन्दावनके वृक्ष भगवद स्वरूप ही हैं। सर्व कालमें फलफूल सहित वसंतरुतु होय रहे हैं। तहां निरादिक व्रक्ष हें सो तिनमें तो यह नियामक नाहीं है। जो निंबके फूल लागे जो फल चाहियें सो सब तिनहींमें सिद्धि हैं। एसे रसरूप हें तिनके ऊपर तो अनेक भांतिकी लता वेली छाय रही है। सो तहां सब सरवीन के निकुंज हैं। मध्य श्रीस्वांमिनीजी को निकुंज हैं तहां श्रीठाकुरजी केलिकी सिज्यामें श्रीस्वांमिनीजी अभिनिवेस करत हैं। सो ता समय कटिमेखलाके घूघरूं तिनको अत्यंत सोभायमान हैं। झनकार होत हैं। जो मानों केलि संग्रामो वीर दोऊ सुभट युद्ध करत हैं। सो तहां अनेक वाजंत्र वाजत हैं। तहां अनेक कोकिलाके बंधादिक करिकें जो केलि चातुरीय सहित मत्त गजराज की नाई विहार करत हैं। सो तबतो कंचुकि के बंद टूटत हैं। और माला टूटत हैं सिंगार अस्तविस्त विपरीत रमण विखें कोटि कोटि कांमदेवके मदको मर्दन होत हैं। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो दलितं मधुरं कहे। अथवा छिदलात्मक स्वरूप हैं सो परमरसरूप ही हैं। सो काहेते जो जा समय श्रीपूर्णपुरुषोत्तमतो आपुही हैं। और कोई द्रष्टकों प्रकासतो नाही भयो है सो ता समय तुलसी की सुगंध श्रीपूरणपुरुषोत्तमको आईं। सो तब श्रीठाकुरजी दर्पन लेके अपनो श्रीमुख देख्यो सो तब श्रीपूर्णपुरुषोत्तमको अनुभव करें। इतनों विचारत ही एक दल में ते दूसरो दल श्रीस्वांमिनीजीको प्रागट्य भयो सो स्वरूप श्रीप्रभूजी ही समानशील स्वभाव सरूप ही हैं। तिनमें ते फेरि श्रीचंद्रावलीजी आदि और व्रजभक्तनको प्रागट्य हैं सो जातें छहदल तों मुख्य हैं। श्रीठाकुरजी और श्रीस्वांमिनीजी जेसो प्रथवी में प्रथम बीज बोइयें। तब प्रथम दोय पात निकसें सो ता पाछें औरहूं होय। तेसे द्विदल तो परम रसरूप मधुर हें सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप दलितं मधुरं कहे। और कंसादिक जो दुष्ट राक्षस हैं सो तिनके दलन करिवे में श्रीठाकुरजी आप तो परम चतुर हैं। सो तब श्रीठाकुरजी रासको आरंभ व्रजभक्तन के संग करिवे को कीयो। जो ता समय जाके हाथ जो पञ्चवांन हैं। एसों कांमदेव आयो सो साक्षात आप विराजत हैं। साक्षात् मन्मथसो कांमदेव मूर्छित भयो। सो ताते कांमदेवकों दलन करणवारे हैं। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो दलितं मधुरं कहे। जौ अब तो औरहूँ आगे कहत हैं। जो फल देतहैं। सो तो सवन ते अधिक हैं सो काहेते जो देवता फल देत हैं सो तो मिथ्या हैं। सो अंसकला के अवतार हैं। सो फल देके अपने अपने वैकुण्ठ में स्थिति हैं। और श्रीकृष्णजीजो फल देत हैं सो तिनको व्रजलीला कों अनुभव करायकें अपने व्रज में स्थिति करत हैं। और श्रीकृष्ण हैं सो तो जेसो जाको अधिकार होय तेसो ताको फल देत हैं। सो काहेते जो असुरन को मोक्ष दीये और पूजामार्गीय हैं। तिनको मर्यादा भक्तिको दान करत हैं। और जो व्रजभक्त हैं तिनको पुष्टिभक्ति को फल देत हैं। और श्रीआचार्यजी महाप्रभून के सरन जो जीव पुष्टिमार्ग में आए हैं। सो ताको तो पुष्टिमार्ग को फल श्रीठाकुरजी देत हैं। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप फलितं मधुरं कहे। और ताको अर्थ तो यह हैं जो फलतो सबनते उतिम हैं। जो यह स्वरूपानुभव जाको भयो होयगो सोई जानेगो। सो श्रीआचार्यजी महाप्रभूनको तथा श्रीगुंसाईजी को अनुभव जाको भयो होयगो सोई जानेंगो। सो श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी महाप्रभून सों विज्ञप्त करत हैं। सो यह रस के योग्य नाहि हतो परंतु तुम अपनों लीला संबंधी मोकों कीयो है निवेदन करवायके यह जो तिहारो सर्वस्व धन हतो सो मोकों फल नाहीं कीयो अव यह जो मधुराष्टक है सो हितारे मुखद्वारा मोको फलित भयो है सो तैसे ही मेरे निवेदनीय अंगीकृत भक्त हैं। जिनको द्रढ़ तिहारे चरणकमल में भाव है। तिनकों फलित होऊ सो काहेते जो तुम प्रगट न होते तो यह निवेदन पुष्टिमार्ग को फल श्रंगाररस काहूको न फलित होतो असो श्रीठाकुरजी आप ओर श्रीस्वांमिनीजी माधुर्य लीलाकेपरम सिरोमणि एक कालावछन

मैं सर्वं लीलाकरण मैं तो सामर्थ्य हैं सो तिनके हृदयको दोऊ भाव संयोगात्मक और बिप्रयोगात्मक सो हमसों निसाधन कों अपने जांनिकें दांन कीए सो तातें हमकों एक तिहारे चरणकमल की जो रज हैं सो ताको बारंबार अहर्निस नमस्कार करत हैं । सो या प्रकारसों श्रीगुसांईजी आप श्रीआचार्यजी महाप्रभून सों विज्ञप्ति करिकें अपने अंगीकृत जीवन को सिखाए । जो या प्रकारसों दृढ़ आश्रय श्रीआचार्यजी महाप्रभून के चरणकमल को होयगो तब तिनकों मधुराष्टक फलितं मधुरं कहे अब और कहे जो मधुराधिपते रखिलं मधुरं सो ताको अर्थ तो यह हैं जो जितनीक जो मधुर वस्तु हैं सो ताके पति तो श्रीठाकुरजी आप हैं । तेजो अखिलं सोभायमान संयूक्त हैं । अखिलनाम जीवकी सोभा कों पार नाहीं है जो या भांतिसों आठ श्लोकको यह ग्रंथ यहा रसरूप हैं । ताको नाम तों मधुराष्टक सो परम अत्यंत मधुर हैं । सो और यामें याकोनाम मधुराष्टक हैं । सो ताको अभिप्राय कहत हैं । सो काहेंतें जो या रसमें माधुर्य रस जो हें सो पूर्ण पुरुषोत्तमको और व्रजभक्तनको भाव रसरूप हैं । सो तिनको वर्णन हैं । सो काहेतें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप श्रीठाकुरजी को रसरूप परम प्रिय संयुक्त देखिकें अत्यन्त हृदय मेंते प्रेम उमग्यो है । सो विरहवस होय कछू सरूप वर्णन करिवेको मनकी स्थिरता नाहीं है । सो ताहीते जो जा श्रीअंगऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करत ही । द्रष्टिगई सोई मधुर करिकें बर्णन कीये तातें मधुराष्टक या ग्रंथहूँ के नाम ते ताते या ग्रंथ को जो वैष्णव हैं सो दैवी जीव श्रीआचार्यजी महाप्रभून की शरण आये जो भावसहित मनपूर्वक जो पाठकरैं सो ताको माधुर्यरस जो हें सिंगाररस सो ताकी सिद्ध होय । सो काहेते जो या ग्रंथके पाठते श्रीपूर्णपुरुषोत्तम जो श्रीकृष्णजी हैं सो तिनके दर्शनते जो कितनेंक प्रतिबंध हैं सो तो सब दूरि होय । सो तब पाछें स्वरूपानंदकौ अनुभव होयगो तातें वैष्णवकौ यह मधुराष्टक ग्रंथकौ नित्यनेमसों आवस्यक पाट करनों जो आपसों न बनें तो वैष्णव के पास करवावनों और ताद्रसी वैष्णव होय सो तिनकों मिलनों या प्रकार सों या ग्रंथकों गोप्य राखनों और श्रीगुसांईजी आपतो या टीकामें बोहोत विस्तार करिकें लिखे हैं सोमें अपने बुद्धि अनुसार अपने मनके प्रबोध अर्थ भयो जो ताहीतें कछू भाव है । सो श्रीगुसांईजी आपुके चरणकमल के आश्रित होय के कहे हैं । सो तातें या प्रकार या ग्रंथ को पाठ करना । और श्रीमधुराष्टक ग्रन्थ तो गोप्य राखनों ।

॥ इति श्री विट्ठलेश्वर विरचितं मधुराष्टक ग्रंथ ताकी टीका संपूर्ण ॥

पुष्टिमार्गीय युवक परिषद के प्रकाशित-प्रमुख ग्रंथ

★

नाम पुस्तक	न्यौ० रु० न. पै.
१—ब्रह्मवाद प्रवेशिका (गुर्जर भाषा में)	०—४०
२—पुष्टिमार्गीय वैष्णवोपयोगी-नित्य स्मरण पोथी (गुर्जर भाषा में)	०—६२
३—विज्ञप्तिस्तोत्र संग्रह (गुर्जर अनुवाद) (श्रीगुसांईजी श्रीगोकुलेशजी श्रीहरिरायजी)	१—२५
४—भक्तिहंस (संस्कृत टीका और गुर्जरानुवाद सहित)	१—२५
५ - भक्तिहेतु निर्णय (संस्कृत टीका और गुर्जरानुवाद सहित)	०—७५
६—पत्रावलम्बनम् (संस्कृतटीका व्याख्यात्रय और गुर्जरानुवाद सहित)	१—२५
७—पुष्टिमार्गीय वैष्णवोपयोगी नित्यपाठ संग्रह (गुर्जर भाषा में)	१—२५
८—पुष्टिमार्गीय वैष्णवोपयोगी नित्यनियमना-पाठ-स्तोत्र-कीर्तनो (गुर्जर भाषा में)	२—०

★

प्राप्त स्थान—

पुष्टिमार्गीय युवक परिषद बम्बई-२